VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
प्रथम वर्ष
(सर्टिफिकेट कोर्स)
सेमेस्टर-I

इतिहास

प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत (1206 ई० तक)

SYLLABUS

UNIT-I

Introduction to Ancient History, Culture and Tradition. Historians of Ancient India, Indian Knowledge System, Short brief History of Pre Historic age.

UNIT-II

Indus Valley Civilization, Vedic and later Vedic period.

UNIT-III

Rise of Magadh Empire and Maurya Dynasty : Chandragupta, Bindusar and Ashoka the Great, Kautilya and his Arthshastra.

UNIT-IV

Gupta Dynasty : Chandragupta, Sumudragupt, Chandragupt 'Vikramaditya', Golden Era of Ancient India.

UNIT-V

Age of Harsh Vardhan and Rise of Rajput States : Pratihar, Chalukya, Parmar and Chauhan.

UNIT-VI

Rise of Feudalism in India.

UNIT-VII

Customs, Rituals and Beliefs of Hindus.

UNIT-VIII

Advent of Islam : Invasion of Mahmood Ghaznabi and Md. Ghori.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा का परिचय ...3
UNIT-II : सिन्धु घाटी सभ्यता, वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल ...32
UNIT-III : मगध साम्राज्य का उदय एवं मौर्य वंश ...52
UNIT-IV : गुप्त वंश ...77
UNIT-V : हर्षवर्धन का युग एवं राजपूत राज्यों का उदय ...104
UNIT-VI : भारत में सामन्तवाद का उदय ...133
UNIT-VII : प्रथा, धार्मिक क्रियाएँ एवं हिन्दुओं की मान्यताएँ ...145
UNIT-VIII : इस्लाम का आगमन ...161
मॉडल पेपर ...176

UNIT-I

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं परम्परा का परिचय

Introduction to Ancient History, Culture and Traditions

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. इतिहास किसे कहते हैं?
What is history?

उत्तर इतिहास उन घटनाओं का वृत्तान्त है, जो भूतकाल में घटित हुई थीं।

प्र.2. प्राचीन इतिहास को समझने में सहायक प्रमुख स्रोतों के नाम लिखिए।
Name the main sources that help to understand ancient history.

उत्तर प्राचीन इतिहास को समझने में सहायक स्रोत हैं—साहित्यिक स्रोत तथा पुरातात्विक स्रोत।

प्र.3. प्राचीन धार्मिक साहित्य कौन-से हैं?
What is ancient religious literature?

उत्तर प्राचीन धार्मिक साहित्य—वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण व स्मृति ग्रन्थ आदि हैं।

प्र.4. ऋषियों द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थ किसे कहा गया है?
Which books have been called Brahmanas by the sages?

उत्तर ऋषियों द्वारा वेदों की, की गई सरल व्याख्या को ब्राह्मण कहा गया है। तैत्तिरीय, शतपथ, कृष्ण यजुर्वेद, ताण्डव पंचविश आदि ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

प्र.5. लौकिक साहित्य कौन-से हैं?
Which are secular literature?

उत्तर लौकिक साहित्य के अन्तर्गत ऐतिहासिक ग्रन्थ, जीवनियाँ, यात्रा-वृत्तान्त, कल्पना-प्रधान व गल्प साहित्य आदि हैं।

प्र.6. वेदों के नाम बताइए।
Name the Vedas.

उत्तर भारतीय साहित्य में चार वेद हैं। इनके नाम—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद है।

प्र.7. सूत्र साहित्य का प्रणयन क्यों किया गया?
Why were the Sutras composed?

उत्तर वैदिक साहित्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सूत्र साहित्य का प्रणयन किया गया।

प्र.8. वेदांगों की रचना करने के पीछे क्या उद्देश्य था?
What was the purpose behind the creation of Vedangas?

उत्तर वैदिक ज्ञान को अध्ययन सरल करने के लिए वेदांगों की रचना की गई थी।

प्र.9. 'अर्थशास्त्र' के रचयिता कौन थे?
Who was the creator of 'Arthashastra'?

उत्तर अर्थशास्त्र के रचयिता चाणक्य थे। इनको कौटिल्य व विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता है।

प्र.10. सबसे पुराना वेद कौन-सा है?
Which is the earliest Veda?

उत्तर ऋग्वेद सबसे पुराना वेद है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.11. पतंजलि के महाभाष्य से किस राजवंश की जानकारी मिलती है?
Information of which dynasty is gleaned from Patanjali's Mahabhashya?

उत्तर पतंजलि के महाभाष्य से मौर्यवंश की जानकारी मिलती है।

प्र.12. संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास सर्वप्रथम किसने लिखा?
Who was the first one to write the orderly history of historical events in Sanskrit literature?

उत्तर संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास सर्वप्रथम कल्हण ने लिखा।

प्र.13. प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी देने वाले पुरातात्विक स्रोत लिखिए।
Name the archaeological sources that provide information about Ancient Indian History?

उत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी देने वाले पुरातात्विक स्रोत है— अभिलेख तथा मुद्राएँ।

प्र.14. इतिहास के महत्त्व के विषय में फ्रेडरिक महान् क्या कहता था?
What did Frederick the Great say about the importance of history?

उत्तर फ्रेडरिक महान् की इच्छा जब इतिहास पढ़ने की होती थी, तब वह कहता था— "मुझे झूठ बोलने वाला दे दो।"

प्र.15. प्रमुख ऐतिहासिक जीवनियों के नाम बताइए।
Name the main historical biographies.

उत्तर प्रमुख ऐतिहासिक जीवनियाँ हैं—अश्वघोष रचित बुद्धचरित, बाणभट्ट कृत हर्षचरित, वाक्यपति कृत गौडवहो, विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित आदि।

प्र.16. पूर्व पाषाणकाल के मानव के दो प्रमुख व्यवसाय क्या थे? **(2021)**
What were the two main professions of the palaeolithic age?

उत्तर पूर्व पाषाणकाल के मानव के दो प्रमुख व्यवसाय पशुपालन और शिकार थे।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. पूर्व ऐतिहासिक युग से आपका क्या अभिप्राय है? पाषाणकालीन संस्कृति को समझाइए।
What do you mean by pre-historic era? Explain Stone Age culture.

उत्तर पूर्व ऐतिहासिक युग से अभिप्राय उस काल से है, जिसके विषय में कोई लिखित साक्ष्य प्राप्त नहीं होता है। सन् 1863 में भारत में पाषाणकालीन संस्कृति का अन्वेषण सर्वप्रथम प्रारम्भ हुआ जब भारतीय भूतत्त्व सर्वेक्षण विभाग के विद्वान् **रॉबर्ट ब्रूस फुट** द्वारा मद्रास के पास स्थित पल्लवरम् नामक स्थान से पूर्व पाषाण काल का एक पाषाण उपकरण प्राप्त किया गया। इसके उपरान्त **विलियम किंग, ब्राउन, काकबर्न, सी०एल० कार्लाइल** आदि विद्वानों ने अपनी खोजों के परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों से कई पूर्व पाषाण काल के उपकरण प्राप्त किए। सबसे महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान सन् 1935 में **डी० टेरा** व **पीटरसन** द्वारा किया गया। इन दोनों विद्वानों के दिशा-निर्देशन में येल कैम्ब्रीज अभियान दल ने शिवालिक पहाड़ियों की तलहटी में बसे हुए पोतवार के पठारी भाग का व्यापक सर्वेक्षण किया। इन अनुसन्धानों से भारत की पूर्वपाषाणकालीन सभ्यता के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी हमारे सामने आई। विद्वानों की दृष्टि में इस सभ्यता का उदय और विकास प्रातिनूतन काल (प्लाइस्टोसीन युग) में हुआ। इतिहासकारों द्वारा इस काल की अवधि आज से लगभग पाँच लाख वर्ष पूर्व मानी जाती है।

प्र.2. कल्हण कौन थे? संक्षेप में लिखिए।
Who was Kalhana? Write in brief.

उत्तर प्राचीन भारत के इतिहास के सबसे अच्छे रचयिता कल्हण थे। वह कश्मीरी थे। वह कश्मीर के राजा हर्ष के मन्त्री के पुत्र थे। उन्होंने 1148 ई० में लेखन कार्य प्रारम्भ किया और इसे दो वर्षों में पूर्ण किया। उनकी कृति 'राजतरंगिणी' में कश्मीर का इतिहास है। इसकी रचना करते समय कल्हण ने समसामयिक दस्तावेजों, आज्ञाप्तियों, शिलालेखों, मुद्रा, प्राचीन स्मारकों आदि का गहन अध्ययन किया। इससे स्पष्ट होता है कि वह आधुनिक इतिहास-लेखन कला से परिचित था। 'राजतरंगिणी' में लगभग 8000 संस्कृत छन्द हैं, जिनको तीन हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में समसामयिक परम्पराओं के आलोक में

अतीत की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। दूसरे भाग में कारकोटा व उत्पल राजवंशों का इतिहास है। तीसरे भाग में कश्मीर के लोहर राजवंश का इतिहास है। इस प्रकार, राजतरंगिणी में कश्मीर के राजाओं का उल्लेख है।

प्र.3. प्रागैतिहासिक काल से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में लिखिए।

What do you understand by pre-historic age? Write in brief.

उत्तर छठी शताब्दी ई०पू० से पूर्व के भारतीय इतिहास को दो कालों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्राक् इतिहास (Pre History) व द्वितीय आद्य इतिहास (Proto History)। **भारतीय इतिहास का प्रारम्भिक पाषाण काल जब मानव घुमक्कड़, आचारहीन व शिकारी था, प्राक् इतिहास के अन्तर्गत आता है। प्राक् इतिहास व इतिहास के काल के मध्य का समय आद्य इतिहास कहलाता है।** आद्य इतिहास काल की विशेषता कृषि, गाँव, शहरों, पशु-पालन, बर्तन इत्यादि का विकसित होना था। प्राक् इतिहास को अध्ययन की सुविधा के लिए **पूर्वपाषाण काल** (Palaeolithic Period) तथा **मध्यपाषाण काल** (Mesolithic Period) में विभाजित किया गया है। पूर्व पाषाण पुन: **निम्न पुरापाषाण काल** (Lower Palaeolithic Period), **मध्य पुरापाषाण काल** (Middle Palaeolithic Period), तथा **उच्च पुरापाषाण काल** (Upper Palaeolithic Period) में विभाजित किया गया है। **आद्य इतिहास** (Proto History) के अन्तर्गत नवपाषाण काल (Neolithic Period), हड़प्पा-पूर्व का काल (Pre-Harappan Age), हड़प्पा-संस्कृति का युग (Harappan Age) ताम्र-पाषाण संस्कृति काल (Chalcolithic Age), लौह-युग (Iron Age) तथा ऋग्वैदिक एवं उत्तर-वैदिक काल (Rigvedic and Later Vedic Age) आता है।

प्र.4. मध्य पुरा पाषाण काल के बारे में संक्षिप्त विवरण दीजिए।

Give a brief description of Middle Palaeolithic Period.

उत्तर अन्वेषण के दौरान मध्य पुरापाषाण काल में प्रयुक्त होने वाले कोर, फ्लेक व ब्लेड जैसे उपकरण भारी मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इसीलिए फलकों की अधिकता के कारण मध्य पुरापाषाण काल को 'फलक संस्कृति' भी कहा जाता है। मध्य पुरापाषाण काल के औजारों का निर्माण अच्छे प्रकार के क्वार्ट्जाइट पत्थर से किया गया है। इस काल के उपकरण महाराष्ट्र में नेवासा, झारखण्ड में सिंहभूमि, उत्तर प्रदेश में चकिया (वाराणसी), बेलन घाटी (प्रयागराज), मध्य प्रदेश के भीमबेटका गुफाओं तथा सोन घाटी, हिमाचल में व्यास, बानगंगा, गुजरात में सौराष्ट्र क्षेत्र तथा सिरसा घाटियों आदि विविध पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं।
भारत में मध्य पुरा पाषाण काल के उपकरण सोन घाटी (मध्य प्रदेश), भीमबेटका, रामपुर, बघेलान, सिंहभूम (झारखण्ड), जोगदहा, बाघोर (मध्य प्रदेश), रेनीगुंटा, वेमुला, कुर्नूल गुफाएँ (आन्ध्र प्रदेश), पटणे, भदणे व इनामगाँव (महाराष्ट्र), शोरापुर दोआब (कर्नाटक) तथा बूढ़ा, पुष्कर (राजस्थान) स्थानों से मिले हैं।

प्र.5. निम्न पुरापाषाण काल के बारे में समझाइए।

Explain about Lower Paleolithic Period.

उत्तर पत्थर से निर्मित उपकरणों के आधार पर पुरापाषाण काल को विभिन्न कालों में विभक्त किया गया है। निम्न पुरा पाषाण काल भी इन्हीं में से एक है। इस काल के उपकरण सर्वप्रथम सोहन नदी (सिन्धु नदी की छोटी सहायक नदी) घाटी से प्राप्त हुए, इसी कारण इसे 'सोहन संस्कृति' भी कहा जाता है। इस काल में पेबुल, चॉपर तथा चॉपिंग उपकरणों के साक्ष्य मिलते हैं। पेबुल, पत्थर के वे उपकरण होते थे, जो पानी के बहाव में रगड़ खाकर चिकने और सपाट हो जाते थे। चॉपर, बड़े आकार वाला उपकरण है, जो पेबल से बनाया जाता था। चॉपिंग उपकरण द्विधारी होते हैं अर्थात् पेबुल के ऊपर दोनों किनारों को छीलकर उनमें धार बनाई जाती थी।

प्र.6. महापाषाण काल किसे कहा जाता है? इसकी काल-अवधि लिखिए।

What is known as Megalithic Age? Write its timeline.

उत्तर नवपाषाण काल के समाप्त होने के बाद दक्षिण में जिस संस्कृति का उदय हुआ, उसे 'महापाषाण काल' कहा जाता है। इतिहासकारों ने महापाषाण काल का निर्धारण 1000 ई०पू० से लेकर प्रथम शताब्दी ई०पू० के मध्य तक किया है। पत्थर की कब्रों को 'महापाषाण' कहा जाता था। इन कब्रों में शवों को दफनाया जाता था। महापाषण काल से सम्बन्धित लोग साधारणत: पहाड़ों की ढलान पर रहते थे। इन कब्रों में लोहे के औजार, घोड़े के कंकाल तथा पत्थर एवं सोने के गहने भी प्राप्त हुए हैं। महापाषाण काल में आंशिक शवाधान की पद्धति भी प्रचलित थी जिसके अन्तर्गत शवों को जंगली जानवरों के खाने के लिए छोड़ दिया जाता था। ब्रह्मगिरि, आदिचन्नलूर, मास्की, चिंगलपत्तु, नागार्जुनकोंडा आदि इसके प्रमुख शवाधान केन्द्र थे।
महापाषाण काल के लोग धान के अतिरिक्त रागी की खेती भी करते थे।

प्र.7. उत्तर अथवा नवपाषाण काल के विषय में संक्षिप्त विवरण लिखिए।
Write a brief description of Neolithic Period.

उत्तर भारतीय उपमहाद्वीप में सर्वाधिक प्राचीन नवपाषाणिक बस्ती मेहरगढ़ (पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रान्त में स्थित) है, जिसका काल 7000 ई०पू० माना गया है। नवपाषाण काल की संस्कृति अपनी पूर्वगामी संस्कृतियों की तुलना में अधिक विकसित थी। इस काल का मानव न केवल खाद्य पदार्थों का उपभोक्ता था, वरन् उत्पादक भी था। वह कृषिकार्य और पशुपालन से पूर्णत: परिचित हो चुका था। यहाँ मिले उपकरणों में कुल्हाड़ी, बँसुली, छेनी, खुरपी, कुदाल, हथौड़े आदि प्रमुख हैं। इस काल के प्रमुख केन्द्र बेलन घाटी (उत्तर प्रदेश), रेनीगुंटा (आन्ध्र प्रदेश), सोन घाटी (मध्य प्रदेश), सिंहभूम (झारखण्ड) इत्यादि हैं। नवपाषाणकालीन स्थल बुर्जहोम एवं गुटकराल से अनेक गर्तावास, मृद्भाण्ड एवं हड्डी के औजार प्राप्त हुए हैं। चिराँद (बिहार) से प्रचुर मात्रा में हड्डी के उपकरण पाए गए हैं जो मुख्य रूप से हिरण के सींगों के हैं। कोल्डिहवा (प्रयागराज) से चावल का प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त हुआ है।

प्र.8. इतिहासकारों ने भारतीय शैल चित्रकला को कितने भागों में विभक्त किया है?
Into how many parts have the historians divided Indian Rock Painting?

उत्तर इतिहासकारों ने शैलीगत विशेषताओं के आधार पर भारतीय शैल चित्रकला को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **प्रागैतिहासिक शिला चित्रकला**—इस काल के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रियाकलापों पर आधारित है। इसीलिए यदि इन चित्रों का अवलोकन किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि इनमें आखेट करते हुए पुरुष—भयभीत पशु, सामूहिक नृत्य करते स्त्री-पुरुष जो कि धार्मिक उत्सव में भाग लेते दृष्टिगोचर होते हैं, जलचर पकड़ते शिकारी इत्यादि चित्रों को चित्रित किया गया है।
2. **ताम्र पाषाणिक शिला चित्रकला**—इस काल में पालतू पशुओं को मुख्य रूप से चित्रित किया गया है तथा कहीं-कहीं पर मानव को बैलों की सवारी करते हुए भी दिखाया गया है। इस प्रकार यह कला पशु व मानव के नजदीकी परिचय को परिलक्षित करती है।
3. **ऐतिहासिक शिला चित्रकला**—उपर्युक्त दोनों वर्गों से भिन्न है। इस काल के चित्रकारों ने प्राकृतिक परिवेश से अलग विषयों को चित्रकला का आधार बनाया है। इस प्रकार के वर्ग में राजकीय जुलूस तथा शोभा यात्राओं को विशेष रूप से चित्रित किया गया है। देवी-देवताओं के अंकन के अतिरिक्त, युद्ध पर जाते सिपाही जो कि अस्त्र-शस्त्रों से लैस हैं, अंकित किया गया है।

इतिहासकार **आर्किबाल्ड कार्लाइल** ने मध्य प्रदेश के रीवा जिले के सोहागीघाट में स्थित शिलाश्रयों की ओर 1867-68 में सबका ध्यान आकर्षित किया, इसके पश्चात् क्रमश: **कार्लाइल एवं जे० काकबर्न ने मिर्जापुर जिले में, सी०डब्ल्यू० एण्डरसन ने सिंघनपुर** के शिलाचित्रों को प्रस्तुत किया था। भारतीय शिला चित्रकला के कुछ उदाहरण जम्मू-कश्मीर प्रदेश की कश्मीर घाटी, उत्तराखण्ड के उत्तरी पर्वतीय कुमायूँ क्षेत्र से तथा दक्षिण में कर्नाटक और सबसे अधिक उदाहरण मध्य प्रदेश से मिले। **मध्य प्रदेश** के सतना, रीवा, सीधी, शडहोल, सागर, दमोह, सिहोर, होशंगाबाद, मन्दसोर, जबलपुर, भोपाल जिलों में अनेक शिलाश्रय देखने को मिलते हैं। **इसके अतिरिक्त वाराणसी जिले की चकिया तहसील में, मिर्जापुर जिले में शाहाबिया, बेडिया, बागा, खड़ी पहाड़ी तथा इलाहाबाद जिले के रमगढ़वा छतरपालिया, लखहर तथा बाँदा जिले में सरहट, अमवां, करियाकुंज आदि क्षेत्र शिला चित्रकला से युक्त क्षेत्रों में आते हैं।**

प्र.9. प्राचीन भारत में स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों की व्याख्या कीजिए। (2021)
Discuss the religious rights of women in ancient India.

उत्तर भारत की प्राचीनतम सभ्यता, सैन्धव सभ्यता के धर्म में माता देवी को सर्वोच्च पद प्रदान किया जाना उसके समाज में उन्नत स्त्री दशा का सूचक माना जा सकता है। ऋग्वैदिक काल में समाज ने उसे आदरपूर्ण स्थान दिया। उसके धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार पुरुषों के ही समान थे।

पुरातत्व में कई देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मिली हैं जिससे कि इस बात का भी अंदाजा लगाया जा सकता है कि उस दौरान भी **महिला देवी देवताओं की पूजा करती थीं और उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता थी।** वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति बेहतर हुआ करती थी। यह वही काल था जब ऋग्वेद को लिखा गया था। महिलाओं को समानता का अधिकार था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. इतिहास की विभिन्न अवधारणाओं पर प्रकाश डालिए।
Throw light on different concepts of history.

उत्तर

इतिहास की अवधारणाएँ
(Concepts of History)

इतिहास की प्रमुख अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं—

इतिहास की भारतीय अवधारणा (Indian Concept of History)

फ्लीट, एलफिंस्टन, स्मिथ, मजूमदार, आर०एस० त्रिपाठी, डॉ० हीरानन्द शास्त्री, लोएस डिकिंसन आदि इतिहासकारों का दृष्टिकोण है कि प्राचीन काल में भारतीयों में इतिहास लेखन का अभाव था। भारतीयों की घटनाओं के तथ्यपरक दृष्टिकोण में रुचि नहीं थी।

किन्तु उपर्युक्त विद्वानों की धारणाओं को स्वीकार नहीं किया जा सकता। भारतीयों ने वर्तमान जीवन के महत्त्व को सदा ही समझा है। प्राचीनकाल से अब तक भारतीयों में इतिहास की अवधारणा से नकारा नहीं जा सकता। यदि ऐसा न होता तो भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथ समय व समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होते।

संक्षेप में इतिहास की भारतीय अवधारणा को निम्नलिखित बिन्दुओं में वर्णित किया जा सकता है—

1. **इतिहास युग चक्र है**—भारतीय अवधारणा के अनुसार इतिहास निरन्तर चलने वाला एक युग चक्र है। मनुष्य का जीवन, सुख-दु:ख का निर्धारण भी इसी चक्र से होता है।
2. **अवतारवाद**—भारतीय अवधारणा के अनुसार धर्म के द्वारा एवं सद्गुणों वाले मानवों के दु:खों की जब पराकाष्टा हो जाती है तब ईश्वर का धरती पर अवतार के रूप में अवतरण होता है। यदि इससे धार्मिक अवधारणा को अलग करके देखें तो अवतार को महापुरुष के रूप में देखा जा सकता है।
3. **कर्म सिद्धान्त**—भारतीय इतिहास की अवधारणा में कर्म का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। जीवन के चार आश्रम एवं वर्ण-विभाजन का आधार कर्म ही है। कर्म का सिद्धान्त पलायनवाद से बचाता है तथा इतिहास को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है।

यूनानी रोमन इतिहास की अवधारणा (Concept of Greeko-Roman History)

यूनानी रोमन इतिहास की अवधारणा में हैसियत का युग चक्र सिद्धान्त का अपना अलग ही महत्त्व है। इस चक्र के चार चरण हैं— प्रथम स्वर्ण युग, द्वितीय रजत युग, तृतीय कांस्य युग और अन्तिम लौह युग। कार्लिंगवुड ने इस सिद्धान्त की आलोचना की और इसे अनैतिहासिक अवधारणा बताया।

हेरोडोटस की इतिहास अवधारणा मानवतावादी थी। लिवी की इतिहास की अवधारणा में नैतिकता की झलक मिलती है। **कुल मिलाकर यूनानी-रोमन अवधारणा में दो प्रकार के विचार मिलते हैं।** प्रथम यह कि **मानव समाज निरन्तर पतनोन्मुख है।** द्वितीय यह कि मानव समाज अकुशलता से कुशलता की ओर अग्रसर है।

इतिहास की धार्मिक अवधारणाएँ (Religious Concepts of History)

(i) **पारसी अवधारणा**—पारसी अवधारणा में स्पष्ट किया गया है कि धर्म की ओर संलग्न विश्व का निरन्तर विकास होगा एवं प्रगति होगी।

(ii) **यहूदी अवधारणा**—यहूदी अवधारणा में इतिहास को दैवी शक्ति की इच्छा मात्र कहा गया है। शासक तो ईश्वर का प्रतिनिधि है और वह ईश्वर की इच्छा से ही जनता के कल्याण के लिए कार्य करता है।

(iii) **इस्लामी अवधारणा**—इस्लामी अवधारणा में इतिहास को प्रकाश की ज्योति एवं अन्धकार की गहनता के बीच का संघर्ष कहा गया है।

(iv) **ईसाइयत अवधारणा**—इतिहास की ईसाइयत अवधारणा का स्वरूप नि:सन्देह धार्मिक है। इसमें सम्पूर्ण संसार को ईश्वर की लीला कहा गया है। इस अवधारणा के अनुसार इतिहास में ईश्वर प्रधान है।

पुनर्जागरण काल में इतिहास की अवधारणा (Concept of History in Renaissance Era)

पुनर्जागरण काल में इतिहास की अवधारणा के अनुसार इतिहास में मानव इच्छा की प्रबलता ही कारण है। इतिहासकारों ने उदीयमान नगरों व राज्यों का इतिहास लिखना आरम्भ कर दिया।

बुद्धिवादी युग में इतिहास की अवधारणा (Concept of History in Rationalist Era)

बुद्धिवादी युग में इतिहास की अवधारणा में महान परिवर्तन आया। हाब्स, वाल्टेयर, रूसो, विको तथा कांट ने अपने विचारों से इतिहास जगत् को आन्दोलित कर दिया। कांट के अनुसार इतिहास सार्वजनिक है। यह विकास की एक प्रक्रिया है। इसमें प्रगति की योजना परिलक्षित होती है। बौद्धिकता एवं नैतिकता का विकास इसकी मूल प्रवृत्ति है।

रोमांटिक युग में इतिहास की अवधारणा (Concept of History in Romantic Era)

रूमानी युग में इतिहास चिन्तन का आधार कल्पना व भावना था, इस युग में विद्धानों ने जीवन एवं जगत के आन्तरिक रहस्य को कल्पना एवं भावना के माध्यम से समझने का प्रयास किया था। अत: इसे रूमानी युग कहा जाता है।

उन्नीसवीं सदी में इतिहास की अवधारणा (Concept of History in Nineteenth Century)

उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास चिन्तन की अवधारणा धर्मनिरपेक्षता, उपदेशात्मक व दार्शनिक विचारों, एवं मानवीय प्रक्रिया के सूक्ष्म विवेचन के अत्यन्त नजदीक दिखाई देती है। इतिहासकारों ने इस युग में मानव स्वतन्त्रता व उसके सुखी जीवन की संकल्पना की। **इतिहास का स्वरूप वस्तुनिष्ठ होने लगा।**

बीसवीं सदी में इतिहास की अवधारणा (Concept of History in Twentieth Century)

बीसवीं सदी में इतिहास की अवधारणा का स्वरूप मानव समाज के कल्याण से जुड़ गया। **धर्म, जाति, क्षेत्रीयता, विकृत व संकुचित राष्ट्रवाद की भावना से हटकर इतिहास अब विश्वबन्धुत्व वाद से जुड़ गया।** इस युग के इतिहासकारों में एच०जी० वेल्स तथा टायन्बी का नाम विशेष प्रशंसनीय है। टायन्बी के अनुसार इतिहास की विषय-वस्तु समाज है।

प्र.2. इतिहास के स्वरूप, क्षेत्र एवं महत्त्व का वर्णन कीजिए।
Describe the nature, scope and importance of history.

उत्तर

इतिहास का स्वरूप व क्षेत्र
(Nature and Scope of History)

इतिहास के क्षेत्र की सीमा का आकलन विभिन्न विद्धानों ने अपने-अपने ढंग से करने का प्रयास किया है। **कालिंगवुड** के अनुसार, **''इतिहास का क्षेत्र मानव चिन्तन का क्षेत्र है। मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों पर प्रकृति का अध्ययन इतिहास की सीमा में नहीं आता।'' प्रो० कार** ने इतिहास के क्षेत्र को विज्ञान की भाँति विस्तृत बतलाया जिसमें तथ्यों की व्याख्या अपेक्षित है। कार ने इसी दृष्टि से इतिहास को अतीत व वर्तमान के मध्य अनवरत परिसंवाद कहा। **डॉ० आर०सी० मजूमदार** इतिहास के क्षेत्र को सत्यान्वेषण तक सीमित करते हैं। किन्तु इतिहास के क्षेत्र के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि इतिहास के क्षेत्र के प्रमुख निर्धारक तत्वों का अध्ययन किया जाए।

ओसवाल्ड स्पेंगलर ने संस्कृतियों के अध्ययन तक इतिहास के अध्ययन की सीमा रेखा खींची है। **टायन्बी** ने संस्कृति एवं सभ्यता के अध्ययन को इस प्रकार इतिहास के क्षेत्र में परिभाषित किया है कि उसका स्वरूप अत्यन्त ही विस्तृत हो गया है। **जॉन लिबी** के अनुसार, **''इतिहास के क्षेत्र का स्वरूप निरन्तर परिवर्तनशील है। यह सामाजिक आवश्यकतानुसार विकसित होता रहता है।''** लिवी का यह कथन अत्यन्त ही सार्थक प्रतीत होता है। **यही कारण है कि जिस इतिहास चिन्तन का उद्‌गम ज्ञान की प्राप्ति या अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए हुआ था, वही महाकाव्य युग में हेरोडोटस की दृष्टि में सामाजिक आवश्यकता की कहानी था।** यही नहीं जब मध्य युग में धर्म की प्रधानता थी तब **सेंट ऑगस्टस** ने सम्पूर्ण विश्व को ईश्वर का नगर कहकर सम्बोधित किया, तो वहीं वैज्ञानिक युग की सामाजिक आवश्यकता ने **ब्यूरी** को यह कहने पर विवश कर दिया कि **''इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक।''** वास्तव में यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अतीत कालिक समाज का पूर्ण चित्रण ही इतिहास का मूल उद्देश्य है। किसी भी समाज से सम्बन्धित आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक, न्यायिक, संवैधानिक, सुरक्षात्मक व्यवस्थाओं एवं परिवेश आदि विभिन्न स्थितियों का आकलन इतिहास में आवश्यक है। **समाज से सम्बन्धित प्रत्येक पहलू के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर योजना इतिहासकार के लिए अत्यन्त कठिन है।** इतिहास के वर्गीकरण एवं विषयवस्तु का क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से अध्ययन करने के पश्चात् इतिहास के अग्रलिखित

प्रकार (क्षेत्र) सामने आते हैं—राजनीतिक इतिहास, विधिक या संवैधानिक इतिहास, सामाजिक इतिहास, आर्थिक इतिहास, राजनयिक इतिहास, धार्मिक इतिहास, सांस्कृतिक इतिहास, औपनिवेशिक इतिहास, संसदीय इतिहास, कामनवेल्थ का इतिहास, सैनिक इतिहास, बौद्धिक इतिहास, विचारों का इतिहास, दार्शनिक इतिहास, मानव स्वतन्त्रता का इतिहास, मानव प्रगति का इतिहास, विश्व इतिहास।

इस प्रकार इतिहास के विभिन्न प्रकारों को दृष्टिगत रखते हुए इतिहास के क्षेत्र का आकलन करें तो हमें स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास का क्षेत्र दिन-प्रतिदिन विकसित होता जा रहा है।

इतिहास का महत्त्व या उपादेयता
(Importance of History)

प्राय: यह प्रश्न पूछा जाता है या फिर आपस में चर्चा का विषय होता है कि इतिहास का महत्त्व क्या है? प्राय: लोगों को हेनरी फोर्ड की भाँति यह कहते हुए सुना जाता है कि इतिहास बकवास है, सामान्यत: यह भी सुनने में आता है कि भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, भूगर्भशास्त्र या फिर मेडिकल साइन्स, इंजीनियरिंग एवं कम्प्यूटर साइन्स की तो उपयोगिता समझ में आती है पर इतिहास का महत्त्व समझ में नहीं आता। **हेगेल** ने तो यहाँ तक कह दिया कि इतिहास से हमें केवल यही शिक्षा मिलती है कि उसमें शिक्षा देने के लिए कुछ नहीं है। **फ्रेडरिक महान्** की तो जब इतिहास पढ़ने की इच्छा होती तो वह कहा करता था, **"मुझे झूठ बोलने वाला दे दो।"**

वास्तव में इस प्रकार की धारणाओं एवं विचारों के पीछे यह कारण प्रतीत होता है कि लक्ष्य एवं मूल्य को एक ही समझ लिया गया। वास्तव में लक्ष्य, तो शिक्षा का दार्शनिक आधार है जबकि मूल्य क्रियान्वित आधार है। लक्ष्य गन्तव्य है तो मूल्य गन्तव्य की प्राप्ति में प्राप्त सफलताएँ हैं। इतिहास के महत्त्व का मूल्यांकन भी नि:सन्देह इसी आधार पर अपेक्षित होना चाहिए कि कहाँ तक लक्ष्य प्राप्ति हो सकी है? **ए०जी० बिडगेरी** के अनुसार, **"इतिहासकारों ने मानवता के जीवन की निरन्तरता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इतिहास के अध्ययन के लिए अनेक अच्छे कारक रहे हैं तथा रहेंगे।"** संक्षेप में इतिहास के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं में इंगित किया जा सकता है—

1. **अतीत का ज्ञान**—**डॉ० राधाकृष्णन** का विचार था कि किसी भी देश का इतिहास उसकी स्मृति (Memory) होता है। जिस प्रकार किसी भी व्यक्ति के विकास एवं उन्नति के लिए सशक्त स्मरण-शक्ति का होना आवश्यक है, उसी प्रकार देश अथवा राज्य के विकास के लिए उसके इतिहास का महत्त्व होता है।
2. **वर्तमान एवं भविष्य के लिए शिक्षाप्रद**—यह मान्यता कि आदमी इतिहास से कुछ नहीं सीखता, अनेक तथ्यों के द्वारा गलत सिद्ध होती है क्योंकि यह तो एक सामान्य अनुभव है। नये, पुराने तथा उससे और भी पुराने इतिहास की शिक्षाओं का असर हम देख सकते हैं। रोम पर प्राचीन यूनान के प्रभाव को हर आदमी जानता है। 17वीं से 19वीं शताब्दी के पश्चिमी यूरोप ने **'ओल्ड टेस्टामेंट'** से क्या शिक्षाएँ ग्रहण कीं, इसकी परीक्षा करने पर रुचिकर परिणाम सामने आते हैं। इंग्लैण्ड की पवित्रवादी क्रांति (प्योरिटन रिवोल्यूशन) को इसके अभाव में समझा ही नहीं जा सकता। रूसी क्रांति के निर्माता फ्रांसीसी क्रांति (1789, 1848 की क्रांति) और 1871 के पेरिस के कम्यून से प्राप्त शिक्षाओं से अविभूत होने की सीमा तक प्रभावित थे। इतिहास से शिक्षा ग्रहण करना एक मुखी प्रक्रिया नहीं है। **वर्तमान को अतीत की रोशनी में देखने का अर्थ है अतीत को वर्तमान की रोशनी में देखना।**
3. **राष्ट्रीय मूल्य**—**शेख अली** के शब्दों में, **"इतिहास का अध्ययन समय की बर्बादी या विलासिता नहीं है वरन् एक अति आवश्यक आवश्यकता है। एक राष्ट्र जो इतिहास की उपेक्षा करता है उसका कोई भविष्य नहीं होता है।"**
4. **सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्य**—राउज के शब्दों में, **"समाज को शिक्षित करने के लिए इतिहास का ज्ञान अपरिहार्य है।"** मानव प्रगति के इतिहास का अध्ययन इतिहास से ही हो सकता है। कालिंगवुड ने इतिहास को ज्ञान का स्रोत माना है, नि:संदेह इतिहास हमें मानवीय समाज का ज्ञान प्रदान करता है, इतिहास के माध्यम से व्यक्ति अपनी गलतियों को सुधार सकता है।
5. **व्यावसायिक मूल्य**—वर्तमान में इतिहास के व्यावसायिक मूल्य से भी नहीं नकारा जा सकता। पत्रकारिता व प्रशासकीय सेवाओं के लिए इतिहास का ज्ञान अत्यन्त ही आवश्यक है।
6. **अन्तर्राष्ट्रीय सेवा**—अन्तर्राष्ट्रीय या परराष्ट्रीय सेवाओं के सन्दर्भ में भी इतिहास की उपादेयता से नकारा नहीं जा सकता। 1937 से 1939 तक जर्मनी में रहे ब्रिटिश राजदूत की असफलता का मुख्य कारण उनके ऐतिहासिक ज्ञान की कमी था।

चर्चिल की सफलता का कारण उनका ऐतिहासिक ज्ञान था। इसके विपरीत चैम्बरलेन की जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति उनकी महान भूल थी।

7. **मनोरंजन के क्षेत्र में महत्त्व**—19वीं शताब्दी से पूर्व इतिहास का जो स्वरूप था उसमें साहित्य के पुट की बहुलता देखने को मिलती है। यूनानी ऐतिहासिक साहित्य का विकास तो स्थानीय गीतों से ही था, इतिहास का अध्येता इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर विश्व समुदाय के विषय में जानकर विश्व भ्रमण का आनन्द उठा सकता है। इस दृष्टि से मैकाले, कारलायल एवं वाल्टर स्काट की रचनाएँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।
8. **शैक्षणिक मूल्य**—इतिहास के शैक्षणिक महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। इतिहास पढ़ने से मानव स्वभाव का परिचय प्राप्त होता है। इतिहास भावनाओं का प्रेरणा स्तम्भ है। **बेकन** के अनुसार **इतिहास मनुष्य को बुद्धिमान बनाता है।** इसका कारण बेकन ने इतिहास के तथ्यों को बतलाया है। इसीलिए **वेबर** ने ठीक ही लिखा है, **''इतिहास अवधारणा के मूलतत्व के विषय में प्रत्येक युग का अपना एक दृष्टिकोण होता है।''**

इस प्रकार इतिहास का अध्ययन स्वयं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। **लॉर्ड एक्टन** ने उचित ही लिखा है, **''इतिहास यदि भारस्वरूप है तो इसका सुरक्षित निवारण भी अतीत से ही सम्भव है।''**

प्र.3. भारतीय संस्कृति के प्रारूप को समझाते हुए इसका विस्तृत वर्णन कीजिए।
Explaining the pattern of Indian culture, give its detailed description.

उत्तर

भारतीय संस्कृति का प्रारूप : अर्थ एवं संरचना
(Pattern of Indian Culture : Meaning and Formation)

विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति प्रमुख स्थान रखती है। इसका प्रधान कारण भारतीय संस्कृति के शाश्वत तत्व हैं। ये तत्व मानवता के तत्व हैं। अद्वेष-भाव, करुणा, मैत्री, मुदिता आदि भारतीय संस्कृति के तत्व हमको मानव संस्कृति की ओर ले जाते हैं। यही इसकी निरन्तरता का कारण भी है। वस्तुत: भारतीय संस्कृति की विस्तृत विवेचना करने से पूर्व संस्कृति के वास्तविक अर्थ को समझना आवश्यक है।

संस्कृति से तात्पर्य (Meaning of Culture)

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग पूर्वक **डुकृम्** धातु से **'क्तिन्'** प्रत्यय लगाने पर होती है। सामान्यत: इससे अर्थ सुधरी हुई स्थिति, उत्तम कार्य अथवा आचरण से लिया जाता है, परन्तु संस्कृति को इतने संकुचित अर्थ में बाँधा नहीं जा सकता। अत: विभिन्न विद्वानों ने संस्कृति को अपने-अपने विचारों के अनुसार प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न किया है। **मैथ्यू आर्नोल्ड** के अनुसार, **''संस्कृति हमें विश्व की जानी और कही गई श्रेष्ठतम उपलब्धियों का ज्ञान कराती है।''** रेडफील्ड के अनुसार, **''संस्कृति परम्परागत ज्ञान का कला और उपकरणों से अभिव्यक्त वह संगठित रूप है, जो परम्परा से संरक्षित होकर मानव समूह की विशेषता बन जाता है।''** टाइलर के शब्दों में, **''ज्ञान, विज्ञान, विश्वास, कला, नीति, विधि, परम्परा तथा अन्य गुण व आदतें जो मनुष्य समाज से सदस्य के रूप में प्राप्त करता है, उसे संस्कृति कहा जाता है।''** अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाविद् **डॉ. ह्वाइटहेड** ने इसे विचारों की कियान्विति कहा है।

संस्कृति से सम्बन्धित उपर्युक्त परिभाषाएँ अपने में संस्कृति शब्द के पूर्ण अर्थ को नहीं समेटती। यह ठीक है कि संस्कृति में दर्शन, कला, सामाजिक व्यवस्था, आदत, रीति-रिवाज एवं धर्म आते हैं, परन्तु ये ही संस्कृति के निर्माण के लिए पर्याप्त नहीं हैं। ये तो संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। **वस्तुत: संस्कृति के सूक्ष्म अर्थ से भिज्ञ होने के लिए सभ्यता एवं संस्कृति के भेद को समझना अति आवश्यक है।**

सभ्यता एवं संस्कृति में भेद
(Differences between Civilisation and Culture)

बहुधा संस्कृति एवं सभ्यता को एक समझकर उनका प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है, परन्तु दोनों में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर है। सभ्यता मानव की कतिपय क्रियाओं से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का नाम है। हम जिस जीवन को सभ्य कहते हैं, उसमें हमारा सम्बन्ध उपयोगी वस्तुओं से होता है। तात्पर्य है कि सभ्यता का अनुमान किसी व्यक्ति की वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा-शैली आदि से लगाया जाता है। **मैकाइवर** और **पेज** के अनुसार, "मानव ने अपने जीवन की परिस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए जिन यन्त्र, पद्धतियों और संगठन को जन्म दिया है वही सभ्यता है।" **इस प्रकार स्पष्ट है कि सभ्यता बाह्य पक्ष को चित्रित**

करती है, परन्तु संस्कृति मानसिक है। संस्कृति का गुण आन्तरिक है। सभ्यता की नकल की जा सकती है, परन्तु संस्कृति का अनुसरण कठिन है। **अफ्रीका का आदिम निवासी अंग्रेजी तौर-तरीके की वेश-भूषा धारण तो कर सकता है, परन्तु उसका सांस्कृतिक स्तर अंग्रेज जैसा नहीं हो सकता।** इसे इस ढंग से भी समझा जा सकता है कि सभ्यता देह के सदृश है, उसका वर्णन सहज है, परन्तु संस्कृति आत्मा है, उसका दर्शन जटिल है। **कुल मिलाकर कहें तो 'सभ्यता के शुद्ध, एवं उदात्त तत्वों के रचनात्मक विकास एवं पल्लवन का नाम ही संस्कृति है।'**

भारतीय संस्कृति की रचना (Evolution of Indian Culture)

भारत को विश्व के विशालतम देशों की श्रेणी में गिना जाता है। इसका उत्तरी भाग हिमालय की शृंखलाओं एवं शेष तीनों दिशाएं समुद्र से आवृत्त हैं। इसी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ने उसे शेष विश्व से एक अलग इकाई के रूप में चित्रित तो किया ही है साथ ही भारत के सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया है। **यह ठीक है कि यहाँ उपजाऊ भूस्थल ने यहाँ समृद्धिशालिता को जन्म दिया, परन्तु विदेशी आक्रान्ताओं को भी आमन्त्रित किया।** यवन, शक, हूण, कुषाण, अरब, तुर्क एवं मुगल तथा ब्रिटिश आदि जातियाँ भारत में प्रविष्ट हुईं, जिन्होंने समय-समय पर यहाँ की संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति का निर्माण किसी एक समय या किसी एक जाति विशेष ने नहीं किया। यह तो दीर्घकाल एवं विभिन्न जातियों के योगदान का परिणाम है। वास्तव में, संस्कृति युग-युगों का परिणाम होती है। **डॉ० रामजी उपाध्याय** के शब्दों में, **''संस्कृति का इतिहास मानवता की प्रगति का इतिहास है।''**

भारत में मानव की प्रगति का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से ही दृष्टिगोचर होता है। **यह ठीक है कि पूर्व पाषाण काल का मानव नितान्त असभ्य था, परन्तु भारतीय संस्कृति के निर्माण में उसके योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती।** ऐसा प्रतीत होता है कि **निग्रिटो** ने धनुष-बाण के प्रयोग की विधि का श्रीगणेश किया, जो कि चौदहवीं सदी तक युद्ध-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण रही। नौका एवं अनगढ़ डोंगियो का प्रयोग इन्हीं की देन है। कृषि, पशुपालन, अग्नि, धातु का प्रयोग, पशु, भूत-प्रेत, प्राकृतिक वस्तुओं की उपासना आदि के सन्दर्भ में नव-पाषाणकालीन मानव की देन की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

परन्तु भारतीय संस्कृति के जन्म एवं विकास में हड़प्पा सभ्यता की देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नगरों, भव्य इमारतों, वस्त्राभूषण एवं प्रशंसनीय कलाकृतियों के निर्माण, शिव तथा मातृपूजा की उपासना एवं योग दर्शन के जन्म के क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता अविस्मरणीय है। आर्यों ने भारत पर आक्रमण कर सिन्धु सभ्यता का पतन तो किया, परन्तु भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों एवं परम्पराओं के निर्माण में एक ऐसा अध्याय जोड़ दिया जिसने कि आज तक भारतीय संस्कृति के मूल का स्थान ग्रहण किया है। **वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, उषा, इन्द्र, वरुण, विष्णु, शिव एवं सूर्य आदि देवी-देवताओं की उपासना तथा याज्ञिक कर्मकाण्ड जो कि भारतीय धार्मिक जीवन का मूलभूत अंग हैं, पूर्व-वैदिक काल (ऋग्वेद के रचना काल) की ही देन है।** उत्तर-वैदिक काल में जबकि कार्य सप्तसिन्धु प्रदेश से आगे बढ़कर, काशी, कोशल व विदेह तक फैल गए तथा सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों की रचना हुई, याज्ञिक कर्मकाण्ड एवं वर्णाश्रम व्यवस्था का विकास हुआ, जिससे ब्राह्मण धर्म का विकास द्रुतगति से हुआ, परन्तु उपनिषदों की रचना ने समाज को निवृत्ति मार्ग की ओर प्रवर्तित किया एवं वर्ण-व्यवस्था व याज्ञिक कर्मकाण्ड का विरोध किया। फलस्वरूप दर्शन के क्षेत्र में **'वेदान्त दर्शन'** का जन्म हुआ।

दर्शन, समाज एवं धर्म के मूल नियमों को **'सूत्रकाल'** में लिपिबद्ध किया गया। भारतीय संस्कृति के अमूल्य ग्रन्थ श्रोतसूत्र, गृह्यसूत्र, वादरायण का वेदान्त सूत्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी इसी युग की देन हैं।

इस प्रकार सूत्रकाल तक भारतीय संस्कृति का वह स्वरूप बन चुका था जो कि आर्य एवं आर्योत्तर संस्कृतियों का मिश्रण था, परन्तु इसमें ब्राह्मण धर्म की मान्यता अधिक थी। इस वैदिक धर्म की मान्यता को छठी शताब्दी ई०पू० बौद्ध, वैष्णव, शैव धर्मों के जन्म एवं जैन धर्म के विकास ने अपने विचारों से प्रभावित किया, जिससे धर्म ही नहीं सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन प्रारम्भ हो गये। बौद्ध एवं जैन धर्मों ने जाति-पाँति एवं वैदिक कर्मकाण्डों का विरोध कर तप, त्याग, अहिंसा एवं नैतिक चारित्रिक विकास पर बल दिया। संस्कृत की उपेक्षा कर पाली एवं प्राकृत भाषा को इन दोनों धर्मों ने अपनाया। बौद्ध धर्म में तो भिक्षुओं, मठों एवं विहारों को अधिक महत्त्व दिया गया, जिससे संस्कृति की धाराओं का जन्म हुआ। **बौद्ध एवं जैन दर्शन भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण पहलू हैं।** बौद्ध धर्म की सबसे महत्त्वपूर्ण देन समता की भावना एवं स्वतन्त्र चिन्तन की थी। यही नहीं कला के क्षेत्र में बौद्धों एवं जैनों का योगदान स्मरणीय है। वैष्णव धर्म ने भी अहिंसा एवं भक्ति भावना पर बल दिया।

छठी शताब्दी ई०पू० से ईसा की प्रथम सदी तक आते-आते भारत पर ईरानी एवं यूनानी आक्रमणों तथा मौर्य साम्राज्य की स्थापना ने भारत को भारतीय संस्कृति के रचनात्मक निर्माण की दृष्टि से प्रभावित किया। ईरानियों के हखमनी साम्राज्य का प्रभाव भारतीय

राज्यों पर भी पड़ा। **ईरानियों ने सर्वप्रथम भारत को 'हिन्दू देश' कहा तथा आर्यों को 'हिन्दू'।** कला के क्षेत्र में मौर्य कला पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। **पर्सी ब्राउन के शब्दों में, ''मौर्ययुगीन भारतीय कला प्रेरणा प्राप्त करने के लिए प्रारम्भ से ही अपने से अधिक उन्नतशील पश्चिमी सीमाओं के बाहर की सभ्यता पर लगी हुई थी।'' यद्यपि यह कथन अतिरंजित प्रतीत होता है, परन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ईरानी कला का प्रभाव मौर्य कला पर है ही नहीं।** यूनानियों के आक्रमणों के प्रभाव से भारत में यूनानी राज्य स्थापित हुए। अत: कला के क्षेत्र में गान्धार कला शैली का जन्म हुआ। यही नहीं, कतिपय यूनानियों ने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। **इस प्रकार, भारतीय संस्कृति की सामंजस्य एवं समन्वयवाद की प्रवृत्ति के विकास का यह क्रमिक चरण कहा जा सकता है।**

सांस्कृतिक एकता का यह क्रम मौर्य काल में भी देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण निधि धर्मविजय का वास्तविक उद्घोष तो अशोक के शासन काल में ही हुआ। मौर्य कला संस्कृति के निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण पहलू थी। देश के राजनीतिक एकीकरण के प्रयास हुए, परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् आने वाले 400 वर्षों में यवन, शक, पल्लव और कुषाण जातियों का प्रवेश भारत में हुआ। इनमें कुषाणों ने भारत में विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। इन जातियों के भारतीय समाज में मिल जाने से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उथल-पुथल उत्पन्न हो गई। इन जातियों से उत्पन्न सन्तानों को समाज में प्रतिस्थापित करने के लिए **'मनुस्मृति'** जैसे ग्रन्थों की रचना हुई। कुषाण काल बौद्ध धर्म के विकास एवं मथुरा कला की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था।

विदेशी आक्रान्ताओं को पूर्णत: भारत में प्रवेश करने से रोकने का कार्य गुप्तकाल में हुआ। **यह काल सांस्कृतिक दृष्टि से स्वर्ण काल था। कालिदास जैसे महाकवि, असंग एवं वसुबन्धु जैसे दार्शनिक, आर्यभट्ट जैसे गणितज्ञ एवं वाराहमिहिर जैसे ज्योतिषाचार्य इसी युग की देन हैं।** सांस्कृतिक विकास के इस क्रम को गुप्त काल के पश्चात् धक्का लगा, हर्ष के काल में समीकरण के प्रयास तो हुए परन्तु उसके पश्चात् राजपूतकाल में पुन: अव्यवस्था स्थापित हो गयी। यह उल्लेखनीय है कि राजपूत काल में आक्रमण करने वाले तुर्क आक्रमणकारियों एवं उसके पश्चात् मुगल आक्रमणकारियों ने स्वयं को हिन्दू संस्कृति में विलीन नहीं होने दिया, परन्तु सांस्कृतिक आदान-प्रदान तो हुए ही इसका स्पष्ट प्रमाण कबीर, नानक, दादू, नामदेव के विचार, सूफीमत एवं दिल्ली सल्तनत युग की भवन-निर्माण कला एवं मुगलकाल के तुलसी, सूर जैसे महाकवि, तानसेन जैसे संगीतज्ञ एवं ताजमहल जैसी कला कहे जा सकते है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बौद्धधर्म की महायान शाखा, गान्धार कला, कला क्षेत्र में भारतीय पारसीक परम्परा, प्रशासन एवं राजनीति में आवश्यक परिवर्तन, इस्लाम की पारसिक-अरबी संस्कृति से घनिष्ठता आदि परिवर्तन देश पर उत्तरकालीन आक्रमणों की ही देन हैं।

मुगलों के पतन के पश्चात् भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का आधिपत्य स्थापित हुआ। ब्रिटिश शिक्षा ने भारतीय विद्यार्थियों के हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा का भाव उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। इसका स्पष्ट प्रमाण **'कम्पनी चित्र कला के रूप में'** देखा जा सकता है, परन्तु महर्षि दयानन्द, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी व तिलक आदि महापुरुषों ने भारतीय संस्कृति में आई कतिपय बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करते हुए भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का प्रयत्न किया। **महात्मा गांधी ने तो सत्य, अहिंसा जैसे अस्त्रों का मार्ग अपनाया तथा हिन्दू संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहना प्रारम्भ कर दिया।**

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप सामने बनकर आया, उसमें मानवता, अद्वेषभाव, करुणा, मैत्री, सामंजस्य एवं समय के अनुरूप परिवर्तनशीलता आदि शाश्वत तत्व निहित हैं। यूनान, मिस्र, बेबीलोन आदि प्राचीन संस्कृतियाँ आज विद्यमान नहीं हैं, परन्तु भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसकी संस्कृति आज भी अमर है। इसका सबसे बड़ा कारण समय के साथ भारतीय संस्कृति के द्वारा आवश्यक परिवर्तनों को स्वीकार करना है। **अत: भारतीय संस्कृति के निर्माण को अनवरत, क्रमबद्ध एवं निरन्तर प्रवाहशील कहा जा सकता है।**

प्र.4. इतिहास के पुरातात्विक स्त्रोतों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of archaeological sources of history.

उत्तर

पुरातात्विक स्रोत
(Archaelogical Sources)

साहित्यिक स्त्रोतों से पुरातात्विक स्त्रोत अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं क्योंकि उनमें कवि की कल्पना अथवा लेखक की कल्पना-शक्ति के लिए स्थान का अभाव होता है। इसके साथ ही, जहाँ पर साहित्यिक स्त्रोत मौन हैं वहाँ पुरातात्विक स्त्रोत

वस्तुस्थिति को स्पष्ट करते हैं। विभिन्न स्थानों पर हुए उत्खननों के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में अभिलेख (Inscriptions), स्मारक (Monuments) व मुद्राएँ (Coins) प्राप्त हुए हैं जिनसे प्राचीन भारत पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। **प्राचीन भारतीय इतिहास के विषय में जानकारी देने वाले प्रमुख पुरातात्विक स्रोत निम्नलिखित हैं—**

1. **अभिलेख**—प्राचीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाले स्रोतों में सर्वाधिक महत्त्व के एवं प्रामाणिक स्रोत अभिलेख हैं क्योंकि अभिलेख समकालीन होते हैं। जिस राजा अथवा राज्य के विषय में अभिलेख पर लिखा होता है, अभिलेख की रचना भी उसी राजा के शासनकाल के समय की गयी होती है। अत: उस तथ्य के सत्य होने की सम्भावना अधिक होती है। अभिलेखों से तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त राज्य की सीमाओं का निर्धारण, राजाओं के चरित्र एवं व्यक्तित्व के विषय में भी ये जानकारी उपलब्ध कराते हैं। अभिलेख तत्कालीन कला को भी प्रदर्शित करते हैं।

   अब तक विभिन्न कालों (Periods) एवं राजाओं के हजारों अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं जिनमें **प्राचीनतम उपलब्ध अभिलेख पाँचवीं शताब्दी ई०पू० (5th Century B.C.) का पिप्रावा (जिला बस्ती) कलश लेख है।** अभिलेख विभिन्न रूपों में प्राप्त हुए है। उदाहरणार्थ, शिलाओं पर, स्तम्भों, धातु-पत्रों पर, प्रस्तर पट्टों पर, स्तूपों अथवा मन्दिरों की दीवारों आदि पर। इसी आधार पर स्तूपों को विभिन्न नामों से जाना जाता है। शिला पर लिखे अभिलेख को **शिलालेख** कहते हैं। इसी प्रकार अन्य को **स्तम्भ लेख, ताम्र-पत्र लेख, भोज-पत्र लेख, मूर्ति-लेख** आदि कहा जाता है। प्राचीन भारत पर प्रकाश डालने वाले अभिलेख मुख्यतया पालि, प्राकृत और संस्कृत में मिलते हैं। कुछ अभिलेख तमिल, मलयालम, कन्नड़ व तेलुगू भाषाओं में भी मिलते हैं। **अधिकांश अभिलेखों की लिपि ब्राह्मी है जो बायीं से दायीं ओर को लिखी जाती थी।** कुछ अभिलेख खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए भी प्राप्त हुए हैं।

   कुछ विदेशी अभिलेखों से भी प्राचीन भारत पर प्रकाश पड़ता है। एशिया माइनर में बोगज-कोई का अभिलेख विदेशी अभिलेखों में प्रमुख है। इसके अतिरिक्त पर्सिपोलस तथा नक्शेरुस्तम के अभिलेख प्राचीन भारत तथा ईरान के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं।

2. **स्मारक**—प्राचीन भवनों, मूर्तियों एवं भग्नावशेषों का भी भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्व है। यद्यपि स्मारक राजनीतिक स्थिति पर तो विशेष प्रकाश नहीं डालते, किन्तु इनसे सांस्कृतिक क्षेत्र में अत्यधिक जानकारी प्राप्त होती है। मन्दिर, स्तूप व अन्य स्मारक तत्कालीन धर्म एवं आध्यात्मिक भावना के साथ-साथ कला की भी जानकारी देते हैं। **मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा में हुए उत्खननों से सम्भवत: विश्व की प्राचीनतम सभ्यता 'सिन्धु सभ्यता' का पता चला।** तक्षशिला में हुए उत्खननों से पता चला कि यह नगरी कम-से-कम तीन बार बनी व नष्ट हुई। पाटलिपुत्र में हुई खुदाई से मौर्यों के विषय में अनेक नवीन तथ्य प्रकाश में आये आदि।

3. **मुद्राएँ**—प्राचीन भारत पर प्रकाश डालने वाले पुरातात्विक स्रोतों में मुद्राओं का विशिष्ट स्थान है। मुद्राएँ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति एवं कला पर विशेष रूप से प्रकाश डालती हैं। **बी०जी० गोखले ने मुद्राओं के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि सिक्के अत्यन्त बहुमूल्य होते हैं क्योंकि उसके बिना विश्वसनीय इतिहास की रचना प्राय: असम्भव है।** मुद्राओं से निम्नलिखित जानकारी मिलती है—

   (i) **आर्थिक स्थिति पर प्रकाश**—मुद्राओं से तत्कालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। स्वर्ण, रजत अथवा ताँबे के सिक्के आर्थिक स्थिति के स्वयं ही मापदण्ड बन जाते हैं। प्राय: वैभवशाली राज्य में सोने के सिक्के ही ढलवाये जाते थे व आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर ही क्रमश: चाँदी व ताँबे अथवा मिश्रित धातु के सिक्कों का प्रचलन किया जाता था। **डॉ. मजूमदार** के अनुसार, **"किसी देश की आर्थिक स्थिति को जानने के लिए मुद्राओं का महत्त्व इतना स्पष्ट है कि उसके विस्तृत विवरण की आवश्यकता नहीं है।"**

   (ii) **तिथिक्रम का निर्धारण**—मुद्राओं पर अंकित तिथि में उन मुद्राओं को जारी करने वाले शासक की तिथि के विषय में पता चल जाता है।

   (iii) **धार्मिक स्थिति का ज्ञान**—मुद्राओं पर उत्कीर्ण विभिन्न देवी-देवताओं के चित्रों से तत्कालीन धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

   (iv) **कला पर प्रकाश**—मुद्राओं पर उत्कीर्ण विभिन्न चित्रों व संगीत वाद्यों से तत्कालीन कला एवं संगीत पर प्रकाश पड़ता है।

(v) **साम्राज्य की सीमाओं का निर्धारण**—मुद्राओं के प्राप्ति-स्थलों के आधार पर इतिहासकारों को विभिन्न शासकों के साम्राज्य की सीमाएँ निर्धारित करने में सहायता मिलती है। यदि किसी शासक की एक ही स्थान पर बड़ी संख्या में मुद्राएँ मिलती हैं तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह स्थान उस शासक के साम्राज्य का अंग रहा होगा। जहाँ मुद्राएँ अल्प संख्या में मिलती हैं वहाँ यह समझा जाता है कि वह स्थान प्रत्यक्ष रूप से उस शासक के साम्राज्य का अंग नहीं रहा होगा वरन् उस स्थान से व्यापारिक सम्बन्ध रहे होंगे।

(vi) **शासकों की व्यक्तिगत रुचियों की जानकारी**—मुद्राओं पर अंकित चित्रों से राजाओं की व्यक्तिगत रुचियों पर भी प्रकाश पड़ता है। समुद्रगुप्त की एक मुद्रा में उसे वीणा बजाते हुए दिखाया गया है, जिससे समुद्रगुप्त की संगीत के प्रति रुचि प्रदर्शित होती है।

(vii) **नवीन तथ्यों को प्रकाश में लाना**—भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे युग हैं जिनके विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। ऐसी विषम स्थिति में अनेक तथ्यों पर मुद्राएँ ही प्रकाश डालती हैं। उदाहरणार्थ, गुप्त-शासक रामगुप्त के विषय में जानने का एक प्रमुख स्रोत मुद्राएँ ही हैं।

(viii) **विदेशों से सम्बन्ध**—विदेशों में भारतीय मुद्राओं के प्राप्त होने से प्राचीन भारत में भारतीय नरेशों के अन्य देशों से सम्बन्ध होने का प्रमाण मिलता है।

4. **कलाकृतियाँ एवं मिट्टी के बर्तन**—विभिन्न स्थानों पर किये गये उत्खननों से मिट्टी की बनी हुई अनेक मूर्तियाँ व बर्तन प्राप्त होते हैं। इन बर्तनों व मूर्तियों का भी अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि इनसे तत्कालीन लोककला, धर्म एवं सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। ये बर्तन व मूर्तियाँ विभिन्न रंगों व आकारों में मिलते हैं।

प्र.5. इतिहास के साहित्यिक स्रोतों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of literary sources of history.

उत्तर

साहित्यिक स्रोत
(Literary Sources)

प्राचीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाली सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अध्ययन की सुविधा के लिए साहित्यिक सामग्री को भी निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **धार्मिक ग्रन्थ**—धार्मिक ग्रन्थों की श्रेणी में वे ग्रन्थ आते हैं जो किसी धर्म विशेष से प्रभावित होते हैं। इन ग्रन्थों से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश पडता है। धर्म-ग्रन्थों में ब्राह्मण, बौद्ध व जैन धर्म से सम्बन्धित निम्नलिखित ग्रन्थ प्रमुख हैं—

   (i) **ब्राह्मण-ग्रन्थ**—प्राचीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाले ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

   (a) **वेद**—आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद हैं। **वेदों की कुल संख्या चार है, जिनमें प्राचीनतम ऋग्वेद है।** ऋग्वेद के अतिरिक्त तीन अन्य वेद सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद हैं। वेदों का भारतीय संस्कृति में विशेष महत्त्व है। यद्यपि वेद मुख्यतया धार्मिक ग्रन्थ हैं परन्तु इनसे आर्यों के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। **ऋग्वेद** यद्यपि सबसे पुराना वेद है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है क्योंकि आर्यों के विषय में सर्वाधिक जानकारी इसी वेद से प्राप्त होती है।

   (b) **ब्राह्मण**—ऋषियों द्वारा गद्य में वेदों की, की गई सरल व्याख्या को '**ब्राह्मण**' कहा गया। प्रत्येक वेद के अपने ब्राह्मण ग्रंथ हैं। यज्ञ एवं कर्मकाण्डों के विधान को समझने के लिए इनकी रचना की गयी थी। वैदिक श्लोकों एवं संहिताओं की टीकाएँ इनमें मिलती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के राज्याभिषेक, उत्सव तथा वैदिक काल के राजाओं का क्रमवार विवरण प्राप्त होता है। तैतरीय, कृष्ण यजुर्वेद का शतपथ, शुक्ल यजुर्वेद का ताण्डव पंचविश तथा जैमिनीय सामवेद का गोपथ, अथर्ववेद का ब्राह्मण ग्रन्थ है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों से तत्कालीन लोगों की सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

   (c) **आरण्यक**—'आरण्यक' शब्द की उत्पत्ति '**अरण्य**' से हुई है जिसका अर्थ वन होता है। आरण्यक ऐसे ग्रन्थों को कहा जाता है जिनका अध्ययन वन में किया जा सके। इनमें आत्मा, मृत्यु तथा जीवन सम्बन्धी विषयों का वर्णन मिलता है। इसका पठन-पाठन वानप्रस्थी, मुनि वनवासियों द्वारा वन में किया जाता था। इसलिए इन ग्रन्थों का नाम

आरण्यक पड़ गया। कौशीतकी और ऐतरेय ऋग्वेद के, तैतरीय कृष्ण यजुर्वेद के आरण्यक हैं। सामवेद तथा अथर्ववेद के कोई आरण्यक नहीं हैं।

(d) **उपनिषद**—'**उप**' का अर्थ निकट व '**निषद**' का अर्थ बैठना होता है। अत: गुरु के समीप बैठकर प्राप्त किये गये ज्ञान के आधार पर लिखे गये ग्रन्थों को उपनिषद कहते थे। **उपनिषदों में प्रमुख वृहदारण्यक व छान्दोग्य उपनिषद हैं।** उपनिषदों से भारतीय दर्शन व बिम्बसार के पूर्व के इतिहास का विवरण प्राप्त होता है। उपनिषद किसी एक काल में अथवा किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा रचित नहीं हैं। इनकी रचना में दीर्घकाल तक विभिन्न लोगों का योगदान रहा है।

(e) **वेदांग**—वेदांग से तत्कालीन समाज एवं धर्म पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। वैदिक अध्ययन के लिए विशिष्ट विद्याओं की शाखाओं को वेदांग कहा जाता है। वेदांग संख्या में छह हैं—**शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष।** इस प्रकार वेदांगों से वैदिक ज्ञान का अध्ययन सरल हो जाता है। कालान्तर में सूत्रों की रचना हुई। धर्म पर प्रकाश डालने वाले सूत्र को **धर्म-सूत्र**, गृह-संस्कारों पर प्रकाश डालने वाले सूत्र को **गृह-सूत्र** कहा गया।

(f) **स्मृति**—सूत्रों के पश्चात् स्मृतियों की रचना हुई। स्मृतियों में **मनु** व **याज्ञवल्क्य** स्मृतियाँ प्रमुख हैं। स्मृतियों से तत्कालीन समाज के विभिन्न कार्यकलापों पर प्रकाश पड़ता है।

(g) **महाकाव्य**—वेदों के पश्चात् महाकाव्यों का विशिष्ट महत्त्व है व इनकी गणना ऐतिहासिक साहित्य के अन्तर्गत की जाती है। ये महाकाव्य हैं—**रामायण** एवं **महाभारत**। रामायण के रचयिता महाकवि वाल्मीकि एवं महाभारत के वेद व्यास थे। **इन महाकाव्यों से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व आर्थिक स्थिति पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।** राजनीतिक दृष्टिकोण से रामायण की अपेक्षा महाभारत का अधिक महत्त्व है। किन्तु फिर भी इनमें वर्णित राजनीतिक घटनाओं पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता है। **डॉ० आर०एस० त्रिपाठी** ने इस विषय में लिखा है, "**निस्सन्देह, इन प्रबन्ध महाकाव्यों में भारत की तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक स्थितियों का रुचिकर संग्रह हुआ है, परन्तु राजनीतिक घटनाओं के क्रमबद्ध इतिहास के रूप में ये नितान्त असन्तोषजनक हैं।**"

(h) **पुराण**—पुराणों की संख्या अठारह है, परन्तु इनमें से आठ का ही अधिक ऐतिहासिक महत्त्व है। ये हैं—**मत्स्य, भागवत्, विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड, गरुड़, अग्नि एवं मार्कण्डेय पुराण।** 'पुराण' का अर्थ प्राचीन होता है। पुराणों में प्राचीन भारत के इतिहास, धर्म, आख्यान, विज्ञान, राजनीतिक स्थिति आदि का विस्तृत रूप से विवरण है। सम्भवत: इसी कारणवश **डॉ० आर०एस० त्रिपाठी** ने लिखा है, "**पुराण अन्धकूप में आलोक-रश्मि का कार्य करते हैं।**"

(ii) **बौद्ध धर्म ग्रन्थ**—ब्राह्मण धर्म ग्रन्थों के समान ही बौद्ध-ग्रन्थों से भी प्राचीन-भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। बौद्ध धर्म ग्रन्थों में निम्नलिखित प्रमुख हैं—

(a) **पिटक**—पिटकों की संख्या तीन है। ये हैं—विनय पिटक, सुत्त पिटक व अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में मठ में रहने वाले भिक्षुओं के लिए आवश्यक निर्देश हैं। सुत्त पिटक में महात्मा बुद्ध के उपदेशों (Teachings) का सार दिया गया है। अभिधम्म पिटक के सात संग्रह हैं। इनमें महात्मा बुद्ध के उपदेशों की दार्शनिक रूप में व्याख्या की गयी है। तीनों पिटकों की भाषा 'पालि' है।

(b) **जातक**—बौद्ध-ग्रन्थों में जातक का दूसरा प्रमुख स्थान है। जातक में महात्मा बुद्ध के पूर्व-जन्मों का विवरण है जो कथाओं के रूप में है। इन कथाओं से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "**जातक कथाओं का महत्त्व अमूल्य है। मात्र कला एवं साहित्य के सन्दर्भ में नहीं, उनका महत्त्व तत्कालीन भारतीय सभ्यता के इतिहास के दृष्टिकोण से भी है।**"

(c) **अन्य बौद्ध-ग्रन्थ**—त्रिपिटक एवं जातकों के अतिरिक्त कुछ अन्य बौद्ध-ग्रन्थों से भी भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। **मिलिन्दपन्हो** नामक ग्रन्थ से मिनेण्डर के समय की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति के विषय में जानकारी उपलब्ध होती है। '**दीपवंश**' व '**महावंश**' से मौर्यकाल के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। इनसे श्रीलंका के राजवंशों का ऐतिहासिक वर्णन प्राप्त होता है। कनिष्क के शासनकाल में अश्वघोष द्वारा लिखित बुद्धचरित '**महाविभाव**' एवं संस्कृत भाषा में '**ललित विस्तर**' से महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। **दिव्यावदान, वैपुल्यसूत्र** तथा **मंजूश्रीमूलकल्प** अन्य प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ हैं।

(iii) **जैन-ग्रन्थ**—बौद्ध-ग्रन्थों के समान जैन-ग्रन्थ भी पूर्णतया धार्मिक होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। जैन-ग्रन्थों में **त्रिलोक प्रजटित, आराधना कथा कोष, स्थविरावलि, आवश्यक सूत्र, भगवती सूत्र, भद्रबाहुचरित, परिशिष्टपर्व, पुण्याश्रव कथाकोष, लोक विभाग** आदि प्रमुख हैं। जैन-साहित्य बारह अंगों में विभक्त है। जैन साहित्य से हमें 24 तीर्थंकरों तथा महावीर स्वामी के काल में तत्कालीन भारत के राजतन्त्रों एवं गणतन्त्रों पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।

2. **धर्म-निरपेक्ष साहित्य**—धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो किसी धर्म से सीधा सम्पर्क नहीं रखते अथवा किसी धर्म विशेष से प्रभावित नहीं हैं। **धर्म-निरपेक्ष साहित्य को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—**

(i) **कल्पना प्रधान, लोक-साहित्य, जीवन चरित्र एवं अन्य ग्रन्थ**—विदेशियों के द्वारा भारत के विषय में लिखे गये वर्णन के अतिरिक्त सम्पूर्ण धर्म-निरपेक्ष साहित्य इसी शीर्षक के अन्तर्गत आ जाता है। कुछ प्रमुख ग्रन्थ, जो ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं, निम्नलिखित हैं—

(a) **अर्थशास्त्र**—इस ग्रन्थ की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमन्त्री चाणक्य ने ई०पू० चौथी शताब्दी में की थी। **तत्कालीन शासन-व्यवस्था पर इस ग्रन्थ से व्यापक प्रकाश पड़ता है।** राजनीति, कूटनीति एवं शासन प्रबन्ध पर यह एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है। मौर्यकाल के विषय में जानकारी देने वाली यह सबसे प्रामाणिक पुस्तक है। अर्थशास्त्र की तुलना मैकियावली के ग्रन्थ 'दि प्रिंस' से की जाती है।

(b) **मुद्राराक्षस**—इस नाटक की रचना विशाखदत्त ने की थी। इसमें नन्द राजा के पतन तथा चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त को राजा बनाये जाने का उल्लेख है। इस नाटक की रचना सातवीं शताब्दी में हुई थी।

(c) **कालिदास की रचनाएँ**—पाँचवीं शताब्दी ई० के प्रसिद्ध संस्कृत कवि तथा नाटककार इनके द्वारा रचित ग्रन्थों से तत्कालीन संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। 'मालविकाग्निमित्र' में पुष्यमित्र व यवनों के मध्य हुए युद्ध का भी उल्लेख है। अन्य रचनाएँ—कुमारसंभव, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मेघदूतम् एवं ऋतुसंहार आदि।

(d) **हर्षचरित**—'हर्षचरित' की रचना सातवीं सदी में बाणभट्ट ने की थी। इस ग्रन्थ से हर्षकालीन प्रत्येक प्रमुख घटना की जानकारी प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ का विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'कादम्बरी' की भी रचना की थी।

(e) **महाभाष्य**—पतंजलि के महाभाष्य से मौर्यकाल के विषय में जानकारी मिलती है।

(f) **गार्गी संहिता**—इसमें भारत पर यवनों के आक्रमण का उल्लेख है।

(g) **राजतरंगिणी**—राजतरंगिणी का रचनाकार कल्हण नामक विद्वान था। इस ग्रन्थ से कश्मीर के इतिहास के विषय में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ की रचना बारहवीं शताब्दी में हुई थी। इस ग्रन्थ का भी अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व है।

(h) **नवसाहसांक चरित**—परमार-वंश की घटनाओं पर प्रकाश डालने वाले इस ग्रन्थ की रचना परिमलगुप्त ने की थी।

(i) **गौडवाहो**—इस ग्रन्थ का रचयिता वाक्पतिराज था। इस ग्रन्थ में कन्नौज नरेश यशोवर्मा की विजयों का वर्णन है।

(j) **विक्रमांकदेवचरित**—इस ग्रन्थ से चालुक्य वंश के इतिहास के विषय में जानकारी मिलती है। इस ग्रन्थ की रचना बिल्हण ने की थी।

(k) **पृथ्वीराजरासो**—चन्दबरदाई द्वारा लिखित इस ग्रन्थ से चौहानवंशीय शासक पृथ्वीराज द्वितीय के विषय में महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है।

(ii) **विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त**—समय-समय पर अनेक विदेशी विद्वानों ने भारत की यात्रा की व अपने संस्मरण लिखे। यद्यपि विदेशी यात्रियों में से अनेक के संस्मरण उपलब्ध नहीं हैं, तथा किंवदन्तियों से प्रभावित होने के कारण कहीं-कहीं पूर्णतया प्रामाणिक नहीं हैं, किन्तु फिर भी, इन वृत्तान्तों से भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। **भारत सम्बन्धी अपने संस्मरण विभिन्न देशों से आये विद्वानों ने लिखे हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है—**

(a) **यूनानी वृत्तान्त**—यूनानी लेखकों (जो भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालते है) में **हेरोडोटस** (Herodotus) प्राचीनतम लेखक है। हेरोडोटस द्वारा लिखित 'हिस्टोरिका' से भारत की उत्तर-पश्चिमी जातियों तथा भारतीय सीमाप्रान्त व हखमनी साम्राज्य के मध्य राजनीतिक सम्पर्क पर प्रकाश पड़ता है। क्टेशियस (Ktesias) ने भी

अपनी रचना में भारत के विषय में लिखा है। **इनके अतिरिक्त सिकन्दर के साथ आये हुए अनेक लेखकों ने भारत के विषय में अपने विचार लिखे हैं।** सिकन्दर के कुछ समय पश्चात् **मेगस्थनीज** (Megasthenes) चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में यूनानी राजदूत के रूप में आया। मेगस्थनीज व्यक्तियों एवं घटनाओं का अवलोकन अत्यन्त पैनी दृष्टि से करता था। उसने अपनी पुस्तक **'इण्डिका'** में भारतीय संस्थाओं, भूगोल, कृषि इत्यादि के विषय में लिखा, परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी पुस्तक उपलब्ध नहीं है। प्लूटार्क तथा स्ट्रेबो के लेख मौर्यकालीन भारतीय इतिहास पर काफी महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराते हैं।

इसी प्रकार टालेमी के लेख प्राचीन भारतीय व्यापार पर प्रकाश डालते हैं। **टॉलेमी** (Ptolemy) का **'भूगोल'** व **प्लिनी** (Pliny) की **'नेचुरल हिस्ट्री'** आदि पुस्तकें भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त किसी अज्ञात लेखक द्वारा लिखित पुस्तक **'पेरिप्लस ऑफ एरिथियन सी'** नामक ग्रन्थ से भारतीय वाणिज्य बंदरगाह तथा तत्कालीन प्राकृतिक दशा का वर्णन मिलता है। सम्भवत: यह एक यूनानी नाविक था। जो प्रथम व द्वितीय शताब्दी के मध्य हिन्द महासागर की यात्रा पर निकला था।

(b) **चीनी वृत्तान्त**—यूनानी-ग्रन्थों के समान ही चीनी यात्रियों के वृत्तान्त भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इसमें उन अनेक मध्य एशियाई जातियों के परिभ्रमण का उल्लेख है जिन्होंने भारत को प्रभावित किया। **सुमाचीन** (S-SU-MA-CHIEN) **चीन का प्रथम इतिहासकार था, जिसके ग्रन्थ से भारत पर प्रकाश पड़ता है।** सुमाचीन ई०पू० प्रथम शताब्दी में हुआ था। इसके अतिरिक्त फाह्यान, ह्वेनसांग व इत्सिंग भी चीनी इतिहास में अमर हैं ही, भारत के दृष्टिकोण से भी बहुत महत्त्व रखते हैं। इनके वर्णनों के अतिरिक्त हुई-ली (Hwai-li) द्वारा लिखित **ह्वेनसांग की 'जीवनी'** (Life) व **मा-त्वा-लिन** (Ma-Twa-Lin) की रचनाओं से भी भारत के विषय में विपुल जानकारी प्राप्त होती है।

(c) **तिब्बती वृत्तान्त**—तिब्बती लामा तारानाथ द्वारा रचित **'कंग्युर'** व **'तंग्युर'** ग्रन्थ में वर्णित वृत्तान्त भारतीय इतिहास के निर्माण में बहुत सहायक हुए हैं। चीनी, तिब्बती लेखकों के विवरण से मौर्यकाल के पश्चात् के प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी मिलती है।

(d) **मुसलमान यात्रियों के वृत्तान्त**—मुसलमान यात्रियों के वृत्तान्तों का भारतीय इतिहास की दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व है। इन यात्रियों में अल्बरूनी विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि वह संस्कृत भी जानता था। **उसने 'तहकीक-ए-हिन्द' की रचना की जिससे तत्कालीन-भारत के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है।** अल्बरूनी महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। अल्बरूनी के अतिरिक्त अल-बिलारी, सुलेमान हसन निजामी, फरिश्ता व अलमसूदी अन्य प्रमुख मुसलमान यात्री हैं जिनके वृत्तान्तों से पता चलता है कि किस प्रकार मुसलमानों ने भारत पर अधिकार किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपरोक्त विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त भारत की भौगोलिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं तथा इतिहास की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में सहायक बनते हैं। डॉ० आर०एस० त्रिपाठी ने लिखा है, **"यूनानी सैण्ड्रोकोटस व चन्द्रगुप्त मौर्य की एकरूपता प्रमाणित हो जाने के पश्चात् ही भारतीय तिथिक्रम** (Chronology) **का प्रादुर्भाव हुआ।"**

प्र.6. भारतीय संस्कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

Throw light on salient features of Indian culture.

उत्तर

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ
(Salient Features of Indian Culture)

भारतीय संस्कृति के निर्माण का क्रम निरन्तरता एवं प्रवाह से अभिभूत है। अत: दीर्घकाल के नैरन्तर्य ने इसे विशिष्ट विशेषताओं से सिंचित किया है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

1. प्राचीनता एवं चिरस्थायिता (Antiquity and Permanence)

विश्व में चीन एवं भारत की ही संस्कृतियाँ ऐसी हैं, जो कि अबाध रूप से आवश्यक परिवर्तनों के साथ आज तक स्थायी हैं। **भारत की सभ्यता के अवशेष चार लाख से दो लाख ई०पू० के मध्य माने जाने वाले प्रागैतिहासिक युग से ही प्राप्त होते हैं।** भारत की

प्रथम संस्कृति सिन्धु घाटी की संस्कृति मानी जाती है। भाषा, धर्म, कला, साहित्य, सामाजिक व्यवस्था आदि दिशाओं में आदर्श क्रियाकलाप एवं रचनात्मक जीवन की गतिविधियाँ 5,000 वर्षों से एक ही मार्ग पर चले आ रहे हैं। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियाँ, भगवद्गीता आदि भारतीय धार्मिक विचारों के आज तक आधार-स्तम्भ हैं। स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति की आधारशिला आध्यात्मवाद है।

2. आध्यात्मिकता (Spirituality)

अरविन्द घोष के शब्दों में, "**आध्यात्मिकता भारतीय मस्तिष्क को समझने की कुंजी है।**' भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन कर्मप्रधान है। यहाँ की आध्यात्मिकता मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार से रहित है। वह आत्म तत्व का साक्षात्कार (अनुभव के माध्यम से) करना चाहती है। आत्मदर्शन ही भारतीय दर्शन है।

(**'मनुष्य को चाहिए कि वह चारों ओर के संग का विसर्जन कर तथा विषयों को बाहर ही छोड़कर धीरे-धीरे स्वतः को अन्तर्मुख प्रवाहित करना जाने।**') पाश्चात्य दर्शन से इसी सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि यहाँ की मनीषा ने लौकिक जगत की अवहेलना की हो। वर्णाश्रम व्यवस्था, शिक्षा पद्धति, कर्मवाद का सिद्धान्त, अहिंसा, पुरुषार्थ चतुष्टय भारतीय संस्कृति को निराशावादी नहीं कहला सकते। **इसी कारण साम्राज्यों का निर्माण, विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार, विज्ञान, साहित्य एवं कला की अभूतपूर्व वृद्धि हो सकी।** अतः कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक दृष्टि से इहलोक व परलोक में सुन्दर समन्वय स्थापित करने में पूर्ण सफल रही है।

3. सहिष्णुता (Tolerance)

आध्यात्मिकता का सीधा परिणाम सहिष्णुता है। आध्यात्म में विनयता एवं नम्रता ने '**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः**' की सद्भावना को जन्म दिया। इस सद्भावना ने धार्मिक सहिष्णुता की भावना को जन्म दिया। महाभारत में स्पष्ट उल्लिखित है—

'धर्म यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्मतत्।
अविरोधास्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः॥

(**जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचाए, वह धर्म नहीं वह तो कुमार्ग है। धर्म तो वह होता है जो धर्म विरोधी नहीं होता।**) भारत में बाहर से इस्लाम, यहूदी, पारसी और ईसाई समय-समय पर आये और अबाध रूप से पुष्पित एवं पल्लवित हुए। स्वयं भारत हिन्दू, जैन, बौद्ध एवं सिख धर्मों की जन्म-स्थली है। हिन्दू धर्म के ही अनेक सम्प्रदाय अलग-अलग सिद्धान्तों में एक-दूसरे से पृथक हैं। इतना सब कुछ होते हुए सभी धर्म एवं सम्प्रदाय अबाध रूप से पुष्पित एवं पल्लवित रहे। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है।

4. विविधता में एकता (Unity in Diversity)

भारत के प्रत्येक प्रदेश को खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, धर्म, भाषा आदि विभिन्नताओं को आधार मानकर प्रायः यह कहा जाता है कि "**भारतवर्ष एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र है।**" परन्तु जलवायु, जाति, धर्म और भाषा आदि में विभिन्नता होते हुए भी भारत की मौलिक एकता को सहज स्वीकार किया जा सकता है। भारत की भौगोलिक सीमाओं ने उसे '**भौगोलिक इकाई**' का रूप प्रदान किया है। **इतिहासकार स्मिथ** के शब्दों में, '**भारत निःसन्देह एक स्वतन्त्र भौगोलिक इकाई है जिसका एक नाम होना सर्वथा उचित है।**' इस भौगोलिक एकता को दृष्टिगत करते हुए ही विष्णु पुराण में कहा गया, '**समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का सारा प्रदेश भारत है और उसके निवासी सब भारत की सन्तान है।**'

भारत की आध्यात्मिकता में सांस्कृतिक एकता के चिह्न स्पष्ट होते हैं। प्रत्येक सनातनी हिन्दू स्नान करते समय कहता है कि **मैं गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, सिन्धु और काबेरी के जल में स्नान करूँ।** अतः स्पष्ट है कि उसका दृष्टिकोण एक नदी तक नहीं, भारत की सभी नदियों तक विस्तृत है। चारों मठ भारत को एक सीमा में बाँधने का प्रयत्न है। धार्मिक विभिन्नताओं के होते हुए भी हिन्दू, मुसलमान, पारसी एवं ईसाई कतिपय आर्थिक व राजनीतिकबन्धनों से जुड़े हैं। इसीलिए **स्वामी विवेकानन्द** ने कहा था, "**भारतीय राष्ट्र का अस्तित्व तब तक रहेगा जब तक कि वे अपनी आध्यात्मिकता का त्याग नहीं करेंगे।**"

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं अभिलेखों में सार्वभौम सम्राट की कल्पना एवं ऐतिहासिक युग में अश्वमेघ यज्ञ की धारणाएँ राजनीतिक जीवन में एकता की भावना का प्रयास था। राष्ट्रीय एकता की स्थापना की भावना ने '**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**' (जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती हैं) जैसे उद्गारों को जन्म दिया।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि भारतवासियों ने भारत को एक भौगोलिक इकाई मानते हुए देश-प्रेम को धर्म से जोड़ दिया।

5. ग्रहणशीलता (Receptivity)

भारत की सांस्कृतिक विशेषता में उसकी उदार ग्रहणशीलता को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारत में जितनी भी विदेशी जातियँ आईं, उन्होंने भारत को राजनीतिक दृष्टि से तो अपने अधीन अवश्य किया, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से वे भारत को विजय नहीं कर पाईं। **प्राचीन भारत में जितनी भी विदेशी जातियाँ यहाँ आईं वे भारतीय रंग में रंग गईं। फलस्वरूप विभिन्न भाषाओं, रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं का जन्म हुआ, परन्तु भारत की सांस्कृतिक एकता यथावत् बनी रही।**

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति भारत की आत्मा है। भारतीय संस्कृति की कहानी एकता व समन्वयवाद की कहानी है। **उसकी प्रमुख विशेषताएँ मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायक हैं।**

प्र.7. इतिहास के सन्दर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of the Indian knowledge system in the context of history.

उत्तर

इतिहास के सन्दर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली
(Indian Knowledge System in the Context of History)

इतिहास के विषय में भारतीय ज्ञान प्रणाली को हम वेद, आरण्यक, महाकाव्य, पुराण, स्मृति ग्रन्थ, उपनिषद्, वेदांग, सूत्र, बौद्ध ग्रन्थ, जैन ग्रन्थ और प्राचीन लौकिक साहित्य के अध्ययन करने से समझ सकते हैं। यह साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इतिहास के सन्दर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली के निम्न प्रकार समझ सकते हैं—

1. **आरण्यक और उपनिषदों द्वारा**—उत्तर वैदिक कालीन समाज तथा संस्कृति के सम्बन्ध में आरण्यकों और उपनिषदों से अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। वैदिक संहिताओं की व्याख्या करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य विद्या में लिखे गए हैं। प्रत्येक संहिता के लिए अलग-अलग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं; जैसे—ऋग्वेद के लिए ऐतरेय तथा कौषीतकी, यजुर्वेद के लिए तैत्तिरीय तथा शतपथ, सामवेद के लिये पंचविश, अथर्ववेद के लिए गोपथ इत्यादि। ये ग्रन्थ हमें परीक्षित के पश्चात् व बिम्बिसार के पूर्व की घटनाओं का महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्रदान करते हैं। ऐतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय, पंचविश आदि प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं। शतपथ में गान्धार, शल्य, कैकय, कुरू, पांचाल, कोसल, विदेह इत्यादि के राजाओं का उल्लेख है। ऐतरेय में राज्याभिषेक के नियम और कुछ प्राचीन राजाओं के नाम हैं। प्राचीन इतिहास के साधन के रूप में वैदिक साहित्य में ऋग्वेद के बाद शतपथ ब्राह्मण का स्थान है। कर्मकाण्डों के अतिरिक्त इसमें सामाजिक विषयों का भी वर्णन है। इसी प्रकार आरण्यक तथा उपनिषदों में भी ऐतिहासिक तथ्यों की प्राप्ति होती है, यद्यपि ये मुख्यत: दार्शनिक ग्रन्थ हैं जिनका ध्येय ज्ञान का अन्वेषण करना है।
2. **वेदों द्वारा**—भारत के सबसे प्राचीन धर्म ग्रन्थ महर्षि कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यास द्वारा रचित वेद माने जाते हैं। वैदिक युग की सांस्कृतिक दशा के ज्ञान का एकमात्र स्रोत होने के कारण वेदों का ऐतिहासिक महत्त्व अत्यधिक है। प्राचीनकाल के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री हमें प्रचुर रूप में वेदों से उपलब्ध होती है। वेदों की संख्या चार है— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इनमें ऋग्वेद भारत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। यह भारत तथा भारतेतर प्रदेशों के आर्यों के इतिहास, भाषा, धर्म एवं उनकी सामान्य संस्कृति पर प्रकाश डालता है। विद्वानों के अनुसार आर्यों ने इसकी रचना पंजाब में की थी जब वे अफगानिस्तान से लेकर गंगा-यमुना के प्रदेश तक ही फैले थे।
   यद्यपि ऋग्वेद में ठोस ऐतिहासिक सामग्री बहुत कम मिलती है, किन्तु इसके कुछ मन्त्र ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख अवश्य करते हैं; जैसे—एक स्थान पर 'दस राजाओं के युद्ध' (दाशराज्ञ) का वर्णन है। यह ऋग्वैदिक काल की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। यह युद्ध भरत कबीले के राजा सुदास के साथ हुआ था। यह युद्ध आर्यों के दो प्रमुख जनों—पुरु तथा भरत के मध्य हुआ था। भरत जन का नेता सुदास था जिसके पुरोहित वशिष्ठ थे। इनके विरुद्ध दस राजाओं का एक संघ था जिसके पराहित विश्वामित्र थे। सुदास ने रावी नदी के तट पर दस राजाओं के इस संघ को परास्त किया और इस प्रकार वह ऋग्वैदिक भारत का चक्रवर्ती शासक बन बैठा। सामवेद तथा यजुर्वेद में किसी भी विशिष्ट ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं है।
3. **महाकाव्यों द्वारा**— वेदों को भली-भाँति समझने के लिए वेदांगों की रचना की गई। ये संख्या में शिक्षा, ज्योतिष, कल्प, व्याकरण, निरुक्त और छन्द-छह हैं। ये वेदों के शुद्ध उच्चारण तथा यज्ञादि करने में सहायक थे। वैदिक साहित्य को अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु सूत्र साहित्य का सृजन किया गया। श्रौत, गृह्य तथा धर्मसूत्रों के अध्ययन से यज्ञीय विधि-विधानों, कर्मकाण्डों, राजनीति, विधि एवं व्यवहार से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं।

रामायण व महाभारत महाकाव्यों का भारतीय साहित्य में अत्यधिक महत्त्व है। भारत के सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य में इन दोनों महाकाव्यों का बहुत आदरणीय स्थान है। इनके अध्ययन से हमें प्राचीन हिन्दू संस्कृति के विविध पक्षों का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इन महाकाव्यों द्वारा प्रतिपादित आदर्श व मूल्य सार्वभौम मान्यता रखते हैं। रामायण आदि-काव्य है जिसकी रचना महर्षि वाल्मीकि ने की थी। इसमें हिन्दुओं तथा यवनों व शकों के संघर्ष का विवरण प्राप्त होता है। इसमें यवन-देश तथा शकों का नगर, कुरु तथा मद्र देश और हिमालय के बीच स्थित बताया गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनों यूनानी तथा सीथियन लोग पंजाब के कुछ भागों में बसे हुए थे। वेदव्यास कृत महाभारत राजनीति तथा शासन के सम्बन्ध में बहुमूल्य सामग्री का भण्डार है। इसमें भी शक, यवन, पारसीक, हूण आदि जातियों का उल्लेख है। इससे प्राचीन भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक दशा का परिचय मिलता है।

4. **लौकिक साहित्य द्वारा**—ऐतिहासिक, अर्द्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा जीवनियों को लौकिक साहित्य के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है जिनसे भारतीय इतिहास जानने में सहायता मिलती है।
ऐतिहासिक रचनाओं के अन्तर्गत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'अर्थशास्त्र' की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमन्त्री सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य ने की थी। चाणक्य को कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त नाम से भी जाना जाता था। मौर्यकालीन इतिहास एवं राजनीति के ज्ञान के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्रोत है।
अर्द्ध-ऐतिहासिक रचनाओं के अन्तर्गत कात्यायन का वार्त्तिक, गार्गीसंहिता, पाणिनि की 'अष्टाध्यायी', पतंजलि का महाभाष्य, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस व कालिदासकृत मालविकाग्निमित्र आदि आते हैं। पाणिनि तथा कात्यायन के व्याकरण-ग्रन्थों से मौर्यों के पूर्व के इतिहास तथा मौर्ययुगीन राजनीतिक अवस्था का ज्ञान होता है।
ऐतिहासिक जीवनियों के अन्तर्गत अश्वघोष का बुद्धचरित, वाक्पति का गौडवहो, बाणभट्ट का हर्षचरित, विल्हण का विक्रमांकदेवचरित, सन्ध्याकर नन्दिन का 'रामचरित', पद्मगुप्त का नवसाहसांकचरित, हेमचन्द्र का 'कुमारपालचरित' (द्वयाश्रयकाव्य), जयानक कृत 'पृथ्वीराजविजय' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। 'बुद्धचरित' में गौतम बुद्ध के चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन है। 'हर्षचरित' से सम्राट हर्षवर्धन के जीवन तथा तत्कालीन समाज एवं धर्म-विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।
दक्षिण भारत से भी बहुत-से तमिल ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिनमें वहाँ शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों के काल का इतिहास एवं संस्कृति का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। नन्दिक्कलम्बकम्, कलिंगत्तुपर्णि, चोलचरित आदि के द्वारा सुदूर दक्षिण में शासन करने वाले पल्लव तथा चोल वंशों के इतिहास एवं उनकी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त होता है। तमिल देश का प्रारम्भिक इतिहास संगम-साहित्य से ज्ञात होता है।

5. **पुराणों व स्मृतियों द्वारा**—पुराणों की संख्या 18 है। रचयिता लोमहर्ष या उनके पुत्र उग्रश्रवा माने जाते हैं। सर्वप्रथम **पार्जिटर** नामक विद्वान् ने इनके ऐतिहासिक महत्त्व की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। अठारह पुराणों में से केवल पाँच (मत्स्य, वायु, विष्णु ब्रह्माण्ड, भागवत) में ही राजाओं की वंशावली मिलती है। पुराणों में शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, गुप्त वंश आदि की वंशावलियाँ भी मिलती हैं। इनमें मत्स्य-पुराण सर्वाधिक प्राचीन व प्रामाणिक है। मौर्यवंश के लिए विष्णु पुराण तथा आन्ध्र (सातवाहन) वंश के लिए मत्स्य-पुराण महत्त्व के हैं। इसी प्रकार वायु पुराण में गुप्त वंश की साम्राज्य सीमा का वर्णन तथा गुप्तों की शासन-पद्धति का भी विवरण मिलता है। वस्तुतः पुराण प्राचीनकाल से लेकर गुप्तकाल के इतिहास से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का परिचय कराते हैं।
स्मृति ग्रन्थों को 'धर्मशास्त्र' के नाम से भी जाना जाता है। इनमें मनुस्मृति सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक मानी जाती है। अन्य स्मृतियों में बृहस्पति, कात्यायन, याज्ञवल्क्य, नारद, देवल आदि की स्मृतियाँ भी प्रमुख हैं। नारद स्मृति गुप्त-युग के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करती है। मनुस्मृति को शुंग काल का मानक ग्रन्थ माना जाता है। इसके अध्ययन से शुंगकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दशा का ज्ञान होता है। कालान्तर में इन पर अनेक विद्वानों द्वारा टीकाएँ भी लिखी गयीं। मनुस्मृति के प्रमुख टीकाकार भारुचि, मेधातिथि, गोविन्दराज तथा कुल्लूक भट्ट हैं। विश्वरूप, विज्ञानेश्वर तथा अपरार्क, याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रमुख टीकाकार हैं। इन समस्त टीकाओं से हिन्दू समाज के विविध पक्षों के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

6. **बौद्ध व जैन ग्रन्थों द्वारा**—बौद्ध ग्रन्थों के अन्तर्गत दीपवंश तथा महावंश नामक दो पालि भाषा के ग्रन्थों से मौर्यकालीन इतिहास के सम्बन्ध में सूचना मिलती है। पालि भाषा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नागसेन द्वारा रचित 'मिलिन्दपन्हो'

(मिलिन्द-प्रश्न) है जिससे हिन्द-यवन शासक मेनाण्डर के विषय में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में लिखे गए अन्य कई बौद्ध ग्रन्थ भी हैं जो बौद्ध धर्म के दोनों सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान से अशोक के उत्तराधिकारियों से लेकर पुष्यमित्र शुंग तक के शासकों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त होती है।

जैन ग्रन्थों में आचारांगसूत्र, भगवतीसूत्र, कालिकापुराण, परिशिष्टपर्वन, भद्रबाहुचरित, आवश्यकसूत्र आदि प्रमुख हैं। इनसे अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना मिलती है। जैन धर्म का प्रारम्भिक इतिहास 'कल्पसूत्र' (लगभग चौथी शती ई०पू०) से ज्ञात होता है जिसकी रचना भद्रबाहु द्वारा की गई थी। भगवतीसूत्र में महावीर के जीवन, कृत्यों तथा अन्य समकालीनों के साथ उनके सम्बन्धों का विवरण मिलता है। परिशिष्टपर्वन् तथा भद्रबाहुचरित से चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन की प्रारम्भिक तथा उत्तरकालीन घटनाओं का उल्लेख है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक चेतना के अभाव के बावजूद प्राचीन साहित्य ऐतिहासिक बोध कराने में सक्षम हैं। वस्तुत: भारतीय ज्ञान प्रणाली नैतिक मूल्यों को अधिक महत्त्व देती है। इसी दृष्टि से घटनाओं का संकलन हुआ, फिर भी पर्याप्त मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री भी मिलती है।

प्र.8. उच्च-पुरापाषाणकाल की संस्कृतियों को कितने भागों में विभाजित किया गया है? वर्णन कीजिए।
Into how many parts have the cultures of upper palaeolithic period been divided?

उत्तर

उच्च-पुरापाषाण की संस्कृति का वर्गीकरण
(Classification of Upper Palaeolithic Culture)

उच्च-पुरापाषाणकाल की संस्कृतियों को छह भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **पूर्वी क्षेत्र**—पूर्वी क्षेत्र के अन्तर्गत बिहार, पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा के क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है। इसमें **झारखण्ड** के रांची, पलामू; **बिहार** प्रान्त के भागलपुर, राजगिर आदि जिलों से लघुपाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं। **पश्चिम बंगाल** के बर्दवान, बांकुड़ा, बीरभूम, मेदनीपुर तथा पुरुलिया नामक स्थानों विशेष रूप से बर्दवान के **बीरभानपुर** नामक स्थान से मध्य पाषाण काल के अनेक स्थल देखने को मिले हैं। इसी के अन्तर्गत **उड़ीसा** में सुन्दरगढ़, धनेकनाल, पुरी, क्योंझर तथा मयूरभंज जिलों के अनेक स्थानों से मध्य पाषाण काल के लघुपाषाण उपकरण प्राप्त हुए हैं।
2. **पश्चिमी क्षेत्र**—पश्चिमी क्षेत्र के अन्तर्गत राजस्थान, गुजरात तथा महाराष्ट्र को सम्मिलित किया गया है। राजस्थान में बाडमेर जिले में स्थित तिलबाडा, पूर्वी राजस्थान का क्षेत्र तथा **राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के बागोर नामक स्थान पर उत्खनन का कार्य अपेक्षाकृत** विस्तृत पैमाने पर किया गया है। यहाँ पर दो सांस्कृतिक कालों (1) मध्य पाषाण काल, (2) लौह काल के पुरावशेष मिले हैं। **इसके अतिरिक्त गुजरात में लंघनाब** नामक स्थान भी बहुचर्चित मध्य पाषाणिक पुरास्थल हैं। महाराष्ट्र में पैठन, नासिक, धुले, अहमदनगर तथा पुणे आदि जिलों में अनेक मध्य पाषाणिक पुरास्थल खोजे गए हैं।
3. **मध्य क्षेत्र—मध्य क्षेत्र में मध्य प्रदेश को रखा गया है।** इस प्रदेश के रीवा, पन्ना, जबलपुर, सागर, इन्दौर, खण्डवा, खरगोन, नरसिंहपुर, रायसेन, सिहोर इत्यादि क्षेत्रों से मध्यपाषाण काल की संस्कृति के अवशेष मिले हैं। रायसेन का भीमबेटका नामक स्थान भी विशेष रूप से इस सन्दर्भ में उल्लेखित किया जाता है।
4. **उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र**—उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र में उत्तर प्रदेश का दक्षिणी पठारी भाग सम्मिलित है। वाराणसी जिले की चकिया तहसील, सोनभद्र, मिर्जापुर जिलों के क्षेत्र, इलाहाबाद जिले की मेजा, करछना तथा बारा तहसीलें, बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झाँसी और ललितपुर जनपदों का समस्त क्षेत्र सम्मिलित है जिसमें से मिर्जापुर जिले में स्थित **मोरहना पहाड़ की खोज एस०सी०एल० कार्लाइल ने उन्नीसवीं सदी में की थी तथा बहुत अधिक संख्या में लघु पाषाण उपकरण उपलब्ध किए थे।** इसके अतिरिक्त बघहीखोर, लेखहिया आदि ऐसे स्थान हैं, जो कि इस दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। लेखहिया स्थान से तो लघु पाषाण उपकरणों के अतिरिक्त सत्रह मानव कंकाल भी प्राप्त हुए, जो कि कुछ संख्या में सुरक्षित स्थिति में भी हैं। **इलाहाबाद जिले की मेजा तहसील में चोपनी-माण्डो नामक स्थान है जहाँ से विकसित मध्य पाषाण काल अथवा आद्य नवपाषाण काल से सम्बन्धित संस्कृति के अनेक तथ्य प्राप्त हुए हैं।**
5. **दक्षिणी क्षेत्र—दक्षिणी क्षेत्र में आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल को सम्मिलित किया गया है** जिसमें से आन्ध्र प्रदेश के गुण्टूर जिले में स्थित नागार्जुनीकोण्डा, कर्नूल जिले में गिद्दलूर तथा चित्तूर जिले में रेणिगुण्टा प्रमुख मध्य

पाषाणकालीन संस्कृति के क्षेत्र हैं। कर्नाटक के रायचूर, बेल्लारी, बंगलूरु, चित्रदुर्ग, बेलगांव तथा गुलबर्गा आदि जिलों में मध्य पाषाण काल की संस्कृति से सम्बन्धित तथ्य मिले हैं।

6. **मध्य गंगा घाटी**—मध्य गंगा घाटी के क्षेत्र के अन्तर्गत गंगा का विशाल, चौरस मैदान, हिमालय पर्वत तथा दक्षिण का पठारी भाग सम्मिलित किया गया है। **मध्य गंगा घाटी के प्रतापगढ़ जिले में स्थित सराय नाहर राय, महदहा तथा दमदमा में उत्खनन का कार्य हुआ है,** जिसके परिणामस्वरूप उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त हुई है। लघुपाषाण उपकरण तथा सींग से बने आभूषण तथा उपकरण, वन्य पशुओं की हड्डियाँ तथा मानव कंकाल इन तीनों स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

प्र.9. नवपाषाणिक संस्कृति का वर्गीकरण आप किस प्रकार करेंगे? समझाइए।
How will classify Neolithic Culture? Explain.

उत्तर

नवपाषाणिक संस्कृति का वर्गीकरण
(Classification of Neolithic Culture)

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर भारत की नवपाषाणिक संस्कृतियों को निम्नलिखित छह वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **उत्तरी भारत की नवपाषाणिक संस्कृति**—उत्तरी भारत में इस काल के अवशेष जम्मू-कश्मीर क्षेत्र के झेलम की घाटी में स्थित अनेक स्थलों से प्राप्त हुए हैं, जिनमें से बुर्जहोम, गुफकराल तथा मार्तण्ड विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। **इस काल में आयताकार मिट्टी तथा कंकड़ एवं पत्थर की दीवारों के बने मकानों के अवशेष मिले हैं, जिनमें चबूतरे तथा अनेक कमरों के होने के प्रमाण मिलते हैं। धूसर पात्र परम्परा,** हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड, अच्छी मिट्टी से बने बर्तन जिनको कि हल्के लाल रँगा से रंगा भी गया है, के अवशेष भी मिले हैं। **उपकरणों** में बुर्जहोम से प्राप्त अवशेषों में कुल्हाड़ी, छेनियाँ, बसूले, खुरपा तथ गँडासा, कुदाल इत्यादि उल्लेखनीय हैं। **गुफकराल** से पाषाण निर्मित बेधक, गदाशीर्ष तथा हड्डी के बने अनेक उपकरण मिले हैं। इसी क्षेत्र में खुदाई के पश्चात् पशुओं की जो हड़ियाँ मिली हैं, वे पालतू पशुओं की हैं जिनमें भेड़, बकरी तथा छोटे सींग वाले मवेशी हैं। कुछ ऐसे साक्ष्य मिले हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि हिरन तथा भालू इत्यादि पशुओं का शिकार आर्थिक पहलू से किया जाता था। **बुर्जहोम** क्षेत्र में अनेक स्थानों पर धनुष-बाण से शिकार करने का दृश्य पत्थर की शिलाओं पर चित्रित है। पक्षियों में मुर्गा पालतू पक्षी के रूप में तथा पशुओं में कुत्ता, भेड़िया तथा साकिन के पालतू होने के संकेत मिले हैं, क्योंकि इनकी हड्डियों को विधिवत् दफनाया गया है। **कृषि में मिश्रित अर्थव्यवस्था का चलन देखने को मिलता है** तथा जौ, गेहूँ एवं मसूर के अतिरिक्त इस काल में मटर के दाने भी प्राप्त हुए हैं। **शवाधान** के अन्तर्गत जो जानकारी प्राप्त हुई है, उसके अनुसार मनुष्य तथा पशुओं के पूर्ण एवं आंशिक शवाधान के साक्ष्य रहने के स्थानों के आस-पास से मिले हैं जिससे प्रतीत होता है कि आदमियों के साथ कुत्ते, बकरे आदि पालतू पशुओं को भी दफनाया जाता था।

2. **विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति**—उत्तर प्रदेश के गांगेय क्षेत्र के दक्षिण में स्थित पठारी भाग को दो भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित किया गया है—**बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड।** इस क्षेत्र से नवपाषाणिक काल की कुल्हाड़ियाँ समय-समय पर खुदाई के दौरान प्राप्त की गई हैं। पुरातात्विक अन्वेषणों के परिणामस्वरूप उत्तर-प्रदेश के इलाहाबाद जिले के दक्षिणांचल में, मेजा तहसील में स्थित बेलन घाटी में पंचोह, महगड़ा तथा बेलन की सहायक नदी अदवा की घाटी में इन्दारी एवं मध्य प्रदेश के सीधी जिले में सोन नदी की घाटी में स्थित कुन्हुन एवं ललनहिया नामक स्थान को भी इस काल के प्राचीन अवशेषों की प्राप्ति के क्षेत्रों में सम्मिलित किया जाने लगा है। **कोलडिहवा तथा महगड़ा के नवपाषाणिक स्थलों पर** खुदाई के परिणामस्वरूप जो प्रमाण मिले हैं उनके अनुसार लकड़ी के लट्ठों को जमीन में गाड़कर गोलाकार या अण्डाकार झोंपड़ियों का निर्माण किया जाता होगा। झोंपड़ियों के फर्श पर हस्तनिर्मित मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े, कुल्हाड़ियाँ, हथौड़े, सिल-लोढ़े, लघु पाषाण उपकरण, मिट्टी की गुरियाँ मिली हैं। मकानों का निर्माण गोलाकार पंक्ति के रूप में किया जाता था। **विन्ध्य क्षेत्र** में हस्तनिर्मित मिट्टी के बर्तन मिले हैं। मृद्भाण्ड काले तथा लाल दोनों ही रंगों के मिले हैं तथा अलंकृत कटोरे, तश्तरियाँ, तसले तथा घड़े भी प्राप्त हुए हैं। इसी क्षेत्र से उपकरणों में कुल्हाड़ी सबसे अधिक संख्या में प्राप्त हुई है। **पशुपालन तथा कृषि के विषय में** प्राप्त जानकारी के अनुसार पालतू पशुओं में मवेशियों तथा भेड़, बकरियों की हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं तथा मृद्भाण्डों के टुकड़ों पर धान, पुआल व भूसी के कार्बनीकृत अवशेष चिपके हुए मिले हैं। अनाज भरने के मटके तथा घड़े कृषि करने की प्रथा की ओर संकेत करते हैं।

3. **दक्षिण भारत की नवपाषाणिक संस्कृति**—मौसम परिवर्तन से प्रभावित घिसा-पिटा दक्षिण भारत का पठारी भाग भूतात्विक बनावट के दृष्टिकोण से भारत का सबसे प्राचीन भू-खण्ड है। **पिछले तीन-चार दशकों में इस क्षेत्र में अनेक प्राचीन स्थलों की खोज की गई तथा सबसे अधिक प्राचीन स्थल कर्नाटक में पाए गए** तथा उसके पश्चात् आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में स्थित हैं। कर्नाटक प्रदेश के पुरास्थलों में ब्रह्मगिरि, संगनकल, पिकलीहल, मास्की, टेक्कल-कोटा, हल्लूर, टी० नरसीपुर, कुपगल, हेम्मिगे, तेरदल तथा कोडेकल स्थान इस दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। पैय्यमपल्ली तमिलनाडु का तथा उतनूर, नागार्जुनीकोण्डा, पलवॉय आदि आन्ध्र प्रदेश के मुख्य क्षेत्र हैं। **दक्षिण भारत की नवपाषाणकाल की संस्कृति के लोग बाँस-बल्ली निर्मित गोलाकार एवं अण्डाकार झोंपड़ियों में रहते थे, जिनके फर्श साफ-सुथरे, गोबर से लिपे-पुते होते थे तथा दीवारों को चूने से पोता भी जाता था। धूसर या सलेटी तथा लाल रंग के मृद्भाण्ड प्रचलित थे। इसके अलावा तश्तरी, कटोरे तथा घड़ों के ढक्कनों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। उपकरणों** में ओपदार कुल्हाड़ी, बसूले, छेनियाँ एवं गेतियाँ भी प्राप्त हुई है। **कृषि तथा पशुपालन** के प्रमाण भी मिले हैं, उनके अनुसार चना, मूँग, कुलथी तथा रागी की खेती की जाती थी तथा भेड़, बकरी के साथ-साथ गाय-बैल, भैंस और सूअर आदि पालतू पशु थे। **शवाधान के सन्दर्भ में** प्राप्य प्रमाणों के अनुसार मुर्दों को मकान के अन्दर दफनाया जाता था तथा अन्त्येष्टि सामग्री के रूप में मृदभाण्ड, पत्थर की कुल्हाड़ी तथा लघु पाषाण उपकरण रखे जाते थे।
4. **मध्य गंगा घाटी की नवपाषाणिक संस्कृति**—इस संस्कृति का प्रसार गंगा नदी के उत्तर की ओर स्थित उत्तरी बिहार को माना जाता है। मध्य गंगा घाटी में **चिरांड** नामक स्थान पर इस संस्कृति का प्रसार देखने को मिलता है। चिरांड उत्तरी बिहार के सारन जिले में स्थित है। इस क्षेत्र के निवासियों का **आवास** मुख्य रूप से बाँस-बल्लियों से निर्मित झोंपड़ियाँ हैं। **मिट्टी के बर्तनों में चिरांड नामक स्थान से अनेक प्रकार के मृद्भाण्डों का प्राप्त होना मुख्य माना जाता है।** ये बर्तन सलेटी तथा काले रंग के थे तथा कुछ लाल रंग के भी हैं, जो कि आड़ी-तिरछी रेखाओं से अलंकृत हैं। **उपकरणों** में कुल्हाड़ी, बाण, छिदक, अगेट, जैस्पर, ब्लेड आदि मुख्य हैं। **कृषि तथा पशुपालन में**—नवपाषाणिक संस्कृति के लोगों के धान, मूँग, जौ, गेहूँ तथा मसूर की खेती करने के प्रमाण मिले हैं तथा गाय-बैल व भैंस के पालतू पशु होने के प्रमाण मिले हैं। सींग से बने उपकरण इस बात का प्रमाण हैं कि आखेट इनका प्रमुख जीविका का साधन रहा होगा।
5. **मध्य-पूर्वी नवपाषाणिक संस्कृति**—इस संस्कृति का प्रसार दक्षिणी बिहार, पश्चिमी बंगाल के पश्चिमी भाग तथा उड़ीसा में देखने को मिलता है। बिहार में बरूडीह, उड़ीसा में मयूरभंज के कुचाई नामक स्थल पर इस संस्कृति के प्रमाण मिले हैं। **मिट्टी के बर्तनों** में हस्त तथा चाक दोनों प्रकार के मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं, जो कि लाल, सलेटी तथा काले रंग के हैं। **उपकरणों** में कुल्हाड़ी, छेनियाँ, लोढ़े तथा खण्डित गदाशीर्ष प्राप्त हुए हैं। **कृषि तथा पशु-पालन** सम्बन्धी प्रमाण प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त नहीं हुए हैं।
6. **पूर्वोत्तर भारत की नवपाषाणिक संस्कृति**—इस क्षेत्र में नवपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित जानकारी असम, मेघालय तथा नागालैण्ड प्रान्तों, मिजोरम एवं अरुणाचल प्रदेश के केन्द्र शासित क्षेत्रों से अधिकांश रूप में मिली है। **मिट्टी के बर्तनों** में हस्त तथा चाक दोनों से निर्मित बर्तनों के प्रमाण मिले हैं। बर्तन मोटे तथा मध्यम गढ़न के हैं तथा लाल रंग के मृद्भाण्ड भी प्राप्त हुए हैं। **उपकरणों** में पत्थर की कुल्हाड़ियाँ, बसूले, छेनी, सिल-लोढ़े, मूसल आदि मुख्य रूप से मिले हैं। **कृषि तथा पशुपालन** से सम्बन्धित प्रमाण अधिक मात्रा में नहीं मिले हैं, परन्तु फिर भी यह सम्भावना प्रकट की जाती है कि **यहाँ पर झूम-कृषि या अस्थायी कृषि का प्रचलन रहा होगा।**

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में नवपाषाणिक संस्कृति विकसित हुई थी।

प्र.10. नवपाषाण काल में मानव जीवन की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the main characteristics of the human life in Neolithic Period.

उत्तर

नवपाषाण काल में मानव जीवन
(Human Life in the Neolithic Period)

नव पाषाणकालीन मानव जीवन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित थीं—

1. **हथियार व औजार (उपकरण)**—अनेक स्थानों से सेल्ट, कुल्हाड़ी, एड्ज, पालिशर, हैमर स्टोन, फैब्रिकेटर, स्लिक स्टोन नामक हथियार उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। इस समय के हथियारों में चमकदार पॉलिश देखने को मिलती है। यह हथियार पूर्व की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित व नुकीले, तीखे व सुन्दर हैं। कतिपय हथियारों में हड्डी व लकड़ी की मूँठ

भी प्राप्त हुई है। **हँसिया व पहिया का भी प्रयोग होने लगा था।** इन उपकरणों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये उपकरण केवल आखेट के लिए निर्मित नहीं किए गए थे वरन् अन्य कार्यों के लिए भी निर्मित थे। पहिया के आविष्कार ने विभिन्न दूरी पर बसे लोगों को एक-दूसरे से मिलाया। वास्तव में, यह युग आधुनिक यातायात का जन्मदाता था।

2. **कृषि**—इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता इस युग के मानव द्वारा कृषि का प्रारम्भ करना था। इससे पूर्व के मानव को कृषि का ज्ञान नहीं था। अत: उस प्राचीन युग में यह कार्य एक महान् क्रान्ति कहा जा सकता है। **बिल दूरां** का कथन है कि, **"नवीनपाषाण काल में शिकार के स्थान पर कृषि एक दृष्टि से मानव जीवन इतिहास की क्रान्ति थी।"** कृषि ने मनुष्य के घुमक्कड़ी जीवन को समाप्त कर दिया। गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का, फल, शाक एवं कपास का उत्पादन होता रहा होगा।
3. **पशु-पालन**—कृषि के साथ-साथ भारत में इस युग के मानव ने पशुपालन शुरू कर दिया। गाय, बैल, भैंस, बकरी, कुत्ता, घोड़ा इस समय के प्रमुख पालतू पशु थे। पशु-पालन से मनुष्य को भोजन व दूध आदि प्राप्त होने लगा। बैलों का प्रयोग हल चलाने के लिए किया जाने लगा। कुत्ता मनुष्य का प्रथम पालतू पशु था। **कालान्तर में नवपाषाणकालीन मानव ने सवारी एवं माल ढोने के उद्देश्य से खच्चरों, गधों, घोड़ों तथा ऊँटों को पालना शुरू कर दिया।** इस प्रकार पशुपालन से नवपाषाण काल के लोगों को अत्यधिक लाभ हुआ।
4. **बर्तन**—कृषि व पशुपालन ने मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए मनुष्य को प्रोत्साहित किया। खाद्य सामग्री की अधिकता के कारण उसे संगृहित करने के लिए बर्तनों की जरूरत आ पड़ी होगी। आग में (जो कि इस युग की चमत्कृत देन थी) मिट्टी के बर्तन पका लिए जाते होंगे।
5. **वस्त्र बुनना**—मध्यपाषाण काल तक मनुष्य ने शरीर को वृक्षों के पत्तों, छालों व पशुओं की खाल से ढकने तक विकास कर लिया था, किन्तु उत्तर पाषाणकाल में कृषि के साथ ही वस्त्र निर्माण भी सीख लिया। नवपाषाण युग में भारत में पशुओं के बालों व पौधों के रेशों को बुनना शुरू कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि कताई-बुनाई एवं रंगाई की कला भी इस युग में विकसित हो चुकी होगी।
6. **गृह-निर्माण**—इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि गृह-निर्माण भी थी। कृषि व पशुपालन ने मनुष्य को एक स्थान पर रुकने हेतु प्रेरित किया। अत: उसने लट्ठे, घास-फूस और मिट्टी की सहायता से घर का निर्माण (झोंपडी) कर लिया था। वास्तव में, यहीं से मनुष्य की वास्तविक रूप में परिवार की इकाई को जन्म मिला होगा।

इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि यह युग मानव सभ्यता के इतिहास में क्रान्ति का युग था। आग का आविष्कार, कृषि पशु-पालन, बर्तन बनाना, घास की झोंपड़ी बनाना, पहिए का निर्माण वास्तव में हमें आज के समय में बड़ा अटपटा लगे परन्तु उस युग में महान क्रान्ति ही थी।

प्र.11. ताम्रपाषाण संस्कृति की व्यवस्था, महत्त्व और सीमाओं पर प्रकाश डालिए।

Throw light on the organisation, importance and limits of Chalcolithic Culture.

उत्तर

ताम्रपाषाणकालीन संस्कृति
(The Chalcolithic Culture)

ताम्रपाषाण युग से तात्पर्य—**बिल दूरां** के शब्दों में **"एक दृष्टि से मानव इतिहास का आधार आधुनिक युग में कृषि के स्थान पर उद्योग-धन्धों की उन्नति थी।"** वास्तव में उद्योग-धन्धों के विकास की कहानी का जन्म उस समय हुआ जबकि मनुष्य को अग्नि का ज्ञान हुआ था और वह धातु को पीटकर पिघला सकता था। धातु ज्ञान का यह युग नवपाषाण काल के पश्चात् प्रारम्भ होने वाला ताम्रपाषाण काल था। **इसे ताम्रपाषाण काल इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इस काल में मनुष्य ने पाषाण व ताम्र दोनों के ही उपकरण निर्मित किए।** वास्तव में नवपाषाण युग समाप्त होते-होते मानव को धातु का ज्ञान हो चुका था।

ताम्रपाषाण युग का समय—आधुनिक अनुसन्धानों के आधार पर 1800 ई०पू० से 1000 ई०पू० या 800 ई०पू० तक का काल ताम्रपाषाण काल के नाम से जाना जाता है।

धातुकर्म सम्बन्धी धारणा—इस सम्बन्ध में सभी विद्वान सहमत हैं कि मानव ने धातु का प्रयोग नवपाषाण युग के अन्त तक प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु इस सम्बन्ध में परस्पर विवाद है कि मानव ने पहले स्वर्ण का प्रयोग किया या ताम्र का? **बी०एन० लूणिया** के अनुसार, **"भारतीय मानव ने पहले स्वर्ण का प्रयोग किया था।"** परन्तु वर्तमान में अधिकांश इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भारतीय मानव ने पहले ताम्र का प्रयोग किया था।

पाषाण की तुलना में ताम्र के अधिक प्रचलन के कारण—धातु ज्ञान हो जाने के उपरान्त पाषाण की तुलना में भारतीय मानव ने ताम्र का प्रयोग किया, **इसके निम्नलिखित दो प्रमुख कारण थे**—

(अ) पाषाण के अनुपात में ताँबा अधिक लचीला, ठोस व मजबूत था।

(ब) पत्थर के औजार टूटकर बेकार हो जाते थे जबकि ताँबे के औजारों को टूटने पर पुनः जोड़ा जा सकता था और इच्छानुसार ताँवे की पतली चादरें भी निर्मित की जा सकती थीं।

ताम्रपाषाण युग का पतन—यह ठीक है कि ताँबा पत्थर की तुलना में लचीला व अधिक उपयोगी था, किन्तु जैसे ही भारतीय मानव को टिन का ज्ञान हुआ उसने टिन व जस्ते को मिलाकर काँसे का निर्माण किया। काँसा ताँबे के अनुपात में अधिक ठोस व कठोर होता है, **अतः मानव को अत्यधिक कठोर कार्यों के लिए ताम्र के स्थान पर काँसा अधिक उपयोगी दिखाई देने लगा।** फलतः उसने काँसे का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया और यहीं से कांस्य युग का प्रारम्भ हुआ। अधिकांश इतिहासकारों ने काँसे के निर्माण को तत्कालीन महत्त्वपूर्ण रासायनिक ज्ञान कहा है।

ताम्रपाषाण संस्कृति के अवशेष स्थल—अद्यतन खोजों से सिन्धु सभ्यता के अवशेष निम्नलिखित प्रमुख स्थानों से प्राप्त होते हैं—

1. **महाराष्ट्र**—महाराष्ट्र के जाखे, नेवासा, चंदौली, नासिक तथा मोनागाँव से अवशेष मिले हैं।
2. **दक्षिण-पूर्वी राजस्थान**—यहाँ पर आहाड़ व गिलुण्ड इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।
3. **मध्य प्रदेश**—यहाँ के एरण, कयथा महत्त्वपूर्ण स्थल हैं जहाँ से अवशेष मिले हैं।
4. **पूर्वी भारत**—पूर्वी भारत के पांडूराजाढ़िवी, वीरभूम तथा गंगा तट के किनारे चिरांड नामक स्थान इस दृष्टि से उपयोगी हैं।

उपकरण—उपर्युक्त स्थान से पत्थर व ताँबे के निर्मित ताम्रपाषाणकालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं। इनमें आयताकार ताँबे की कुल्हाड़ी, पहिएदार गाड़ियाँ, तलवार, तीर-कमान, भाले, कटार, ताँबे की छैनियाँ आदि प्राप्त हुई हैं। **प्रस्तर के उपकरणों में फलक महत्त्वपूर्ण हैं।** उपरोक्त उपकरणों को **पिगट महोदय** ने 5 भागों में विभक्त किया है। एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि **हीन-गेल्डर्न** भारत में प्राप्त इन ताम्र उपकरणों की कला को विदेशी मानते हैं। उनके अनुसार, **"पहले यह सामग्री ईरान, काकेशस प्रदेश, डेन्यूब घाटी में 1200 ई०पू० के लगभग विद्यमान थी, क्योंकि आर्य इन्हीं प्रदेशों से होते हुए भारत आए थे अतः यह उन्हीं की देन है।"** परन्तु हीन-गेल्डर्न के मत को वर्तमान में स्वीकार नहीं किया जाता है।

ताम्रपाषाण संस्कृति की व्यवस्था (Organisation of Chalcolithic Culture)

ताम्रपाषाणकालीन संस्कृति की व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

1. **उपकरण व हथियार**—उत्खनन से प्राप्त हुए उपकरण व हथियारों के आधार पर कहा जा सकता है कि ताम्रपाषाणकालीन मानव ने प्रस्तर व ताम्र दोनों के उपकरण निर्मित किए थे, उपकरण लघु थे अतः अधिकांश इतिहासकार इस काल को लघु पाषाण काल की संज्ञा देते हैं।
2. **कृषि**—ताम्रपाषाण काल में भारतीय मानव ने हल का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। चावल, गेहूँ, बाजरा, उड़द, कृषि के क्षेत्र में प्रमुख उत्पादन थे।
3. **पशुपालन**—कृषि विकास ने पशुपालन को प्रोत्साहित किया। इस युग में गाय, बकरी, बैल, ऊँट, गधा पालतू पशु थे। इन पशुओं में बैल, ऊँट व गधे को सामान ढोने के काम में भी लाया जाता था।
4. **मिट्टी के बर्तन**—उत्खनन से प्राप्त मृद्भाण्डा-प्यालों, तश्तरियों, घड़ों आदि से स्पष्ट होता है कि ताम्रपाषाणकालीन भारतीय मानव मिट्टी के बर्तन बनाता था। **नवपाषाण काल की तुलना में ये अधिक परिष्कृत व सुडौल थे।** इन बर्तनों में पशु-पक्षियों व फूल-पत्तियों के चित्र भी मिलते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि चित्रकारी की कला भी विकसित होने लगी थी।
5. **प्रमुख व्यवसाय व व्यापार एवं यातायात**—ताम्रपाषाणकालीन भारतीय मानव का प्रमुख व्यवसाय कृषि, पशुपालन, सूत कातना, कपड़ा बुनना था। जहाँ तक व्यापार का सम्बन्ध है, व्यापार वस्तु विनिमय के द्वारा होता था। पहियेदार गाड़ी व नाव यातायात के प्रमुख साधन थे।
6. **गृह-निर्माण—डॉ० एच०एन० सांकलिया** ने महाराष्ट्र में नेवासा नामक स्थान पर हुए उत्खनन से प्राप्त ताम्रपाषाणकालीन संस्कृति के अवशेषों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इस काल में मानव घास-फूस की

झोंपड़ियों में निवास करने लगा था। **यह भी उल्लेखनीय है कि ग्राम नामक इकाई का भी विकास इस काल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।** वस्तुत: आज भी ग्राम नामक इकाई सम्पूर्ण भारत में अपना अस्तित्व बनाए हुए है।

7. **धर्म**—(i) **प्राकृतिक शक्तियों की पूजा**—उत्खनन से प्राप्त अवशेषों के आधार पर अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि इस काल में मानव प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करने लगा था।
   (ii) **अन्धविश्वास**—उत्खनन से प्राप्त ताबीज व मोहरों पर पशु-चित्र अंकित होने से यह स्पष्ट होता है कि इस काल का मानव जादू-टोने में विश्वास करता था।
   (iii) **मातृदेवी की उपासना**—इस काल की प्राप्त स्त्रियों की लघु मृण्मूर्तियों के आधार पर अधिकांश इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि इस काल का मानव मातृदेवी की उपासना करता था।
   (iv) **अन्त्येष्टि संस्कार**—ताम्रपाषाणकालीन अधिकांश कब्रों में मानव के अस्थिपंजर प्राप्त हुए हैं। इन अस्थिपंजरों के शीर्ष में मिट्टी के बर्तन या ताम्र के उपकरण मिले हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस काल का मानव मृत व्यक्ति को गाड़कर उसका अन्त्येष्टि संस्कार करता था।
   (v) **परलोकवाद में विश्वास**—कब्रों में मिट्टी के बर्तन व ताम्र के उपकरण मिलना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि तत्कालीन भारतीय मानव परलोकवाद में विश्वास करने लगा था।

ताम्रपाषाण काल का महत्त्व (Importance of Chalcolithic Period)

ताम्रपाषाण युग के महत्त्व को निम्नलिखित रूप में इंगित किया जा सकता है—

1. **ग्राम इकाई का निर्माण**—ग्राम इस काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। यही वह काल था जबकि सर्वप्रथम नदी तटों व पहाड़ी क्षेत्रों में ग्राम बनाए गए।
2. **कृषि का प्रचुर उत्पादन**—इस काल की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नवपाषाण काल की तुलना में कृषि का अधिक उत्पादन था।
3. **धातु का उपयोग**—इस काल का महत्त्व इस बात से आँका जाता है कि इस काल में धातु का उपयोग प्रारम्भ हुआ। वास्तव में, **"अग्नि का आविष्कार नव पाषाणकाल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी तो ताम्रपाषाण काल में धातु का ज्ञान उद्योग-धन्धों के निर्माण में वास्तविक प्रगति थी और इसने क्रोमेगनन अवस्था से औद्योगिक क्रान्ति के लिए मार्ग साफ कर दिया।"**
4. **यातायात के साधन**—इस काल की **सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सर्वप्रथम नाव को यातायात के साधन के रूप में प्रयोग में लाना** तथा पशु को भार ढोने के लिए उपयोग करना था। **यातायात के इन साधनों ने सहकारिता को जन्म दिया तो व्यापार व वाणिज्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम वस्तु-विनिमय को भी जन्म दे डाला।**
5. **किलेबन्दी**—इनामगाँव से प्राप्त अवशेषों के आधार पर माना जाता है कि इस काल में मानव ने अपनी बस्तियों की किलेबन्दी भी प्रारम्भ कर दी थी। वास्तव में, यह मानव की शान्तिप्रिय व सुरक्षात्मक दृष्टि से जीवनयापन करने की कोशिश का महत्त्वपूर्ण कदम था।

भारत में ताम्रपाषाण संस्कृति की सीमाएँ (Limitations of Chalcolithic Culture in India)

भारत में ताम्रपाषाण संस्कृति की सीमाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **विदेशों से भिन्नता**—भारत में इस युग के मानव को अपने विकास अवस्था के अन्तिम चरणों से पूर्व काँसे का ज्ञान नहीं था, जबकि क्रीट, मिन व ट्राय में 2000 ई०पू० में काँसे का प्रयोग होता था।
2. **हड़प्पा संस्कृति से भिन्नता**—लगभग इसी समय विकसित हो रही कांस्य सभ्यता जिसे सिन्धु घाटी की सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है, इस युग के मानव ने लिपि ज्ञान सीखा, साथ ही हड़प्पा संस्कृति की तरह पक्के मकान व शहर बसाने का प्रयत्न किया।
3. **सामाजिक असमानताएँ**—उत्खनन से प्राप्त उपकरणों के आधार पर इतिहासविदों का मत है कि इस काल में मनुष्य में वर्ग विभेद उत्पन्न हो गया था। यह वर्ग विभेद धनी व गरीब वर्ग के रूप में था। इतिहासविद अपने मत की पुष्टि में तर्क देते हैं कि तत्कालीन कुछ शवों के साथ मिट्टी के बर्तन व कुछ के साथ ताँबे की मालाएँ तथा कतिपय गृहों में विभिन्न पशुओं की आकृति की बनी ताम्र मूर्तियाँ मिलना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि समाज दो वर्गों में विभक्त था। यही नहीं, इस काल के अवशेषों में बच्चों की अधिक कब्रें मिलना भी उत्तम भोजन व इलाज की सुविधा की कमी को स्पष्ट करता है।

प्र.12. पूर्व-सैंधव संस्कृतियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of Pre-Harappan Cultures.

उत्तर

पूर्व-सैंधव संस्कृतियाँ
(Pre-Harappan Cultures)

सिन्धु सभ्यता से पूर्ववर्ती ग्रामीण संस्कृतियों को पूर्व-सैंधव संस्कृति कहा जाता है। इनको कुछ विद्वान पूर्व हड़प्पा संस्कृति या प्रारम्भिक हड़प्पा संस्कृति भी कहते हैं। ये संस्कृतियाँ सिन्धु सभ्यता के मूल तथ्यों की जानकारी देने के लिए अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई हैं, क्योंकि अनेक पुरास्थलों पर इन संस्कृतियों के अवशेषों के ऊपरी स्तरों से ही सिन्ध सभ्यता के अवशेष मिले हैं।

क्वेटा संस्कृति (गुलाबी रंग लिए सफेद रंग) मृद्भाण्ड इस संस्कृति की विशिष्टता है। इस संस्कृति को क्वेटा संस्कृति इसलिए कहा जाता है, क्योंकि क्वेटा के आस-पास के टीलों पर इस प्रकार के मृद्भाण्ड प्रारम्भ में प्राप्त हुए हैं। **इन मृद्भाण्डों पर काले रंग से चित्रकारी की गई है** तथा मुख्य रूप से मृद्भाण्ड के रूप जामदानी, कटोरे, छिछली थाली के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त चर्ट पत्थर के लेड, सिलखड़ी के प्याले तथा हड्डी के बेधक इत्यादि उल्लेखनीय अवशेष मिले हैं।

बलूचिस्तान के कोलवा जिले के कुल्ली पुरास्थल के आधार पर इस संस्कृति को नामित किया गया है, तथा इसीलिए इस संस्कृति को '**कुल्ली संस्कृति**' के नाम से पुकारा जाता है। इसके अतिरिक्त मेही भी इस संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण स्थल है। इस संस्कृति में अधिकांश रूप से अलंकृत मृद्भाण्ड मिलते हैं तथा इनका अलंकरण मुख्य रूप से काले रंग से किया गया है। इस संस्कृति के मृद्भाण्ड की ऊपरी सतह पर दीर्घीकृत वृषभ की एक विशेष प्रकार की चित्रवल्लरी बनी हुई है। बर्तनों में विशेष रूप से जामदानी, बोतलनुमा-पात्र, छिछली थालियाँ, तश्तरी, मटकों को चित्रित किया गया है। **इस संस्कृति के लोग मकानों का निर्माण अनगढ़ पत्थरों से बिना गारे के करते थे, जिनमें दीवारों पर प्लास्टर लगाने के भी प्रमाण मिले हैं, मकान दुमंजिले भी होते थे, क्योंकि सीढ़ियाँ होने के प्रमाण भी मिले हैं।** मेही संस्कृति में मिट्टी की कच्ची ईंटों का प्रयोग मकान बनाने के लिए किया जाता था। इन दोनों ही संस्कृतियों में दाहसंस्कार तथा दफनाने की प्रथा पाए जाने के प्रमाण मिलते हैं। खुदाई के पश्चात् प्राप्त हुए अस्थिकलशों के साथ ताँबे के दर्पण, मृद्भाण्ड तथा ताँबे की पिनें दाहसंस्कार तथा दफनाने (अर्थात्), मृत्यु के पश्चात् किए जाने वाले रीति-रिवाजों की ओर संकेत करती हैं।

आमरी-नाल संस्कृति मृद्भाण्डों की तीसरी संस्कृति मानी जाती है। इस संस्कृति में दक्षिण बलूचिस्तान से लेकर सिन्ध तक के क्षेत्र सम्मिलित किए जाते हैं। इतिहासकार **एन०जी० मजूमदार** ने 1929 में इस संस्कृति की खोज की थी तथा उसके तीस वर्ष पश्चात् विस्तृत पैमाने पर की गई खोज से अनेक तथ्य स्पष्ट होकर सामने आए; **जैसे प्रथम उपकाल में प्राप्त अधिकांश मृद्भाण्ड हाथ से बने हुए हैं** तथा द्वितीय उपकाल में चाक निर्मित मृद्भाण्डों की संख्या में वृद्धि हुई, तृतीय उपकाल में आमरी का विकास हुआ, वहीं चतुर्थ उपकाल में बैल एवं मछली का डिजाइन देखने को मिलता है।

पश्चिमी बलूचिस्तान के नाल नामक स्थान पर की गई खुदाई के दौरान एक बात और स्पष्ट हुई कि यहाँ पर पूर्ण तथा आंशिक दोनों ही शवाधानों का प्रचलन था। शवाधानों में अन्त्येष्टि सामग्री भी रखी गई थी जिसमें कुल्हाड़ी, मृद्भाण्ड, छेनी, छुरा, बसूला तथा आरी आदि उल्लेखनीय हैं। सिलखड़ी की बनी हुई मुहर जिस पर पंजों में सर्प दबाए हुए गरुड़ की आकृति बनी है का पाया जाना उल्लेखनीय है। इस क्षेत्र के मृद्भाण्ड गुलाबी रंग के हैं, जिन पर सफेद रंग की पट्टी है तथा कहीं-कहीं पर बहुरंगी पट्टियाँ भी हैं। यहाँ पर ज्यामितीय डिजाइनों में कंघी के प्रतिरूप, मछली, साँड, चीते एवं हिरण देखने को मिलते हैं। **भवन-निर्माण के लिए नदी से प्राप्त किए गए चिकने पत्थरों का प्रयोग किया गया है।** यहाँ से शंख और चूने पत्थर के मोती, ताँबे की ठप्पे वाली मुहर तथा उपकरण एवं प्रस्तर बाँट भी प्राप्त हुए हैं।

जॉब संस्कृति का प्रसार मुख्यत: उत्तरी बलूचिस्तान में जॉब नदी की घाटी, बोलन दर्रे के उत्तर-पश्चिम में स्थित पिशिनलोरलई तथा दक्षिण की ओर मिलता है, इसके अतिरिक्त सूर जंगल, डबरकोट, कौदानी आदि क्षेत्रों में भी यह संस्कृति पाई गई है। इसमें लाल रंग के मृद्भाण्डों को काले रंग से अलंकृत किया गया है। इस काल में खुदाई के दौरान पाए जाने वाले मकानों के अवशेषों की नींव में पत्थर पाए गए हैं। इस काल में सुराही के आकार के बर्तन भी पाए जाने लगे तथा मृद्भाण्डों की लाल सतह पर लाल रंग से चित्रण भी इस काल में प्रारम्भ हो गया था। **जॉब संस्कृति के अन्य पुरावशेषों में फ्लिण्ट के छोटे-छोटे पत्थर के उपकरण, सिलखड़ी के प्याले, पत्थर तथा हड्डियों के मोती, चूड़ी, सुइयों का पाया जाना उल्लेखनीय है।** घूसर पात्र परम्परा भी इसी काल में पाई जाती है। इस संस्कृति के उल्लेखित स्थलों पर मृतकों के दाहसंस्कार की प्रथा के प्रमाण भी मिले हैं, जो कि पूर्ण धार्मिक

अनुष्ठान के साथ किए गए हैं। मृतकों को जलाने के पश्चात् उनकी बची हुई अस्थियों को चुनकर मिट्टी के बर्तनों में भरकर दफनाने का रिवाज भी देखने को मिला है।

प्र.13. पुरापाषाणकाल में मानव-जीवन की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on the characteristics of human life in the Palaeolithic Period.

उत्तर

पुरापाषाणकाल में मानव जीवन
(Human Life in the Palaeolithic Period)

पुरापाषाणकालीन मानव जीवन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

1. **औजार**—पुरापाषाण काल में मानव का जीवन अत्यन्त कठोर एवं संघर्षपूर्ण था। सबसे पहले मानव ने जंगली पशुओं से अपनी रक्षा करने के लिए पत्थरों के हथियार बनाने प्रारम्भ किए। इन हथियारों में सर्वप्रथम उसने हथौड़ा बनाया, तत्पश्चात् चाकू, कुल्हाड़ी और शल्क आदि तैयार किए गए। उत्खनन से प्राप्त उपकरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस समय के औजार भद्दे, बेडौल व अव्यवस्थित थे।
2. **रहन-सहन**—इस काल का मानव गुफाओं में निवास करता था। ये गुफाएँ तालाबों, नदियों व जल स्रोतों के निकट प्राप्त हुई हैं। पूर्व पाषाणकालीन मानव का जीवन घुमक्कड़ी (यायावर) था।
3. **खान-पान**—इस काल में मानव को कृषि का ज्ञान नहीं था। वह भोजन की खोज में इधर-उधर घूमता रहता था और कन्दमूल फलों आदि को खाकर अपना जीवन-यापन करता था। कुछ समय के पश्चात् उसने शिकार करना और मांस खाना भी सीख लिया। इस काल में मानव कच्चा मांस ही खाता था। इस प्रकार यह काल मानव जीवन के संघर्ष का काल था।
4. **वेश-भूषा**—पुरातत्वविदों का मानना है कि इस काल में मानव ने ठण्ड से बचने के लिए पेड़ों के पत्तों व छाल का प्रयोग प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् वह पशुओं की खाल पहनने लगा। इस काल में मानव ने हड्डियों की सुइयाँ बनाकर खालों को सिलना भी सीख लिया था।
5. **अग्नि की खोज**—पुरापाषाण काल की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि 'अग्नि की खोज' थी। उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर ज्ञात होता है कि पीकिंग मानव अग्नि के प्रयोग से परिचित था। अग्नि की खोज के उपरान्त मानव अग्नि का प्रयोग ठण्ड से बचने, रोशनी करने तथा मांस को पकाने के लिए करने लगा था।
6. **मृतक संस्कार**—उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार से ज्ञात होता है कि इस काल में मानव अपने मृतकों को दफना देता था और उनके साथ भोजन तथा अन्य उपयोग की वस्तुएँ भी रख देता था। इस आधार पर अनुमान है कि इस काल में मानव पुनर्जन्म में भी विश्वास करता था।
7. **कला**—उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर ज्ञात होता है कि इस काल के अन्तिम चरण में मानव ने जंगली पशुओं के चित्र बनाना भी सीख लिया था। अल्तमीरा (स्पेन), लास्को (पश्चिमी फ्रांस) तथा भारत में भीमबेटका की गुफाओं की दीवारों पर बने चित्र आज भी इस काल के मानव कला को दर्शाते हैं।
8. **सामाजिक व राजनीतिक भावना का उदय**—पूर्व पाषाणकाल के प्रारम्भ में आदि मानव अकेला रहता था, परन्तु इस काल के अन्तिम चरण में मानव ने जंगली पशुओं और प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए समूह में रहना सीख लिया था तथा एक-दूसरे का सहयोग करने लगा था। इस प्रकार इस काल के अन्तिम चरण में सामुदायिक भावना का विकास होने लगा था।

इस प्रकार पुरापाषाणकालीन मानव बड़ा अव्यवस्थित था, परन्तु इस काल में मानव सभ्यता के अनेक अंग स्पष्ट रूप से चिह्नित होने लगे थे।

प्र.14. भारत में ताम्रपाषाण संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए। (2021)

Discuss the main characteristics of Chalcolithic Culture in India.

उत्तर

भारत में ताम्रपाषाण संस्कृति की विशेषताएँ
(Characteristics of Chalcolithic Culture in India)

ताम्रपाषाण संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ अग्र प्रकार हैं—

मूलरूप से ग्रामीण जन-जातीय संस्कृतियाँ हैं। इन संस्कृतियों में लोग ताम्र उपकरणों के साथ-साथ लघु-पाषाण उपकरणों का प्रयोग भी करते थे। अत: इन संस्कृतियों को संयुक्त नाम अर्थात् ताम्र-पाषाणिक संस्कृति के नाम से जाना जाता है। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित संस्कृतियाँ आती हैं, जो कि क्षेत्र अथवा स्थान के नाम पर जानी जाती हैं—

1. कायथा ताम्र-पाषाणिक संस्कृति,
2. आहड़ ताम्र-पाषाणिक संस्कृति,
3. मालवा ताम्र-पाषाणिक संस्कृति तथा
4. जोर्वे ताम्र-पाषाणिक संस्कृति ।

1. **कायथा ताम्र-पाषाणिक संस्कृति** (2000 ई.पू. लगभग), सर्वप्रथम कायथा (उज्जैन के समीप) नामक स्थान से प्रकाश में आई, फलस्वरूप इसका नाम कायथा ताम्र-पाषाणिक संस्कृति रखा गया। इस संस्कृति के अवशेष कायथा, आजाद नगर, बिलखेड़ा, मनोती, माहिदपुर, दंगवाड़ा, रूनिजा आदि से प्राप्त हुए हैं। कायथा से एक मटके में ताँबे की दो कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई हैं जिन्हें साँचे में ढालकर बनाया गया था। लकड़ी काटने के लिए उनका उपयोग होता रहा होगा। मिट्टी की चूड़ियाँ, गोमेद, कार्नेलिअन के मनकों के अतिरिक्त, एक मटके से 40,000 स्टीटाइट के बने छोटे मनके विशेष उल्लेखनीय पुरा-निधि हैं जिनका उपयोग आभूषण के रूप में होता रहा होगा। लघु पाषाण उपकरणों के अन्तर्गत आने वाले, चान्द्रिक ब्लेड, बेधक आदि का का प्रयोग काटने, बेधने, छीलने, तराशने आदि कार्यों में किया जाता रहा होगा।

   लोग लकड़ी, घास-फूस से बने मकानों में रहते थे, जिनकी दीवारें बुनी हुई चटाई पर मिट्टी लेपकर बनाई जाती थीं।

   इस संस्कृति के मृद्भाण्डों को बारीक छनी मिट्टी से निर्मित किया जाता था। चाक पर निश्चित आकार देने के पश्चात् उनकी बाहरी सतहों पर चित्रकारी कर अलंकृत किया जाता था। तत्पश्चात् उन्हें भट्टी में भली-भाँति पकाया जाता है। यह उनकी कला के प्रति रुचि एवं उन्नत तकनीक से परिचित होना स्पष्ट करता है। इस संस्कृति से सम्बन्धित चाक निर्मित मृदभाण्डों को निम्नलिखित चार प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

   (i) **पतली गढ़न के मृद्भाण्ड** (Fine sturdy ware)—इस प्रकार के मृद्भाण्ड छनी हुई बारीक कणों वाली मिट्टी को भली-भाँति सानकर, चाक पर निर्मित किए गए हैं। यही नहीं, लेप एवं चित्रकारी करने के पश्चात् भट्टी में उन्हें पर्याप्त वायु एवं तापक्रम पर पकाया भी गया है। इसी कारण वे मजबूत गढ़न के हैं। बाहरी सतह के बारी से लेकर स्कन्ध तक के भाग तथा यदा-कदा आधार तक, बाहरी सतह पर लाल अथवा भूरे रंग का गाढ़ा लेप किया गया है। इसी लेप पर बैंगनी रंग से चित्रकारी की गई है। प्रमुख चित्रण अभिप्रायों में तिर्यक, ऊर्ध्व, आड़ी-तिरछी रेखाएँ बन्दनवार (Loops) आदि हैं। इस श्रेणी के पात्र प्रकारों में कटोरे, जार, कोठियाँ आदि पाए जाते हैं।

   (ii) **पाण्डु रंग के मृद्भाण्ड** (Buff ware)—इस कोटि के अन्तर्गत आने वाले मृद्भाण्ड भी पतली एवं मजबूत गढ़न के हैं। परन्तु इनकी बाहरी सतह पर पाण्डु रंग का लेप अथवा पुताई मिलती है, जिस पर लाल रंग से चित्रकारी की गई है। प्रमुख चित्रण अभिप्रायों में समानान्तर रेखाएँ, तिर्यक रेखाएँ, बन्दनवार, माला, मणिकाभ, ज्यामितीय आकार आदि हैं। इस श्रेणी के पात्र प्रकारों में— लोटा, घड़ा, जार, तसले आदि प्राप्त होते हैं।

   (iii) **कंकती मृद्भाण्ड** (Comed ware)—यह हल्के लाल रंग का मृद्भाण्ड है जिस पर किसी प्रकार का लेप नहीं किया गया है वरन ये स्वलेपित हैं। इस श्रेणी के पात्रों की बाहरी सतह पर तथा यदा-कदा भीतरी सतह पर, कंघी जैसे उपकरण से उकेर कर, आड़ी-तिरछी अथवा क्षैतिज रेखा समूहों का चित्रण किया गया हैं, यही नहीं, कभी-कभी उन पर लाल रंग से भी चित्रण किया गया है। पात्र प्रकारों में— कटोरे, थालियाँ तसले आदि प्रमुख हैं।

   (iv) **हस्त-निर्मित मृद्भाण्ड** (Hand made ware)—इस वर्ग के मृद्भाण्ड चाक निर्मित न होकर हस्त-निर्मित हैं। इनकी सतहों को उकेर कर अथवा मिट्टी चिपकाकर अलंकृत किया गया है। पात्र प्रकारों में कोठियाँ तसले आदि बड़े पात्र हैं।

2. **आहड़ ताम्र पाषाणिक संस्कृति** (2100 ई.पू. लगभग), राजस्थान के उदयपुर जिले में स्थित, आहड़ नामक पुरा-स्थल के उत्खनन् से प्रकाश में आई है। उत्तर-पश्चिम भारत के राजस्थान तथा गुजरात में, जब सैंधव संस्कृति का अस्तित्व था तब अरावली पर्वत श्रृंखला के पश्चिम में, बानास सरिता के किनारे-किनारे इस संस्कृति का उदय एवं प्रसार हुआ, इस

कारण इस संस्कृति को बानास संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है। उदयपुर, अजमेर, जयपुर, चित्तौड़गढ़ निलुंड, कायथा, दंगवाड़ा, नावदाटोली, मनोती, नागदा, कोटरा, आवरा आदि स्थलों से इस संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

एक विशेष प्रकार के श्वेत चित्रित कृष्ण-लोहित मृद्भाण्ड का प्रयोग इस संस्कृति के लोग करते थे। ताम्र धातु से ये लोग भली-भाँति परिचित थे। चूड़ियाँ, छल्ले, चाकू, कुल्हाड़ियाँ आदि ताम्र निर्मित पुरा-वस्तुएँ तथा कायथा से इस संस्कृति के अवशेषों के साथ लघु पाषाण उपकरणों का प्राप्त होना स्पष्ट करता है कि लोगों के जीवन में इनका विशेष महत्त्व था। बहुमूल्य पत्थरों तथा स्टीटाइट; सिलखड़ी के बने मनकों का उपयोग वे आभूषण के रूप में करते थे। विभिन्न प्रकार की गोटियाँ तथा मिट्टी की बनी वृषभ की मूर्तियाँ अपने मनोरंजन के लिए प्रयोग में लाते थे। भवन निर्माण के अन्तर्गत नींव में पाषाण खण्डों का प्रयोग होता था। दीवारें मिट्टी अथवा कच्ची ईंट की बनाई जाती थीं जबकि छत के निर्माण में घास-फूस का प्रयोग होता था। गिलुंड के उत्खनन् में पकी ईंटों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। लोग भोजन पकाने के लिए चूल्हों तथा पीसने के लिए सिल-लोढ़े का प्रयोग करते थे। मुख्य व्यवसाय कृषि तथा पशु पालन था। धान की खेती के प्रमाण भी मिलते हैं। उत्खनन् में भेड़ बकरी, सुअर, हिरण, कछुआ, मछली, वन-मुर्गी आदि की अस्थियाँ प्राप्त हुई हैं जो मानव के विभिन्न पक्षों से जुड़े रहे होंगे।

इस संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले मृद्भाण्डों में श्वेत-चित्रित कृष्ण लोहित मृद्भाण्ड प्रमुख है। ये पतली गढ़न के हैं तथा इनकी भीतरी तथा बाहरी अथवा केवल एक ही सतह पर, सफेद रंग से, तिर्यक, ऊर्ध्वाधर, लहरदार, चापाकार आदि रेखा समूहों का चित्रण किया गया है। प्रमुख पात्र प्रकारों में विभिन्न प्रकार के कटोरे, थालियाँ आदि हैं।

3. **मालवा ताम्र-पाषाणिक संस्कृति** : लगभग 1500 ई.पू. से 1200 ई.पू. तक के अवशेष कायथा, एरण, चंदोली दंगवाड़ा, नागदा, मनोती, आवरा, कोटरा, महेश्वर, नावदाटोली, कक्रेहटा आदि स्थलों से प्राप्त हुए हैं जो स्पष्ट संकेत करते हैं कि यह संस्कृति सम्पूर्ण मालवा क्षेत्र में फैली हुई थी, यही कारण है कि इस संस्कृति को मालवा संस्कृति के नाम से जाना जाता है। परन्तु इसका विस्तार महाराष्ट्र के चन्दोली, ईनामगाँव, बाहल, प्रकाश, दाइमाबाद, सोननाँव आदि स्थानों तक भी हुआ।

मालवा संस्कृति के अन्तिम समय में जोर्वे संस्कृति का उद्भव हो चुका था, फलस्वरूप मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले जिले के आस-पास से लेकर महाराष्ट्र के मालवा संस्कृति के मृद्भाण्डों के साथ-साथ जोर्वे संस्कृति के मृद्भाण्ड भी उत्खनन् में मिलते हैं। मालवा संस्कृति से सम्बन्धित मृदभाण्डों पर भरपूर चित्रण किया गया है।

इस संस्कृति से सम्बन्धित चाक निर्मित मृद्भाण्डों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, प्रथम वर्ग में पतली गढ़न के मृद्भाण्ड आते हैं तथा द्वितीय वर्ग में मोटी गढ़न के। यही नहीं, रंग के आधार पर इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; जैसे—लाल रंग के, पाण्डु रंग के तथा धूसर रंग के। पतली गढ़न के भाण्ड आकार में छोटे हैं, अत: उनमें लोटे तथा घड़े आदि पात्र प्रकार की प्रमुख रूप से पाए जाते हैं, मोटी गढ़न के पात्र बड़े आकार के हैं, उनके निर्माण में बड़े कणों वाली मिट्टी, घास-फूस के तिनके तथा अभ्रक का मिश्रण किया गया है। प्रमुख पात्र प्रकारों में— घड़े, कोठियाँ, तसले आदि आते हैं। इन पात्रों की बाहरी सतह पर काले रंग से अनेक प्रकार की चित्रकारी की गई है। प्रमुख चित्रण अभिप्रायों में— सूर्य, लहरदार सींग वाले लम्बे हिरण, वृषभ, कुत्ता, सियार, मगर, बाघ, सूकर, कच्छप, मानव आकृतियाँ आदि हैं। चित्रण की इतनी विविधता इस संस्कृति के मृद्भाण्डों के अतिरिक्त अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

मूलरूप से यह संस्कृति भी ग्रामीण संस्कृति थी, जिसमें लोग लकड़ी, बाँस, घास-फूस के वृत्ताकार, वर्गाकार अथवा आयताकार भवन बनाकर रहते थे। चटाई पर मिट्टी का लेप चढ़ाकर दीवार का रूप दिया जाता है। फर्श बनाने के लिए मिट्टी को कूटकर समतल करने के पश्चात् गोबर तथा मिट्टी से लीपकर चिकना बना दिया जाता था। मिट्टी के भवनों की दीवार की ऊँचाई अधिक नहीं होती थी। दीवारों पर स्तम्भ गर्त मिले हैं जो इस बात की ओर संकेत करते हैं कि दीवारों पर लकड़ी के स्तम्भ स्थापित कर, भवन की ऊँचाई बढ़ाई जाती थी तत्पश्चात् लकड़ी, घास-फूस के छत का निर्माण किया जाता था। आयताकार भवनों के कोने, अर्ध-वृत्ताकार बनाए जाते थे। दाइमाबाद तथा ईनामगाँव से मिट्टी की दीवारों से बने भवनों के अतिरिक्त गर्त-निवास के प्रमाण भी मिले हैं। दाइमाबाद में प्राप्त भवनों को कार्य एवं प्रमाण के आधार पर नामकरण भी किया गया है; जैसे—पुरोहित आवास, शिल्पी-भवन, धार्मिक-भवन, कार्यशाला आदि।

इस संस्कृति के लोग ताँबे की चिपटी कुल्हाड़ियाँ, खंजर, मछली पकड़ने वाले काँटे, चूड़ियाँ, लघु-पाषाण उपकरण आदि का उपयोग करते थे। उत्खनन् में ऊपरी स्तरों से नव-पाषाण कालीन प्रस्तर की कुल्हाड़ियाँ भी प्राप्त हुई हैं। मिट्टी

के बने मनके, चूड़ियाँ कर्णाभूषण, गोटियाँ, गोलियाँ, गिप्पी आदि इस संस्कृति के साथ की नहीं, अपितु, लगभग सभी ताम्र-पाषाणिक संस्कृतियों में ये वस्तुएँ पाई जाती हैं। मकानों के भीतर सिल-बट्टे चूल्हे अनाज रखने वाले, भोजन तथा पानी से सम्बन्धित मिट्टी के भाण्ड आदि भी प्राप्त होते हैं।

मालवा संस्कृति के लोग गेंहूँ, मसूर, चना, जौ, मूँग, मटर, धान आदि का कृषि कार्य करते थे तथा भेड़, बकरी, गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं को पालते भी थे। यही नहीं, जंगली जानवरों की अस्थियों के उपलब्ध होने से लोगों की शिकारी एवं माँसाहारी प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। दाइमाबाद तथा ईनामगाँव से शवाधानों के अन्तर्गत, गर्त अथवा कलश शवाधान के प्रमाण मिले हैं जिनमें मृतक की अस्थियों के साथ अंत्येष्टि सामग्री के रूप में मिट्टी के पात्र भी रखे हुए प्राप्त हुए हैं।

4. **जोर्वे ताम्र पाषाणिक संस्कृति** (1400 ई.पू. से 7000 ई. तक) के सम्बन्ध में सर्वप्रथम जानकारी महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में स्थित जोर्वे नामक स्थान के उत्खनन् से मिली थी, जिसके आधार पर इस संस्कृति का नामकरण किया गया है, यही नहीं, चूँकि इसका विस्तार महाराष्ट्र के अधिकांश भागों में पाया जाता है, अत: इसे महाराष्ट की ताम्र-पाषाणिक संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है। ताप्ती, गोदावरी तथा भीमा नदियों की सहायक सरिताओं के तटों पर इस संस्कृति के अधिकांश पुरा-स्थल स्थित हैं। उत्खनित पुरा-स्थलों में जोर्वे, नेवासा, नासिक, बाहल, टेकवाड़ा, सावलदा, प्रकाश, सोनगाँव, अपेगाँव, ईनामगाँव, वाडकी, दाइमाबाद आदि प्रमुख हैं। इस संस्कृति की पात्र परम्परा के अन्तर्गत काले रंग से चित्रित लाल मृद्भाण्ड आते हैं जिनके उदर भाग प्राय: कोणीय (केरिनेटेड) हैं।

इस संस्कृति के चाक निर्मित मृदभाण्ड प्राय: हल्के लाल रंग के तथा मजबूत गढ़न के हैं, जिन पर गाढ़ा लाल लेप किया गया है। इनके पात्रों की अपनी विशिष्टताएँ हैं। लम्बी वलयाकार टोंटी, कोणिक उदर, गर्दन विहीन बाहर की ओर फैलती हुई बारी, छोटे पाये युक्त पात्र आदि इनके प्रमुख लक्षण हैं। बारीकब छनी हुई मिट्टी को भली-भाँति सानकर तीव्र गति के चाक पर उन्हें निश्चित आकार प्रदान किया गया है। पात्र प्रकारों में— छोटे आधार वाली तश्तरी, अंत्येष्टि कलश, लोटे, घेड़े, थालियाँ, कटोरे ढक्कन आदि हैं। पात्रों की लाल लेपित बाहरी सतह पर बारहसिंघा, कुत्ता, पेड़-पौधे, फूल, पत्ती, त्रिभुज, चतुर्भुज, सरल रेखाएँ आदि का चित्रण, काले रंग से किया गया है।

जोर्वे संस्कृति के लोग मिट्टी के भवनों का निर्माण अपने निवास के लिए करते थे जिनकी छत लकड़ी, घास-फूस की बनाई जाती थी। भवनों का भू-विन्यास प्राय: वर्गाकार अथवा आयताकार होता था जिनकी दीवारों के कोने मालवा संस्कृति के भवनों के समान अर्ध वृत्ताकार बनाए जाते थे। कुछ भवनों के भीतर आंगन की व्यवस्था भी थी। जबकि उत्तर जोर्व संस्कृति के लोगों के भवन वृत्ताकार भू-विन्यास पर आधारित थे। भवनों के भीतर खाने-पीने से सम्बन्धित मृद्भाण्ड, सिल-लोढ़े लघु-पाषाण उपकरण आदि प्राप्त हुए हैं, जो उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हैं।

कुछ पुरा-स्थलों से, मिट्टी की बनी हुई स्त्री तथा वृषभ की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, सिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस संस्कृति में उनका धार्मिक महत्त्व था। अन्य मानव उपयोगी वस्तुओं में बहुमूल्य पत्थरों, सिलखड़ी, पकी हुई मिट्टी तथा ताम्र धातु के मनके, ताम्र निर्मित चाकू, सूई, चूड़ियाँ, अंजन शलाका, कुल्हाड़ी आदि की गणना की जा सकती है। इनकी आर्थिक स्थिति प्रमुखरूप से कृषि तथा पशु पालन पर आधारित थी। कृषि के अन्तर्गत गेहूँ, मसूर, मटर, जौ, उड़द, मूँग आदि की खेती के अतिरिक्त कपास की खेती के संकेत भी मिलते हैं। ईनामगाँव से जामुन, ताड़, झरबेरी तथा बहेड़ा की गुठलियाँ प्राप्त हुई हैं। पालतू पशुओं में भेड़, बकरी, कुत्ता, बैल, गाय आदि प्रमुख थे। जंगली जानवरों की अस्थियों की उपस्थिति से लोगों की शिकारी प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है।

जोर्वे संस्कृति से सम्बन्धित अनेक शवाधानों का उत्खनन् किया जा चुका है, जो आवासीय क्षेत्रों में मिलते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि, इस संस्कृति के लोग मृतकों को, खोदे गए गर्त में, उत्तर दिशा की ओर मुख करके लिटाते थे तथा उनके साथ अंत्येष्टि सामग्री के रूप में, मिट्टी के पात्र तथा आभूषण रखते थे। कुछ मृतकों की टाँगे अलग कर दफनाया गया था, इसके पीछे सम्भवत: यह मान्यता रही हो, कि मृतक कहीं भाग न जावे। बच्चों को दफनाने के लिए प्राय: दो बड़े कलशों का प्रयोग होता था, अस्थि रखने के पश्चात् दोनों घड़ों के मुख आपस में सटाकर रख दिये जाते हैं। एकल अंत्येष्टि कलश के भी उदाहरण मिलते हैं। इन अंत्येष्टि कलशों को गर्त में अन्य पात्रों के साथ दफना दिया जाता था।

❑

UNIT-II

सिन्धु घाटी सभ्यता, वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल

Indus Valley Civilisation, Vedic and Later Vedic Period

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सिंधु घाटी सभ्यता का सर्वप्रथम कब और किसने पता लगाया?
When and who found out about Indus valley civilisation first of all?

उत्तर सन् 1921 ई. में रायबहादुर साहनी ने हड़प्पा नामक स्थान की खुदाई करके सिंधु घाटी सभ्यता का सर्वप्रथम पता लगाया।

प्र.2. सिन्धु घाटी सभ्यता व वैदिक सभ्यता में एक प्रमुख अन्तर क्या है?
What was the main difference between Indus valley civilisation and Vedic civilisation?

उत्तर सिन्धु घाटी सभ्यता नगरीय सभ्यता थी जबकि वैदिक सभ्यता मूलत: ग्रामीण सभ्यता थी।

प्र.3. मोहनजोदड़ो का महत्त्वपूर्ण स्मारक कौन-सा है?
Which is the most important building of Mohenjodaro?

उत्तर मोहनजोदड़ों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्मारक वृहत् स्नानागार है।

प्र.4. मोहनजोदड़ो से आपका क्या आशय है?
What do you mean by Mohenjodaro?

उत्तर मोहनजोदड़ो से आशय 'मृतकों का टीला' से है।

प्र.5. डाबरकोट कहाँ स्थित है?
Where is Dabarkot located?

उत्तर डाबरकोट उत्तरी बलूचिस्तान की पहाड़ियों में स्थित है।

प्र.6. सैन्धव सभ्यता को सुमेरियन सभ्यता का एक उपनिवेश किस विद्वान् ने बताया है?
Who called Indus valley civilisation to be colony of Sumerian civilisation?

उत्तर सैन्धव सभ्यता को सुमेरियन सभ्यता का एक उपनिवेश ह्वीलर ने बताया है।

प्र.7. सिन्धु सभ्यता के समय समाज किस प्रकार का समाज था?
What kind of society did Indus valley civilisation have?

उत्तर सिन्धु सभ्यता के समय समाज मातृप्रधान समाज था।

प्र.8. आर्यों का प्राचीनतम ग्रन्थ कौन-सा है?
Which is the oldest book of the Aryans?

उत्तर ऋग्वेग आर्यों का प्राचीनतम ग्रन्थ है।

प्र.9. ऋग्वैदिक काल व उत्तर वैदिक काल का काल-निर्धारण कीजिए।
Give the timeline of Rig Vedic Period and Later Vedic Period.

उत्तर ऋग्वैदिक काल का समय 1500-1000 ई०पू० है और उत्तर वैदिक काल का समय 1000-600 ई०पू० है।

TOUCH 'n PASS

प्र.10. उत्तर वैदिक काल के लोगों का प्राथमिक व्यवसाय क्या था?

What was the first occupation of later vedic period?

उत्तर उत्तर वैदिक काल के लोगों का प्राथमिक व्यवसाय कृषि था।

प्र.11. उत्तर वैदिक काल में स्थपति, किसे कहा जाता था?

Who was the Sthapati in Later Vedic Period?

उत्तर उत्तर वैदिक काल में 'स्थपति' न्यायाधीश को कहा जाता था।

प्र.12. अहिच्छत्र कहाँ पर स्थित है?

Where is Ahichhatra located?

उत्तर अहिच्छत्र उत्तर प्रदेश के बरेली जिले में रामनगर कस्बे के पास स्थित है।

प्र.13. 'बलि' किसे कहते थे?

What was known as 'Bali'?

उत्तर वैदिककाल में 'बलि' नामक एक कर था जो प्रजा द्वारा राजा को अपनी इच्छा से दिया जाता था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सिन्धु घाटी सभ्यता की भवन निर्माण कला का संक्षेप में परीचय दीजिए।

Give a brief introduction of building style of Indus Valley Civilisation.

उत्तर सैन्धव सभ्यता काल में भवन तीन रूपों में बनाए जाते थे—निवासगृह, विशाल भवन तथा सार्वजनिक स्नानागार। जो मकान छोटे होते थे, उनमें दो कमरे होते थे जबकि बड़े मकान महलों के आकार के होते थे। मकानों के दरवाजे गलियों की ओर होते थे। सभी मकानों में रसोईघर, स्नानागार, आँगन, कुएँ तथा ढँकी हुई नालियाँ होती थीं। मकानों के दरवाजे सम्भवत: लकड़ी के बने होते थे और बीच में न होकर अन्त में लगाए जाते थे। मकानों की छतें भी लकड़ी की ही बनाई जाती थीं जिन पर चढ़ने के लिए पक्की ईंटों की सीढ़ियाँ बनी होती थीं। मकानों की नींव पक्की ईंटों से भरी जाती थी जिनके ऊपर सीधी दीवार खड़ी होती थी। दीवारों में हवा तथा प्रकाश के लिए पत्थर की जाली लगाई जाती थी। इस काल में मकान एक-दूसरे से सटकर बनाए जाते थे, किन्तु कभी-कभी दो मकानों के मध्य में एक फुट चौड़ा गलियारा भी छोड़ दिया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग स्वास्थ्य तथा सफाई के प्रति बहुत सजग थे।

प्र.2. सिन्धु घाटी सभ्यता के मुख्य स्थल 'लोथल' का विवरण संक्षेप में दीजिए।

Give a brief description of Lothal.

उत्तर लोथल सैन्धव सभ्यता का एक मुख्य पुरास्थल है। लोथल का टीला गुजरात राज्य के अहमदाबाद जिले में सरगवल नामक गाँव के पास स्थित है। सन् 1955 तथा सन् 1962 के मध्य यहाँ एस०आर० राव के निर्देशन में उत्खनन कार्य किया गया। यहाँ पर दो मील के घेरे में बसे हुए एक नगर के खण्डहर प्राप्त हुए जिसे लोथल नाम से जाना गया। यह छह खण्डों में बँटा था। यहाँ ऊँचे चबूतरे, रक्षा प्राचीर, सड़क और मकानों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि पकी ईंटों का बना हुआ विशाल आकार (214 × 36 मीटर) का एक घेरा है जिसे राव ने 'जहाजों की गोदी' (Dock-Yard) बताया है जिससे होकर जहाज आते-जाते थे।

यहाँ मिस्र और मेसोपोटामिया से व्यापारिक जहाजों का आवागमन होता था। यह नगर मोहनजोदड़ो के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित था।

प्र.3. सिन्धु घाटी सभ्यता के राजनीतिक जीवन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

Give a brief description of political life of Indus Valley Civilisation.

उत्तर सिन्धु घाटी की सभ्यता में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा का शासन कार्य सुदृढ़ दुर्गों द्वारा होता था। इन दुर्गों में शासन के केन्द्रीय अधिकारी निवास करते थे। सम्भवत: उनका एक राजा भी होता था जो पुरोहित होता था और देवता के प्रतिनिधि के रूप में शासन का संचालन करता था। प्रत्येक नगर के विभिन्न भागों में प्राय: रक्षकों की भी व्यवस्था थी। शासन में धर्म की ही प्रधानता थी। जनता से कर के रूप में अनाज लिया जाता था।

सिन्धु घाटी की सभ्यता के विस्तार से ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो क्रमशः उत्तरी तथा दक्षिणी भाग के शासन केन्द्र थे। **स्टुअर्ट पिग्गट** ने इन्हें एक विस्तृत साम्राज्य की जुड़वाँ राजधानी बताया है। कुछ विद्वान सैन्धव साम्राज्य की तीसरी राजधानी कालीबंगा में मानते हैं। **बी०बी० लाल** की दृष्टि में सैन्धव काल में कई छोटे-बड़े राज्य रहे होंगे तथा प्रत्येक का अलग-अलग मुख्यालय रहा होगा जैसा कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी में सोलह महाजनपदों की स्थिति में दिखाई देता है।

प्र.4. मोहनजोदड़ो के वृहत् स्नानागार का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

Give a brief description of the Great Bath of Mohenjodaro.

उत्तर मोहनजोदड़ो का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्मारक वृहत् स्नानागार है। यह उत्तर से दक्षिण तक 54.86 मीटर तथा पूर्व से पश्चिम तक लगभग 33 मीटर है। इसके केन्द्रीय खुले परिसर के मध्य जलाशय या जलकुण्ड बना हुआ है। यह 11.89 मीटर लम्बा और 7.01 मीटर चौड़ा तथा 2.44 मीटर गहरा है। इसमें उतरने के लिए उत्तर तथा दक्षिण की ओर सीढ़ियाँ बनी हैं। जलाशय की फर्श पक्की ईंटों से बनी है। फर्श तथा दीवार की जुड़ाई जिप्सम से की गई है। बाहरी दीवार पर बिटुमेन का एक इंच मोटा प्लस्तर लगाया गया है। जिप्सम तथा बिटुमेन जलाशय को सुदृढ़ बनाते हैं।

इस स्नानागार के उत्तर में छोटे-छोटे स्नानागार बने हैं। सम्भवतः वृहत् स्नानागार सामान्य जनता के लिए था तथा इसका उपयोग धार्मिक समारोहों के अवसर पर किया जाता रहा होगा। इससे स्पष्ट होता है कि सैन्धव सभ्यता में धार्मिक कार्यों के लिए तथा शरीर संस्कार के लिए स्वच्छता का अत्यन्त ऊँचा मानक था। मार्शल ने इसे तत्कालीन विश्व का एक 'आश्चर्यजनक निर्माण' कहा है।

प्र.5. सिन्धु घाटी सभ्यता की अन्त्येष्टि क्रियाओं के विषय में आप क्या जानते हैं?

What do you know about the funeral ceremonies of Indus Valley Civilisation?

उत्तर उत्खनन कार्य में सैन्धव सभ्यता से सम्बन्धित तीन कक्षों वाला एक विशाल कब्रिस्तान (R 37) प्राप्त हुआ है, इससे सिद्ध होता है कि सैन्धव सभ्यता काल में मृतकों को पूर्णरूप से दफनाने की प्रथा प्रचलित थी। कभी-कभी शवों को खुले मैदान में जंगली जानवरों को खाने के लिए भी छोड़ दिया जाता था और इसके बाद बची हई अस्थियों को समाधि का रूप दिया जाता था। ऐसे आंशिक समाधीकरण के उदाहरण बहवलपुर के स्थल से मिलते हैं। हड़प्पा में पाई गई समाधियों में शवों के सिर अधिकतर उत्तर दिशा की ओर रखे थे। यही सामान्य प्रथा प्रतीत होती है, लेकिन इसके विपरीत यह भी देखने को मिलता है, जैसे—कालीबंगा में दक्षिण-उत्तर, लोथल में पूर्व-पश्चिम तथा रोपड़ में पश्चिम-पूर्व दिशा में लिटाए गए शव प्राप्त हुए हैं।

तीसरी प्रथा भी प्रचलित थी जो दाहकर्म से सम्बन्धित थी। इसमें शवों को जलाकर भस्मों को घड़े में रखकर समाधियों में गाड़ा जाता था। कभी-कभी घड़ों के भीतर भौतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक वस्तुएँ, बर्तन, आभूषण आदि भी रख दी जाती थीं। यह इस बात का प्रतीक है कि इस सभ्यता के लोग मरणोपरान्त जीवन में आस्था रखते थे।

प्र.6. सैन्धव सभ्यता के पतन के बारे में विद्वानों के विभिन्न मतों का वर्णन कीजिए।

Give the views of different scholars about the decline of Indus Valley Civilisation.

उत्तर सैन्धव सभ्यता के उद्भव की ही भाँति इसके पतन के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं था। इस सभ्यता के प्राचीन अवशेषों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि अपने अन्तिम समय में यह पतनोन्मुख रही। अन्ततः द्वितीय सहस्राब्दी ई०पू० के मध्य इस सभ्यता का पूर्णतः विनाश हो गया। इस सभ्यता का क्रमिक पतन हुआ फलस्वरूप यह नगरीय सभ्यता से ग्रामीण सभ्यता में पहुँच गई। इसके पतन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत निम्न प्रकार हैं—

विद्वान	विनाश के कारण
आरेल स्टीन, अमलानन्द घोष	जलवायु परिवर्तन
गार्डन चाइल्ड और ह्वीलर	बाह्य आक्रमण एवं आर्यों के आक्रमण
जॉन मार्शल, अर्नेस्ट मैके व एस०आर० राव	बाढ़
के०यू०आर० कनेडी	प्राकृतिक आपदा (मलेरिया, महामारी)
एम०आर० साहनी	भूतात्त्विक परिवर्तन/जलप्लावन
जॉन मार्शल	प्रशासनिक शिथिलता

प्र.7. सैन्धव सभ्यता की देन क्या है? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

What have come down to us from Indus Valley Civilisation? Explain in brief.

उत्तर सिन्धु घाटी सभ्यता की देन अग्रलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट होती है—

1. भारतीय सभ्यता के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, कलात्मक पक्षों का आदि रूप हमें सिन्धु घाटी सभ्यता में देखने को मिलता है। सामाजिक जीवन के क्षेत्र में इस चातुर्वर्ण व्यवस्था के बीज सिन्धु घाटी सभ्यता में पाते हैं।
2. कृषि, पशुपालन, उद्योग-धन्धों, व्यापार-वाणिज्य आदि का संगठित रूप से प्रारम्भ सिन्धुवासियों ने ही किया जिनका विकास बाद की सभ्यताओं में हुआ।
3. भारतीय कला के विभिन्न तत्त्वों का मूल रूप भी हमें सैन्धव कला में दिखाई देता है। सुनियोजित ढंग से नगर बसाने का ज्ञान भी हमें सैन्धव सभ्यता से ही प्राप्त होता है। भारतीयों को दुर्ग निर्माण तथा प्राचीरों के निर्माण की प्रेरणा सिन्धु कालीन कलाकारों ने दी थी।

प्र.8. सैन्धव सभ्यता का तिथि निर्धारण कीजिए।
Give a timeline of Indus Valley Civilisation.

उत्तर सिन्धु घाटी सभ्यता के तिथि निर्धारण के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं। मार्शल के अनुसार इसकी तिथि 3250 ई०पू० से 2750 ई०पू० तक है। अर्नेस्ट मैके इसकी तिथि ई०पू० 2800-2500, माधवस्वरूप वत्स ई०पू० 2700-2500 व सी०जे० गैड ई०पू० 2350-1700 मानते हैं। उपलब्ध प्रमाणों की समीक्षा करने के बाद ह्वीलर का निष्कर्ष अपेक्षाकृत अधिक तर्कसंगत है। वे 2500 ई०पू० से 1500 ई०पू० तक इसकी तिथि-निर्धारण करने के पक्ष में हैं। ह्वीलर ने यह निष्कर्ष पश्चिमी एशिया से प्राप्त हुई। बारह सैन्धव मुहरों तथा ऋग्वेद में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निकाला है। सैन्धव सभ्यता का मेसोपोटामिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध ई०पू० 2400 के लगभग स्थापित हुआ होगा। ई०पू० 1500 के पश्चात् की कोई भी मुहर मेसोपोटामिया के स्थलों से नहीं मिलती। अत: इसे सैन्धव सभ्यता का अन्त कहा जा सकता है।

प्र.9. सैन्धव सभ्यता के विस्तार के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में लिखिए।
What do you know about the expanse of Indus Valley Civilisation. Write in brief.

उत्तर सैन्धव सभ्यता की उत्तरी सीमा पाकिस्तान के पंजाब राज्य में स्थित रहमान ढेरी तथा दक्षिणी सीमा गुजरात राज्य में स्थित भोगवार तक है। ये दोनों स्थल परस्पर 1400 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। इसी प्रकार इसके सबसे पूरब में स्थित आलमगीरपुर (मेरठ) से सबसे पश्चिम में स्थित सत्कागेनडोर नामक पुरास्थल की दूरी लगभग 1600 किमी है। इस प्रकार सम्पूर्ण सैन्धव सभ्यता का क्षेत्रफल लगभग बारह लाख पन्द्रह हजार वर्ग किमी था। आज तक इस सभ्यता के कुल 2800 स्थलों की खोज की जा चुकी है। ये स्थल बलूचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, राजस्थान, हरियाणा, पश्चिमी पंजाब, गंगा-यमुना के दोआब, गुजरात, जम्मू, उत्तरी अफगानिस्तान आदि में फैले हुए हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भाग मिस्र तथा मेसोपोटामिया की तुलना में कहीं अधिक विस्तृत था। समकालीन विश्व की कोई अन्य सभ्यता सैन्धव सभ्यता की भाँति विस्तृत नहीं थी।

प्र.10. वैदिक काल के लोगों के आर्थिक जीवन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
Give a brief description of the economic life of the people of Vedic Period.

उत्तर वैदिक कालीन आर्यों की संस्कृति ग्रामीण और कबीलाई थी। उनका प्राथमिक पेशा पशुपालन था और द्वितीयक व्यवसाय कृषि था। वैदिक काल में 'गाय' को पवित्र माना जाता था और यह विनिमय के साधन के रूप में प्रयुक्त होती थी। आर्यों के अधिकांश युद्ध गायों को लेकर होते थे। गाय को अघन्या (न मारे जाने योग्य पशु) माना जाता था। गाय की हत्या करने वाले या उसे घायल करने वाले के लिए वेदों में मृत्युदण्ड अथवा देश-निकाले जाने की व्यवस्था थी। पणि नामक व्यापारी पशुओं की चोरी के लिए कुख्यात थे।

व्यापार मुख्यत: वस्तु विनिमय द्वारा होता था। व्यापार पर पणि लोगों का अधिकार था। विनिमय माध्यम के रूप में गायों व घोड़ों सहित 'निष्क' का भी उल्लेख मिलता है जो सम्भवत: स्वर्ण आभूषण या सोने का टुकड़ा होता था। वेकनाट सूदखोर थे, जो बहुत अधिक ब्याज लेते थे। ऋग्वेद में बुनकर, चर्मकार, बढ़ई, रथकार, कुम्हार आदि शिल्पियों का उल्लेख मिलता है। सोना के लिए हिरण्य शब्द मिलता है। कपास का उल्लेख कहीं नहीं है।

प्र.11. उत्तर वैदिक काल की सभ्यता के विस्तार का विवरण दीजिए।
Describe the expanse of Later Vedic Civilisation.

उत्तर उत्तर वैदिक कालीन सभ्यता के लोगों का प्रमुख केन्द्र मध्य देश था। इसका प्रसार सरस्वती नदी से लेकर गंगा के दोआब तक था। 'शतपथ ब्राह्मण' के विदेह माधव की कथा में उत्तर वैदिक काल में आर्यों के सदानीरा (गण्डक) के पूर्व की ओर प्रसार

का उल्लेख है। इस काल की सभ्यता का केन्द्र पंजाब से बढ़कर कुरुक्षेत्र (दिल्ली और गंगा-यमुना दोआब का उत्तरी भाग) तक हो गया था। 600 ई०पू० के आस-पास (उत्तर वैदिक काल के अन्तिम दौर में) आर्य लोग कोशल, विदेह एवं अंग राज्य से परिचित हो गए थे।

उत्तर वैदिक साहित्य में त्रिककूद, क्रौंच, मैनाक आदि पर्वतों का उल्लेख है, जो पूर्वी हिमालय क्षेत्र में अवस्थित हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' में उत्तर वैदिककालीन रेवा (नर्मदा) व सदानीरा (गण्डक) नदियों का उल्लेख है।

प्र.12. उत्तर वैदिक कालीन समाज कैसा था? संक्षेप में लिखिए।

How was Later Vedic society? Write in brief.

उत्तर उत्तर वैदिक काल में समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था, लेकिन इस काल में वर्ण व्यवस्था में कठोरता आने लगी थी। वर्णों का आधार कर्म पर आधारित न होकर जाति पर आधारित होने लगा था। समाज में अनेक धार्मिक श्रेणियों का उदय हुआ जो कठोर होकर विभिन्न जातियों में परिवर्तित होने लगीं। इस काल में व्यवसाय आनुवंशिक होने लगे थे। पारिवारिक जीवन ऋग्वेद के समान था। उत्तर वैदिक काल में गोत्र व्यवस्था स्थापित हुई। 'गोत्र' शब्द का अर्थ है—वह स्थान जहाँ कुल के सम्पूर्ण गोधन को एकसाथ रखा जाता था। बाद में इस शब्द का अर्थ एक मूल पुरुष का वंशज हो गया। परिवार पितृसत्तात्मक था, जिसका स्वामी पिता होता था। इस काल में स्त्रियों को पैतृक सम्बन्धी कुछ अधिकार प्राप्त थे।

जाबालोपनिषद में चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास) का उल्लेख मिलता है। इस काल में आर्यों को चावल, नमक, मछली, हाथी तथा बाघ आदि का ज्ञान हो गया था।

प्र.13. उत्तर वैदिक काल के लोगों के आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

Throw light on the economic life of the people of Later Vedic Period.

उत्तर उत्तर वैदिक काल में लोगों का पशुपालन के स्थान पर कृषि प्राथमिक व्यवसाय बन गया। 'शतपथ ब्राह्मण' में कृषि से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं-जुताई, बुवाई, कटाई तथा मड़ाई का उल्लेख है। इस समय आर्य सम्पूर्ण गंगा घाटी में कृषि करने लगे थे। इस काल में लोहे से बने उपकरणों के प्रयोग के कारण कृषि क्षेत्र में क्रान्ति आ गई। यजुर्वेद में लोहे के लिए 'श्याम अयस' एवं 'कृष्ण अयस' शब्द प्रयुक्त हुआ है। लोहे से बने उपकरणों के प्रयोग से कृषि का विस्तार पर्याप्त रूप से हुआ। इसके साथ-साथ फसलों की संख्या में भी वृद्धि हुई और धान प्रमुख फसल बन गई।

उत्तर वैदिक काल में कृषि में विस्तार, शिल्पों में कुशलता, व्यापार एवं वाणिज्य में पर्याप्त विस्तार हुआ था। इसके परिणाम स्वरूप जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'श्रेष्ठिन' का भी उल्लेख मिलता है। 'श्रेष्ठिन' श्रेणी का प्रधान व्यापारी होता था। इस काल के लोग चार प्रकार के बर्तनों (मृद्भाण्डों) से परिचित थे—काले व लाल रंग मिश्रित मृद्भाण्ड, काले रंग के मृद्भाण्ड, चित्रित धूसर मृद्भाण्ड और लाल मृद्भाण्ड।

प्र.14. सिन्धु घाटी सभ्यता के पतन के क्या कारण थे?

What were the reasons for the decline of Indus Valley Civilisation?

उत्तर

सिन्धु-सभ्यता का विनाश एवं अन्त
(Decline and End of Indus Valley Civilisation)

सिन्धु-सभ्यता का अन्त कब, क्यों और कैसे हुआ? इस विषय में सन्तोषजनक उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। विभिन्न इतिहासकारों ने सिन्धु-सभ्यता के पतन के विषय में अनुमान द्वारा तर्क प्रस्तुत किये हैं, जिनका वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **राजनीतिक एवं आर्थिक विघटन**—कुछ इतिहासकारों का विचार है कि सिन्धु-सभ्यता का पतन तत्कालीन राजनीतिक एवं आर्थिक विघटन के कारण हुआ। सिन्धु-सभ्यता तथा मैसोपोटामिया से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि अन्तिम चरण में सिन्धु-सभ्यता का विदेशों से व्यापार अत्यन्त कम हो गया था। यह इस बात का द्योतक है कि सिन्धु-सभ्यताकालीन समाज को अन्तिम दिनों में कुशल नेतृत्व प्राप्त नहीं था। वैदेशिक व्यापार कम होने पर स्वाभाविक था कि तत्कालीन समाज पर दुष्परिणाम पड़ता।
2. **जलवायु परिवर्तन**—अमलानन्द घोष आदि विद्वानों का मत है कि जलवायु में परिवर्तन एवं अनावृष्टि के कारण यह सभ्यता नष्ट हुई। सिन्धु-सभ्यता निवासियों द्वारा अत्यधिक लकड़ी के प्रयोग से हरियाली नष्ट हो गयी जिससे वर्षा में कमी व भूमि की उर्वरता में कमी हुई होगी।
3. **बाह्य आक्रमण**—अनेक इतिहासकार सिन्धु-सभ्यता के पतन का एक प्रमुख कारण बाह्य आक्रमण मानते हैं। अनेक संस्कृतियों का वैदेशिक आक्रमणों के कारण पतन हुआ है। **टॉयनबी** का भी विचार है कि जब किसी भी सभ्यता में

सम्पन्नता आती है तो दैनिक आवश्यकताओं की आसानी से पूर्ति होने के कारण लोग आलसी एवं विलासी हो जाते हैं। अत: शत्रुओं को उन पर आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। सम्भव है कि सिन्धु-सभ्यता के साथ भी ऐसा ही हुआ हो।

4. **जल प्लावन**—प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री साहनी का विचार है कि सिन्धु-सभ्यता के पतन का प्रमुख कारण जल प्लावन था। इस समय सम्भवत: रावी एवं सिन्धु नदी के प्रवाह की दिशा में परिवर्तन होने अथवा बाढ़ आने से ऐसा हुआ होगा।
5. **भूकम्प**—कुछ इतिहासकारों का मत है कि सम्भवत: किसी शक्तिशाली भूकम्प के द्वारा इस सभ्यता का विनाश हुआ होगा।
6. **संक्रामक रोग**—कुछ विद्वानों के अनुसार, मलेरिया अथवा किसी अन्य संक्रामक रोग के बड़े पैमाने पर फैलने से ऐसा हुआ होगा। इतिहास में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जब पूरी-पूरी बस्तियों को ऐसे रोगों ने अपने प्रभाव से उजाड दिया।

प्र.15. सिन्धु तथा वैदिक सभ्यता में अन्तर लिखिए।
Write the differences between Indus Valley and Vedic Civilisation.

उत्तर सिन्धु तथा वैदिक/आर्य सभ्यता में निम्नलिखित अन्तर थे—

क्र० सं०	सिन्धु-सभ्यता	वैदिक सभ्यता
1.	नगरीय सभ्यता थी।	ग्रामीण सभ्यता थी।
2.	लगभग 5000 वर्ष प्राचीन है।	लगभग 3000 वर्ष प्राचीन है।
3.	गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति थी।	राजतन्त्रात्मक शासन पद्धति थी।
4.	लोग काले रंग के थे।	लोग गोरे थे।
5.	लोहे से अपरिचित थे।	लोहे से परिचित थे।
6.	लेखन कला का ज्ञान था।	लेखन कला का ज्ञान नहीं था।
7.	प्रमुख पशु साँड़ था।	प्रमुख पशु गाय थी।
8.	घोड़े से अपरिचित थे।	अश्वों का प्रयोग करते थे।
9.	विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे।	विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध नहीं थे।

प्र.16. यह आप कैसे कह सकते हैं कि सिन्धु घाटी सभ्यता का विदेशों से सम्बन्ध था? संक्षेप में लिखिए।
How can you say that Indus Valley Civilisation had relations with other countries? Write in brief.

उत्तर विभिन्न प्रदेशों के उत्खनन से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि सिन्धु लोगों के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध थे। यह सम्बन्ध राजनीतिक थे अथवा नहीं? इसमें सन्देह है, किन्तु इतना निश्चित है कि प्रमुख रूप से उनके विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस व्यापारिक आदान-प्रदान ने सांस्कृतिक क्षेत्र में भी एक-दूसरे को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए— **सिन्धु एवं सुमेर-सभ्यता में बहुत समानता है।** सुमेर में अनेक मुहरें प्राप्त हुई हैं जो हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की मुहरों से एकरूपता रखती हैं, परन्तु दोनों सभ्यताओं में किसने, किसको प्रभावित किया, इस विषय पर विद्वानों में काफी मतभेद हैं। **मार्शल** के अनुसार, "सिन्धु-सभ्यता के विषय में हुए नवीन शोध कार्यों से यह सम्भावना प्रतीत होती है कि भारत पहले सुमेर सभ्यता और बाद में पश्चिम एशिया की अन्य सभ्यताओं का स्रोत था।" मिस्र के साथ सिन्धु-निवासियों के व्यापारिक सम्बन्धों के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। अत: मिस्र पर भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

प्र.17. वैदिककालीन धार्मिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
Describe the religious conditions during Vedic Period.

उत्तर

वैदिककालीन धार्मिक स्थिति
(Religious Conditions during Vedic Period)

ऋग्वेद में जिन देवताओं की पूजा-अर्चना एवं स्तुतियाँ मिलती हैं, वे प्राकृतिक तत्वों में निहित शक्तियों की प्रतीक हैं। वैदिककालीन ऋषि, संसार में विभिन्न प्राकृतिक शोभाओं को देखकर प्रभावित हुए व उनमें वे नैसर्गिक शक्तियों का अनुभव करते थे। इन नैसर्गिक शक्तियों को ऋषियों ने देवताओं की उपलब्धि मानकर, देवताओं के विषय में उत्पन्न विभिन्न भावों को वाक्यों के

रूप में परिणत कर दिया। इन पवित्र वाक्यों के द्वारा देवताओं की आराधना की जाने लगी। **निम्नलिखित तथ्यों से तत्कालीन स्थिति और स्पष्ट रूप से सामने आती है—**

1. **धार्मिक-दर्शन**—वैदिककालीन लोग मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इसकी चिन्ता नहीं करते थे। यद्यपि ऋग्वेद में स्वर्ग एवं नर्क का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार, **"स्वर्ग एक ऐसा स्थान है जहाँ यम एवं पूर्वज सुख से रहते हैं तथा आत्माएँ भी सुख का अनुभव करती हैं।"** दूसरी ओर नर्क की परिभाषा देते हुए ऋग्वेद में लिखा है, **"नर्क एक गड्ढे के समान है जिसमें अँधेरा है तथा यहाँ पर गलत कार्य करने वालों को दण्ड मिलता है।"**
2. **देवताओं का वर्गीकरण**—वैदिककाल के लोग प्रकृति के उपासक थे। जहाँ कहीं भी उन्हें किसी जीवित शक्ति का आभास हुआ वहीं उन्होंने एक देवता की सृष्टि कर दी। इसी कारण वैदिककाल के प्रारम्भ में देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक थे। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि उस समय कुल तैंतीस देवताओं का अस्तित्व था, जिन्हें निम्नवत् तीन वर्गों में बाँटा गया था—
   (i) **स्वर्ग के देवता**—स्वर्ग के देवताओं में प्रमुख घौस, वरुण, सूर्य आदि थे।
   (ii) **वायुमण्डलीय देवता**—देवताओं की इस श्रेणी में आने वाले प्रमुख देवता इन्द्र, रुद्र, मरुत आदि थे।
   उपर्युक्त देवताओं के अतिरिक्त भी अनेक छोटे-छोटे देवता थे। उदाहरण के रूप में धातु, विश्वकर्मा, रिभूस, अप्सरा, गन्धर्वस के नाम उल्लेखनीय हैं। ऋग्वेद में पशु-पूजा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।
3. **आराधना एवं यज्ञ**—वैदिक काल में पूजा एवं यज्ञ देवताओं को प्रसन्न करने के प्रमुख तरीके माने जाते थे। वैदिककालीन लोगों के द्वारा पूजा एवं यज्ञ मुख्यत: कुछ-न-कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा से ही किए जाते थे। यज्ञ में पुरोहितों का अत्यन्त प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण कार्य होता था तथा वे यज्ञ के लिए परम आवश्यक समझे जाते थे।

वैदिककालीन लोग देवताओं से भयभीत नहीं थे वरन् उन्हें मित्रवत् समझते थे। उन्हें विश्वास था कि देवता उनका अहित नहीं करेंगे। यद्यपि वैदिककालीन आर्य अनेक देवी-देवताओं की उपासना करते थे किन्तु उन्हें एक सत् (एक वास्तविकता) अथवा एकत्व का ज्ञान था।

प्र.18. उत्तर वैदिक युग के धर्म और दर्शन के बारे में आप क्या जानते हैं?
What do you know about the religion and philosophy of Later Vedic Period?

उत्तर उत्तर वैदिक युग में भी कर्मकाण्ड करने का प्रमुख उद्देश्य भौतिक सुखों को प्राप्त करना था। इस काल में गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र आर्य संस्कृति का प्रमुख केन्द्रस्थल बन गया। ऐसा माना जाता है कि सम्पूर्ण उत्तर वैदिक साहित्य कुरु-पांचालों के दूसरे प्रदेशों में विकसित हुआ। यज्ञ इस संस्कृति का मूल था। यज्ञ के साथ-साथ अनेकानेक अनुष्ठान व मन्त्रविधियाँ भी प्रचलित हुईं। ऋग्वैदिक काल के दो सबसे बड़े देवता इन्द्र एवं अग्नि अब उतने महत्त्वपूर्ण नहीं रहे। इन्द्र के स्थान पर प्रजापति (सृजन के देवता) को सर्वोच्च स्थान मिला। इस काल के दो अन्य प्रमुख देवता रुद्र (पशुओं के देवता) व विष्णु (लोगों के पालक) माने जाते हैं। इस काल में वर्ण व्यवस्था कठोर रूप ले चुकी थी; अत: कुछ वर्णों के अपने अलग से देवता हो गए। पूषन जो पहले पशुओं के देवता थे अब शूद्रों के देवता हो गए।

'महाभारत' जिसका पुराना नाम 'जयसंहिता' था, यह उत्तर वैदिक काल में विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य था; महाभारत के बाद रामायण भी उत्तर वैदिक काल का प्रमुख महाकाव्य था। उत्तर वैदिक काल में ही बहुदेववाद, वासुदेव सम्प्रदाय एवं षड्दर्शनों (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त) का बीजारोपण हुआ। मीमांसा को 'पूर्व मीमांसा' एवं वेदान्त को 'उत्तर मीमांसा' के नाम से भी जाना जाता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सिन्धु घाटी की सभ्यता की खोज कब और किसने की? इसके विस्तार का भी विस्तृत वर्णन कीजिए।
When and who discovered the Indus Valley Civilisation? Also, give a detailed description of its expanse.

उत्तर

सिन्धु-घाटी की सभ्यता : हड़प्पा सभ्यता
(Indus Valley Civilisation : Harappan Culture)

सिन्धु-सभ्यता का भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है; क्योंकि इस सभ्यता की खोज से पूर्व मौर्य-काल से पहले की पुरातात्विक सामग्री के विषय में अत्यन्त अल्प जानकारी उपलब्ध थी। **यह सभ्यता मिस्त्र, मैसोपोटामिया आदि की सभ्यताओं के समान विकसित एवं प्राचीन थी तथा कुछ क्षेत्रों में तो उनसे भी अधिक विशिष्ट थी।** मार्शल ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता की खोज (Discovery of Indus Valley Civilisation)

अब से अस्सी वर्ष पूर्व तक सिन्धु-सभ्यता के विषय में लेशमात्र भी ज्ञान न था तथा यह सभ्यता अतीत के खण्डहरों में विलुप्त थी। 1921 ई. तक यह सामान्य धारणा थी कि भारत की प्राचीनतम सभ्यता आर्यों की वैदिक सभ्यता है, किन्तु सिन्धु-सभ्यता की खोज ने इस धारणा को असत्य प्रमाणित कर दिया।

सिन्धु-सभ्यता के अवशेष मुख्यतया सिन्धु नदी की घाटी में (आजकल पाकिस्तान में) विस्तृत भू-भाग में टीलों के रूप में प्राप्त हुए हैं। 1921 ई. में **रायबहादुर साहनी ने हड़प्पा नामक स्थान पर सर्वप्रथम इस महत्त्वपूर्ण सभ्यता के अवशेषों का पता लगाया।** एक वर्ष उपरान्त 1922 ई. में **राखालदास बनर्जी** ने हड़प्पा से 640 किमी दूर स्थित मोहनजोदड़ो में उत्खनन के द्वारा एक भव्य नगर के अवशेष प्राप्त किये। मोहनजोदड़ो सिन्ध के लरकाना जिले में कराची से 300 मील उत्तर में स्थित है। मोहनजोदड़ो का शाब्दिक अर्थ **'मृतकों का टीला'** है। इसके पश्चात् भारतीय पुरातत्व विभाग ने योजना बनाकर इस क्षेत्र में अत्यन्त कुशलतापूर्वक उत्खनन का कार्य प्रारम्भ किया। **अब जबकि इस सभ्यता के अवशेष सिन्धु नदी की घाटी से दूर गंगा-यमुना के दोआब और नर्मदा-ताप्ती के मुहानों तक प्राप्त हुए हैं, इस सभ्यता का नाम 'सिन्धु सभ्यता' उचित प्रतीत नहीं होता।** कुछ पुरातत्ववेत्ताओं ने इस पुरातत्व परम्परा के आधार पर कि सभ्यता का नामकरण उसके सर्वप्रथम ज्ञात स्थल के नाम पर आधारित होता है, **इस सभ्यता को 'हड़प्पा सभ्यता' कहा है, किन्तु अभी तक 'सिन्धु-सभ्यता' नाम ही अधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध है।**

सिन्धु घाटी की सभ्यता का विस्तार (Expansion of Indus Valley Civilisation)

पुरातात्विक अन्वेषणों एवं उत्खननों से स्पष्ट हो गया है कि सिन्धु-सभ्यता का क्षेत्र हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो तक ही सीमित नहीं, अपितु अत्यधिक विस्तृत था। **सिन्धु-सभ्यता का विस्तार प्राचीन मैसोपोटामिया, मिस्र एवं फारस की सभ्यताओं के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत था।** सिन्धु-सभ्यता के विस्तार में उल्लेखनीय बात जैसा कि फेयरसर्विस का भी विचार है, यह है कि सिन्धु सभ्यता के निवासियों ने मुख्यतया ऐसे स्थानों को चुना था जहाँ की जलवायु गेहूँ उपजाने के लिए उपयुक्त थी। इस सभ्यता के निवासियों के पास लगभग 1,300 किमी. का समुद्र तट था जिससे उन्हें समुद्री व्यापार की सुविधा भी उपलब्ध थी।

अद्यतन खोजों से सिन्धु-सभ्यता के अवशेष अग्र स्थानों से प्राप्त होते हैं जिनसे उसके विस्तार के विषय में भी ज्ञात होता है—

1. **बलूचिस्तान**—बलूचिस्तान में सिन्धु-सभ्यता के अवशेष सुत्कगेनडोर, सोत्काकोह एवं डाबरकोट से प्राप्त होते हैं, जिनका वर्णन अग्रवत् है—

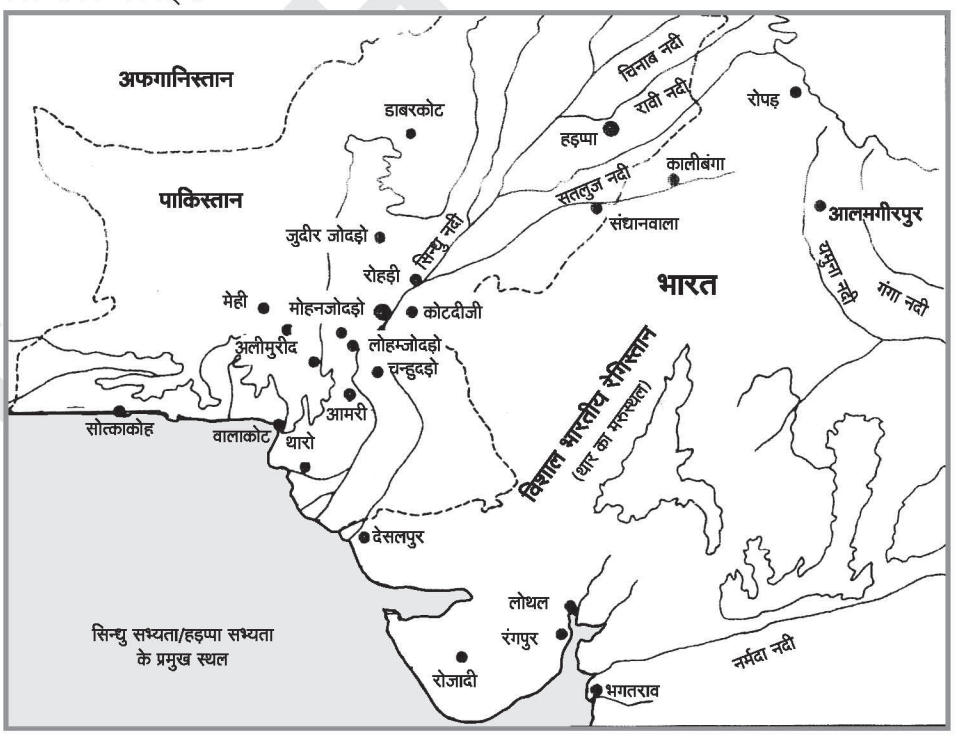

(i) **सुत्कगेनडोर**—यह करांची के पश्चिम में लगभग 300 मील दूरी पर स्थित है। 1927 ई. में इसकी खोज स्टाइन ने की थी। 1926 ई. में डेल्स ने यहाँ पर बन्दरगाह, दुर्ग एवं निचले नगर की रूपरेखा प्राप्त की थी।

(ii) **सोत्काकोह**—इसकी खोज डेल्स ने 1926 ई. में की थी। यह पेरिन से आठ मील की दूरी पर स्थित है।

(iii) **डाबरकोट**—यह उत्तरी बलूचिस्तान की पहाड़ियों में स्थित है। यहाँ पर अभी तक विशेष उत्खनन सम्बन्धी कार्य नहीं हुआ है।

2. **सिन्ध**—मोहनजोदड़ो के अतिरिक्त सिन्ध में निम्न स्थानों से सिन्धु-सभ्यता के अवशेष प्राप्त होते हैं—

(i) **कोटदीजी**—यह मोहनजोदडो से पूर्व में लगभग 40 किमी की दूरी पर स्थित है। 1955 एवं 1957 ई. में फजल अहमद खाँ ने यहाँ उत्खनन कराया एवं सिन्धु-सभ्यता के अवशेष प्राप्त किये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सिन्धु-सभ्यता के नीचे यहाँ पर एक अन्य सभ्यता, जिसे 'कोटदीजी सभ्यता' कहा गया, के अवशेष भी प्राप्त हुए।

(ii) **अलीमुरीद**—यह दादू से 32 किमी दूर स्थित है।

(iii) **चन्हुदड़ो**—एन.जी. मजूमदार ने इस स्थान की खोज 1931 ई. में की थी। मैके ने भी यहाँ पर उत्खनन कार्य कराया था। यह स्थान मोहनजोदड़ो से दक्षिण-पूर्व में लगभग 128 किमी पर स्थित है। यहाँ पर सबसे नीचे सिन्धु सभ्यता, उसके ऊपर झूकर सभ्यता तथा उसके ऊपर झांगर सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। सिन्धु-सभ्यता सम्बन्धी बर्तन, मनके, ताम्र उपकरण आदि प्राप्त होते हैं।

3. **पंजाब**—हड़प्पा के अतिरिक्त पंजाब में रोपड़, बाड़ा, संधोल स्थानों पर भी सिन्धु-सभ्यता के अवशेष उपलब्ध होते हैं, **जिनका वर्णन निम्नवत् है—**

(i) **रोपड़**—यहाँ उत्खनन का कार्य यज्ञदत्त शर्मा ने कराया। यह स्थान शिवालिक पहाड़ी की उपत्यका में स्थित है। यहाँ से एक मुद्रा भी प्राप्त हुई।

(ii) **बाड़ा**—यह रोपड़ के समीप ही स्थित है।

(iii) **संधोल**—लुधियाना जिले में स्थित संधोल से मनके, चूड़ियाँ वाली आदि प्राप्त हुए।

4. **हरियाणा**—हरियाणा में सिन्धु-सभ्यता सम्बन्धी बणावली एवं मीत्ताथल स्थानों का पता चला है।

5. **राजस्थान**—राजस्थान में कालीबंगा नामक स्थान पर सिन्धु-सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। **कालीबंगा सरस्वती नदी के किनारे पर स्थित है जहाँ दो टीले हैं।** पूर्वी टीले में पत्थर के मोती, मिट्टी की चूड़ियाँ, बर्तन (मिट्टी के) प्राप्त हुए हैं। पश्चिमी टीले में स्नानागार, कुएँ, अग्निकुण्ड एवं मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं। इस स्थान की खोज 1942 ई. में स्टाइन ने की थी।

6. **उत्तर प्रदेश**—उत्तर प्रदेश में सिन्धु-सभ्यता के अवशेष मेरठ से लगभग 30 किमी दूर आलमगीरपुर एवं गंगा की घाटी में इलाहाबाद से 56 किमी दूर कौशाम्बी के निकट प्राप्त हुए हैं।

7. **गुजरात**—गुजरात में धौलावीरा, रंगपुर, लोथल, रोजादि, सुरकोटाडा एवं मालवण से सिन्धु-सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। उपर्युक्त स्थानों में लोथल ही विशेष महत्त्वपूर्ण है।

8. **लोथल**—यह अहमदाबाद से 16 किमी दक्षिण में स्थित है। **प्रो. सांकलिया** का मत है कि यहाँ पर सिन्धु-सभ्यता के लोग पैदल व समुद्री दोनों ही मार्गों से आये थे। प्राचीन काल में सम्भवत: यह स्थान साबरमती एवं भोगावा के संगम पर स्थित था। **यहाँ हुए उत्खनन से ज्ञात होता है कि यहाँ पर सम्भवत: एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था तथा जहाजों के रुकने के लिए एक विशाल डॉकयार्ड बना हुआ था।** लोथल में नालियों की बहुत अच्छी व्यवस्था थी। लोथल से बाँट, चूड़ियाँ व पत्थर के आभूषण भी प्राप्त होते हैं। लाल एवं काले रंग के मिट्टी के बर्तन भी यहाँ से प्राप्त हुए हैं जिन पर आकृतियाँ बनी हुई हैं। लोथल में छह बार बसने के अवशेष मिलते हैं, सम्भवत: साबरमती एवं भोगावा नदियों के प्रकोप से यह नष्ट हुआ होगा।

9. **धौलावीरा**—यह कच्छ जिले में खादिर नामक द्वीप पर स्थित है। यह सिन्धु-सभ्यता का एक बन्दरगाह था। यह सिन्धु सभ्यता के विशालतम नगरों में से एक था।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सिन्धु-सभ्यता अत्यधिक विस्तृत थी। **पिगट** के अनुसार सिन्धु-सभ्यता के अन्तर्गत इस विशाल प्रदेश की व्यवस्था व प्रशासन दो राजधानियों, उत्तर में हड़प्पा व दक्षिण में मोहनजोदड़ो, से होता था।

प्र.2. सिन्धु-सभ्यता के इतिहास के स्रोत, उद्भव तथा तिथि का वर्णन कीजिए।

Mention the sources of history, origin and date of Indus Valley Civilisation.

उत्तर

सिन्धु-सभ्यता के स्रोत
(Sources of Indus Valley Civilisation)

दुर्भाग्य से सिन्धु-सभ्यता के विषय में जानने के लिए स्रोतों का अत्यधिक अभाव है। मुद्राओं पर अंकित शब्दों के अतिरिक्त कोई अन्य लिखित सामग्री, जो सिन्धु-सभ्यता पर प्रकाश डाल सकती, उपलब्ध नहीं है और **मुद्राओं पर लिखित भाषा को भी अनवरत प्रयत्नों के उपरान्त भी अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।** ऐसी विषम स्थिति में हमें सिन्धु-सभ्यता के विषय में जानने के लिए पूर्णरूप से उत्खनन के द्वारा निकले नगर, मकान, पत्थर, प्रसाधन सामग्री, कंकाल, बर्तन, मुद्राओं आदि मूल सामग्री पर ही निर्भर होना पड़ता है।

सिन्धु सभ्यता का उद्भव (Origin of Indus Valley Civilisation)

सिन्धु-सभ्यता के निर्माता एवं निवासी कौन थे? यह एक अत्यन्त विवादास्पद विषय है। सिन्धु-सभ्यता के निर्माता भारतीय अर्थात् स्थानीय ही थे अथवा विदेशी, यह निर्धारित करना भी एक दुरूह कार्य है। सिन्धु घाटी में प्राप्त कंकालों से आर्य, आग्नेय, भूमध्यसागरीय द्रविड एवं किरात किसी का भी यहाँ बसना प्रमाणित हो सकता है। अद्यतन शोध-कार्यों के परिणामस्वरूप प्राप्त तथ्यों के आधार पर सुविज्ञ पुरातत्ववेत्ताओं में निम्न चार मत प्रचलित हैं—

1. **मैसोपोटामिया की संस्कृति की देन**—सिन्धु-सभ्यता, मैसोपोटामिया की संस्कृति की देन थी। इस मत का समर्थन करने वालों में प्रमुख विद्वान गार्डन तथा ह्वीलर हैं। किन्तु, इस मत को पूर्णतया स्वीकार करने में अनेक समस्याएँ हैं। मैसोपोटामिया एवं सिन्धु सभ्यता की संस्कृति में अनेक आधारभूत भिन्नताओं के अतिरिक्त **दोनों की लिपि में भी भारी विषमता है।**
2. **बलूची संस्कृति की देन**—इस मत के प्रतिपादकों में प्रमुख फेयरसर्विस हैं। किन्त, निश्चित एवं अकाट्य प्रमाणों के अभाव में इस मत को स्वीकार करने में भी अनेक समस्याएँ हैं।
3. **भारतीय संस्कृति**—श्री अमलानन्द घोष का विचार है कि यह अधिक तर्कसंगत है कि विदेशियों ने नहीं वरन् भारतीयों ने ही, जिनका मस्तिष्क अधिक ग्रहणशील था, सिन्धु-सभ्यता का निर्माण किया था। इसके पश्चात् **प्रो. राव के अनुसार सभ्यता का विकास सिन्धु की स्थानीय संस्कृतियों द्वारा धीरे-धीरे हुआ।** उनके अनुसार सिन्धु-सभ्यता का उद्भव सोथी संस्कृति से प्रतीत होता है। यद्यपि अधिकांश विद्वान इस मत को स्वीकार करने लगे हैं किन्तु उल्लेखनीय है कि सोथी एवं सिन्धु-सभ्यता में पर्याप्त सांस्कृतिक विषमता है।
4. **आर्य-संस्कृति की देन**—कुछ इतिहासकारों जिनमें लक्ष्मणस्वरूप पूसाल्कर एवं रामचन्द्रन प्रमुख हैं, का विचार है कि सिन्धु-सभ्यता आर्यों की ही सभ्यता थी तथा आर्य ही इस सभ्यता के जनक थे। अपने मत के समर्थन में वे आर्य एवं सिन्धु-सभ्यता में समानताओं का उल्लेख करते हैं। **उदाहरणार्थ, नारियों के आभूषणों, वेश-भूषा एवं शृंगार, भोजन, आदि में समानता।** किन्तु उपर्युक्त समानताओं के होते हुए भी सिन्धु-सभ्यता को आर्यों की सभ्यता स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों में समानता की तुलना में विषमताएँ कहीं अधिक हैं।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विभिन्नताओं के कारण इन मतों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। **सिन्धु-सभ्यता के उपलब्ध मानव-कंकालों से प्रतीत होता है कि यहाँ पर विभिन्न प्रजातियों के लोग रहते थे।** आर्यों के आगमन से पूर्व ही यहाँ के निवासियों ने विभिन्न प्रजातियों के सम्पर्क से प्रभावित होकर एक नवीन विकसित सभ्यता का विकास कर लिया। मार्शल का विचार है कि यह सभ्यता आर्यों से भिन्न एवं उच्च कोटि की थी।

सिन्धु-सभ्यता की तिथि (Date of the Indus Valley Civilisation)

सिन्धु-सभ्यता की तिथि निर्धारित करने के लिए कोई भी साहित्य अथवा लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, अत: हमें पूर्णरूपेण उत्खनन से प्राप्त मूक साक्ष्यों पर आधारित होना पड़ता है। तथापि **सिन्धु-सभ्यता की तिथि के विषय में अत्यधिक मतभेद है।** समस्त साक्ष्यों का अध्ययन करने के उपरान्त ह्वीलर ने यह मत प्रतिपादित किया कि सिन्धु-सभ्यता का समय 2500-1500 ई. पू. था। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सांकलिया ने भी इस तिथि को ही अधिक उचित स्वीकार किया है। यद्यपि सिन्धु-सभ्यता की तिथि में मतभेद है, किन्तु **इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक थी।**

प्र.3. सिन्धु-सभ्यता के लोगों के सामाजिक जीवन का वर्णन कीजिए।

Describe the social life of the people of Indus Valley Civilisation.

उत्तर

सामाजिक जीवन
(Social Life)

लिखित साक्ष्यों के अभाव में यद्यपि सामाजिक जीवन के विषय में जानना अत्यधिक दुष्कर कार्य है तथापि उत्खनन से प्राप्त सामग्री एवं स्रोतों से सिन्धु सभ्यताकालीन सामाजिक स्थिति, विशेषकर तत्कालीन खान-पान, वेश-भूषा, आभूषण, प्रसाधन सामग्री, आदि के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। उत्खनन से प्राप्त हुए अत्यन्त विशाल नगरों को देखते हुए डॉ. पूसाल्कर का मानना है कि उस समय की सामाजिक स्थिति अत्यन्त उच्च रही होगी। **तत्कालीन सामाजिक जीवन का वर्णन निम्नवत् है—**

1. **सामाजिक संगठन**—सिन्धु-सभ्यता के स्रोतों से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज वर्ग अथवा वर्गों में विभाजित नहीं था किन्तु अलग-अलग परिवारों में रहने की व्यवस्था थी। गृहों का निर्माण अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया जाता था। **वर्ग अथवा वर्ण में विभाजित न होने पर भी समाज सम्भवतः व्यवसाय के आधार पर चार भागों में विभाजित हो गया था—**
   (i) **विद्वान**—इसमें ज्योतिषी, वैद्य तथा पुरोहित आते थे।
   (ii) **योद्धा एवं प्रशासनिक अधिकारी**—सुरक्षा एवं प्रशासनिक कार्यों में रत अधिकारी इस वर्ग में आते थे।
   (iii) **व्यवसायी**—उद्योगपति एवं व्यापारी।
   (iv) **श्रमजीवी**—किसान, मछुए, मजदूरी करने वाले आदि।
   सिन्धु-सभ्यता के क्षेत्रों से नारी की अनेक मूर्तियों के प्राप्त होने से कुछ इतिहासकारों का विचार है कि सम्भवतः इस सभ्यता के अन्तर्गत समाज **'मातृप्रधान'** (Matriarchal Society) था।
   सिन्धु-सभ्यता के निवासियों का जीवन सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण था। यहाँ के निवासियों के युद्ध-प्रेमी न होने के कारण सम्भवतः ऐसा हुआ होगा। **उत्खनन से प्राप्त हुए तत्कालीन मकानों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः लोगों की आर्थिक स्थिति में बहुत अन्तर नहीं रहा होगा** क्योंकि समस्त मकान लगभग एकसमान हैं।
2. **भोजन**—सिन्धु-सभ्यता के लोगों का मुख्य आहार गेहूँ, जौ, चावल (चाइल्ड के अनुसार), मटर, दूध तथा दूध से निर्मित खाद्यान्न, सब्जियाँ, फलों के अतिरिक्त गाय, भेड, मछली, कछुए, मुर्गे आदि जन्तुओं के मांस का भी सेवन करते थे। वे खजूर भी खाते थे, किन्तु उनका मुख्य आहार गेहूँ ही था।
3. **वेश-भूषा एवं आभूषण**—सिन्धु-सभ्यता के समय का कोई भी कपड़ा उपलब्ध नहीं होता, अतः तत्कालीन वेश-भूषा के विषय में जानने के लिए तत्कालीन मूर्तियों पर आश्रित होना पड़ता है। इनसे ज्ञात होता है कि शरीर पर दो कपड़े धारण किये जाते थे। **प्रथम, एक आधुनिक काल के समान कपड़ा होता था जिसे बायें कन्धे के ऊपर तथा दाहिनी भुजा के नीचे से निकालकर पहनते थे, ताकि दाहिना हाथ कार्य करने के लिए स्वतन्त्र रहे।** दूसरा वस्त्र जो शरीर के नीचे पहना जाता था, आधुनिक धोती के समान होता था। स्त्रियों एवं पुरूषों के वस्त्रों में विशेष अन्तर नहीं होता था। कपड़े, साधारणतया सूती पहने जाते थे, किन्तु ऊनी वस्त्रों का भी प्रचलन था। **कपड़ों को सिलकर पहना जाता था।** नारियों में आकर्षक केश-विन्यास की प्रथा थी।
   सिन्धु-सभ्यता के निवासियों (स्त्री व पुरुष दोनों) को आभूषणों का अत्यधिक शौक था। अँगूठियाँ, कडे, कंगन, कण्ठहार, कुण्डल आदि आभूषण स्त्री व पुरुष दोनों ही धारण करते थे जबकि स्त्रियाँ चूड़ियाँ, कर्णफूल, हँसली, भुजबन्द, करधनी आदि का भी प्रयोग करती थीं। आभूषण सोने, चाँदी, हाथी-दाँत, हीरों आदि से निर्मित किये जाते थे। निर्धन व्यक्ति ताँबे, मिट्टी, सीप आदि के आभूषण पहनते थे। स्वर्ण आभूषणों की मार्शल ने अत्यन्त प्रशंसा की है। उनके अनुसार, **''स्वर्ण आभूषणों की चमक तथा बनावट को देखकर प्रतीत होता है कि ये आधुनिक बॉड स्ट्रीट (लन्दन) के किसी सर्राफ की दुकान से लाये गये हैं न कि पाँच हजार वर्ष पूर्व किसी प्रागैतिहासिक घर से।''**
4. **प्रसाधन सामग्री**—ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक युग के समान सिन्धु-सभ्यताकालीन स्त्रियाँ भी प्रसाधन को अत्यन्त पसन्द करती थीं। इस बात की पुष्टि उत्खनन से प्राप्त सामग्री से होती है। तत्कालीन **स्त्रियाँ दर्पण, कंघी, काजल, सुरमा, सिन्दूर, बालों की पिन, इत्र तथा पाउडर का प्रयोग करती थीं। अत्यन्त उल्लेखनीय बात यह है कि वे लिपस्टिक का प्रयोग भी करती थीं।** दर्पण उस समय काँसे तथा कंघे हाथी-दाँत से बनाये जाते थे। दर्पण साधारणतया अण्डाकार होते थे। काँसे के बने हुए रेजर भी पुरुषों द्वारा प्रयोग में लाये जाते थे। मिट्टी, हाथी-दाँत एवं धातु के शृंगारदान भी बनाये जाते थे।

5. **आमोद-प्रमोद के साधन**—सिन्धु-सभ्यता के निवासियों के आमोद-प्रमोद के प्रमुख साधनों में शिकार खेलना, नाचना, गाना, बजाना तथा मुर्गों की लड़ाई देखना था। **जुआ खेलना भी मनोरंजन के प्रमुख साधनों में से एक था,** विभिन्न प्रकार के पासों का मिलना इस बात की पुष्टि करता है। बच्चों के मनोरंजन के लिए विभिन्न प्रकार के खिलौनों का निर्माण किया जाता था।
6. **औषधियाँ**—कुछ इतिहासकारों का विचार है कि सिन्धु-सभ्यता निवासी विभिन्न औषधियों से परिचित थे तथा हिरण, बारहसिंघे के सींगों, नीम की पत्तियों एवं शिलाजीत का औषधियों की तरह प्रयोग करते थे। उल्लेखनीय है कि सिन्धु-सभ्यता में खोपड़ी की शल्य-चिकित्सा के उदाहरण भी कालीबंगा एवं लोथल से प्राप्त होते हैं।
7. **गृहस्थी के उपकरण**—सिन्धु-घाटी के निवासियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली गृहस्थी सम्बन्धी अनेक वस्तुओं के विषय में उत्खनन से ज्ञान प्राप्त हुआ है। वे लोग घड़े, कलश, थाली, गिलास, चम्मच, मिट्टी के कुल्हड़ तथा कभी-कभी सोने, चाँदी अथवा ताँबे के बने बर्तनों का प्रयोग करते थे। प्रमुखतया मिट्टी के बने बर्तनों का ही प्रयोग किया जाता था जो **लाल, काले, कत्थई** अथवा **पीले** होते थे तथा इनकी पॉलिश अत्यन्त चमकदार होती थी। इसके अतिरिक्त चाकू, छुरी, तकली, सूई, मछली पकड़ने के काँटे, कुल्हाड़ी, इत्यादि भी धातु के बने होते थे।

प्र.4. सिन्धु-सभ्यता के लोगों के सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the cultural life of the people of Indus Valley Civilisation.
***अथवा* सिन्धु-सभ्यता के लोगों के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए।**
***Or* Throw light on the religious life of the people of Indus Valley Civilisation.**

उत्तर

सांस्कृतिक जीवन
(Cultural Life)

सिन्धु सभ्यता के सांस्कृतिक जीवन के दो महत्त्वपूर्ण अंग थे—
I. धार्मिक जीवन II. कला।

I. धार्मिक जीवन (Religious Life)

सिन्धु-सभ्यताकालीन धर्म के विषय में जानने के लिए पूर्णत: पुरातात्विक स्रोतों का ही सहारा लेना पड़ता है। सिन्धु-निवासियों के जीवन में किस देवता की सबसे अधिक मान्यता थी यह भी भली-भाँति ज्ञात नहीं है। **के. एन. शास्त्री** का विचार है कि वैदिक काल के समान सिन्धु-सभ्यता में भी पुरुष देवताओं का अधिक महत्त्व था, किन्तु मार्शल, ह्वीलर एवं मैके आदि विद्वानों के अनुसार तब मातृदेवी की उपासना सर्वाधिक प्रचलित थी। **उस समय के धार्मिक जीवन की निम्नवत् विशेषताएं थीं—**

1. **मातृदेवी की पूजा**—सिन्धु-निवासी मातृदेवी की पूजा करते थे। मातृदेवी की अनेक मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। एक मूर्ति एक अर्द्धनग्न स्त्री को चित्रित करती है जिसके सिर पर टोपी, गले में हार तथा कमर में तगड़ी है। मातृदेवी की कुछ मूर्तियों में उसे आभूषण व कुछ में आभूषणविहीन दिखाया गया है। मातृदेवी की मूर्तियाँ धुएँ से रंगी हुई मिलती हैं। मातृदेवी को **'माता', 'अम्बा', 'काली'** एवं **'कराली'** आदि नामों से जाना जाता था।
2. **शिव-पूजा**—हड़प्पा की खुदाई में ऐसी मूर्ति प्राप्त हुई है जिससे शिव-उपासना के विषय में ज्ञान होता है। **इस मूर्ति के अतिरिक्त हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो से अनेक लिंग मिलना भी इस बात की पुष्टि करता है कि शिव, सिन्धु-सभ्यता निवासियों के एक प्रमुख देवता थे।** ये लिंग पत्थर, मिट्टी तथा सीप के बने हुए हैं व विभिन्न आकारों के हैं। कुछ अत्यन्त छोटे हैं व कुछ चार फुट लम्बे हैं।
3. **योनि पूजा**—सिन्धु प्रदेश में उत्खनन से अनेक छल्ले प्राप्त हुए हैं जो सीप, मिट्टी, पत्थर आदि के बने हुए हैं। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि ये देवियों की योनि के प्रतीक थे, जिनकी पूजा की जाती थी। किन्तु, मैके व कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार समस्त छल्ले योनि के प्रतीक नहीं थे, बल्कि वे स्तम्भों के आधार थे। अत: इस विषय में अभी प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है।
4. **पशु पूजा**—सिन्धु-सभ्यताकालीन अनेक मुद्राओं पर बैल, भैंस आदि पशुओं के चित्र मिलते हैं जिनसे उस समय पशु पूजा किये जाने का अनुमान किया जाता है। **मैके** का विचार है कि ये लोग नाग, कबूतर, बकरा, बैल आदि पशुओं की पूजा करते थे।

TOUCH 'n' PASS

5. **सूर्य पूजा**—कुछ मुद्राओं पर सूर्य के चिह्न स्वास्तिक एवं पहिया प्राप्त होते हैं जिससे अनुमान लगाया जाता है कि सिन्धु-निवासी सूर्य पूजा करते थे।
6. **वृक्ष पूजा**—सिन्धु-सभ्यताकालीन कुछ मुहरों पर पीपल का वृक्ष, देवी अथवा वृक्ष देवता आदि अंकित मिलते हैं जिससे उस समय वृक्ष पूजा किया जाना प्रमाणित होता है। उस समय नीम, खजूर, शीशम, बबूल आदि वृक्षों की भी पूजा की जाती थी, किन्तु सर्वाधिक पवित्र वृक्ष पीपल माना जाता था।
7. **नदी पूजा**—यद्यपि नदी पूजा किये जाने का स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है, किन्तु विशाल स्नानगृहों व स्नानकुण्डों को देखकर इतिहासकारों का विचार है कि उस समय जल पूजा की जाती थी। विशाल स्नानकुण्ड को नदी-देवता का प्रतीक माना जाता था। सम्भवत: पवित्र उत्सवों एवं शुभ मुहूर्तों पर उसमें सामूहिक स्नान करने की प्रथा थी।
8. **अन्य प्रथाएँ**—सिन्धु-सभ्यता के अवशेषों से ज्ञात होता है कि आधुनिक युग के समान वे लोग भी पूजा में धूप व अग्नि का प्रयोग करते थे। पूजा करते समय गाने-बजाने के भी संकेत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ताबीजों के प्राप्त होने से कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि सम्भवत: सिन्धु-निवासी अन्धविश्वासी भी थे।
9. **मृतक संस्कार**—कुछ समय पूर्व तक सिन्धु-सभ्यताकालीन मृतक संस्कारों के विषय में कुछ भी जानकारी उपलब्ध न थी। 1946 ई० में ह्वीलर ने हड़प्पा में खुदाई करके पता लगाया कि उस समय कब्र में मुर्दों को गाड़ने की प्रथा थी। मोहनजोदडो की खुदाई से ज्ञात होता है कि सिन्धु-निवासी धार्मिक विश्वासों के आधार पर तीन प्रकार से मृतक का अन्तिम संस्कार करते थे—
   (i) **पूर्ण समाधि**—इसमें मृतक को अनेक वस्तुओं के साथ भूमि में गाड़कर वहाँ समाधि बनाई जाती थी।
   (ii) **आंशिक समाधि**—इस विधि में पहले मृतक को पशु-पक्षियों का आहार बनने के लिए खुले स्थान पर छोड़ा जाता था तथा बाद में उसकी अस्थियों को पात्र में रखकर भूमि में रखा जाता था।
   (iii) **दाह कर्म**—इस विधि में शव को जलाकर उसकी राख तथा अस्थियों को कलश में रखकर भूमि में गाड़ा जाता था। ऐसे अनेक कलश प्राप्त होने से इतिहासकारों ने अनुमान लगाया है कि उस समय अन्तिम संस्कार की यह विधि ही सर्वाधिक प्रचलित रही होगी।

II. कला (Art)

सिन्धु प्रदेश में खुदाई के द्वारा अनेक मूर्तियाँ, बर्तन, कलश, मुहरें, आभूषण आदि प्राप्त हुए हैं जिनसे तत्कालीन कला एवं ललितकला पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु निवासियों ने कला का प्रयोग सार्वजनिक उपयोग के लिए नहीं किया। **पिगट** के अनुसार, शिल्पाकृतियों का प्रयोग व्यक्तिगत देव-स्थलों में हुआ होगा, सार्वजनिक मन्दिरों में नहीं। कला से सम्बन्धित तथ्यों की अलग-अलग रूपों में व्याख्या निम्नवत् है—

1. **भवन-निर्माण कला**—हड़प्पा व मोहनजोदड़ो में उत्खनन से प्रमाणित हो गया है कि सिन्धु-निवासी भवन-निर्माण कला में दक्ष थे। विशाल अन्नगृह, मकान, सुनियोजित नगर आदि उनकी कला को प्रमाणित करते हैं।
2. **मूर्ति कला**—सिन्धु-निवासी मूर्तियाँ बनाने में कुशल थे। उस समय की धातु, पाषाण एवं मिट्टी की मूर्तियाँ बहुसंख्या में उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। धातु की मूर्तियाँ धातु को गलाकर साँचे में ढालकर बनाई जाती थीं।
   मोहनजोदड़ो में मिट्टी की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं किन्तु यहाँ की उल्लेखनीय मूर्ति काँसे की एक नर्तकी है, जिसमें नर्तकी को कमर पर हाथ रखे त्रिभंगी मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। यह मूर्ति उन्नत मूर्ति कला का ठोस प्रमाण है। **डॉ. त्रिपाठी** ने इस मूर्ति की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह मूर्ति ऐतिहासिक काल की किसी भी मूर्ति से अधिक उत्कृष्ट है। इनके अतिरिक्त हड़प्पा से प्राप्त लाल पत्थर की मूर्तियाँ भी उच्च श्रेणी की हैं।
3. **धातु कला**—सिन्धु निवासी धातु की मूर्तियों के अतिरिक्त अत्यन्त सुन्दर आभूषणों का निर्माण करते थे। यह आभूषण सोने, चाँदी, ताँबे आदि के होते थे। वे धातुओं के बर्तनों पर नक्काशी भी करते थे।
4. **चित्र कला**—सिन्धु-सभ्यता के निवासियों को चित्र कला का भी ज्ञान था जिसकी पुष्टि प्राप्त बर्तनों एवं मुहरों पर चित्रित चित्रों से होती है। बर्तनों, सार्वजनिक भवनों एवं गृहों की दीवारों पर चित्रकारी की जाती थी। चित्रों में प्राकृतिक दृश्य एवं जीव-जन्तुओं दोनों के ही उदाहरण मिलते हैं। रंगों का प्रयोग भी चित्र कला में किया जाता था।

5. **संगीत एवं नृत्य कला**—सिन्धु-सभ्यता से सम्बन्धित प्रदेशों में उत्खनन से इस बात के अनेक प्रमाण मिले हैं कि वे लोग संगीत एवं कला से परिचित थे। संगीत-सम्बन्धी अनेक उपकरण (तबला, ढोल इत्यादि) भी खुदाई से प्राप्त हुए हैं। नृत्य की मुद्रा में स्त्री की धातु की मूर्ति इस बात की परिचायक है कि वे नृत्य कला में रुचि रखते थे।
6. **ताम्रपत्र निर्माण कला**—सिन्धु-सभ्यताकालीन अनेक ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं जो आकार में वर्गाकार हैं। इनके एक ओर मनुष्य व पशुओं की आकृति अंकित हैं तथा दूसरी ओर लेख हैं।
7. **मुहर निर्माण-कला**—सिन्धु प्रदेश के उत्खनन के परिणामस्वरूप लगभग 550 मुहरें प्राप्त हुई हैं जो मिट्टी एवं विविध प्रकार के पत्थरों से निर्मित हैं। मुहरों का आकार मुख्यतया गोलाकार है। मुद्राएँ वर्गाकार भी मिलती हैं। अधिकांश मुद्राओं पर लेख व पशु की आकृति अंकित है।

अभी तक सिन्धु-लिपि एक पहेली ही बनी हुई है यद्यपि इसको पढ़ने के लिए अनवरत प्रयत्न जारी हैं। विद्वानों का विचार है कि यह लिपि भावचित्रक (Indegraphic) है। इसमें प्रत्येक चिह्न एक शब्द का द्योतक है। इस प्रकार की लिपि में अक्षरसूचक एक चिह्न एक अक्षर का द्योतक होता है।

सिन्धु-लिपि के लिखने की दिशा के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान उसे बायें से दायें अर्थात् ब्राह्मी की तरह तथा कुछ खरोष्ठी के समान दायें से बायें लिखी हुई बताते हैं। **डॉ. लाल** का, जिन्होंने कुछ समय पूर्व ही इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया था, विचार है कि यह खरोष्ठी के समान दायें से बायें लिखी जाती थी।

प्र.5. सिन्धु-सभ्यता के लोगों के आर्थिक जीवन का वर्णन कीजिए।
Describe the economic life of the Indus Valley People.

उत्तर

आर्थिक जीवन
(Economic Life)

उत्खनन द्वारा प्राप्त किये गये भग्नावशेषों से ज्ञात होता है कि सिन्धु-सभ्यता के निवासियों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। यद्यपि समृद्धि प्राप्त करने हेतु उन्होंने विभिन्न साधनों का प्रयोग किया था, किन्तु कृषि ही सर्वप्रमुख साधन प्रतीत होता है। तत्कालीन आर्थिक जीवन का वर्णन निम्नवत् है—

1. **कृषि**—सिन्धु-सभ्यता के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। गेहूँ, जौ, कपास, मटर, तिल तथा सम्भवत: चावल एवं अनेक फल (खजूर, तरबूज आदि) उगाये जाते थे। अनाज को रखने के लिए विशाल अन्न भण्डार होते थे जिनके बाहर ही अन्न पीसने की व्यवस्था होती थी।
2. **पशुपालन**—कृषि के अतिरिक्त सिन्धु-सभ्यता के निवासी पशुओं को भी पालते थे। पुरातात्विक स्रोतों से ज्ञात होता है कि वे गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता आदि पालते थे। ऊँट के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं, किन्तु ऊँट पालना सम्भवत: अधिक लोकप्रिय न था। अश्व से सम्भवत: वे लोग परिचित न थे।
3. **कपड़े बुनना**—सिन्धु निवासी सम्भवत: विश्व के सूत कातने तथा कपड़े बुनने वाले प्रथम लोग थे। उन्हें कपड़े रँगने का भी ज्ञान था। सूती तथा गरम दोनों प्रकार के कपड़े तैयार किये जाते थे।
4. **उद्योग एवं अन्य व्यवसाय**—सिन्धु निवासी शिल्पकला में अत्यन्त दक्ष थे। मिट्टी के असंख्य बर्तन खुदाई से प्राप्त हुए हैं जो अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक हैं। कुम्हार पहले चाक द्वारा उन्हें बनाते थे तत्पश्चात् उन पर चित्रकारी करके भट्टी में पकाया जाता था। इन बर्तनों पर अत्यधिक चमक होती थी। मिट्टी की बनी हुई मूर्तियाँ एवं खिलौने आदि भी प्राप्त होते हैं। सिन्धु-सभ्यता में धातुओं के भी सुन्दर आभूषण बनाये जाते थे। धातुओं के अतिरिक्त सीप, शंख, हाथी दाँत आदि के भी आभूषण बनते थे। खुदाई में तराजू भी प्राप्त हुई तथा अनेक बाट भी मिले हैं। सबसे छोटा बाट 13.64 ग्राम का है। सीप का बना हुआ एक स्केल भी प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर विद्वानों का मत है कि स्केल की लम्बाई 13.2 इंच होती थी।
5. **व्यापार**—सिन्धु-निवासियों के विदेशों से भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। **विदेशों से सम्पर्क थल एवं जल दोनों ही मार्गों से था।** थल पर बैलगाड़ियों एवं जल में जहाजों का प्रयोग किया जाता था। विद्वानों का विचार है कि सिन्धु-निवासी सोना, चाँदी, सीसा, ताँबा आदि आयात करते थे। **पिगट** के अनुसार सम्भवत: दासों का व्यापार भी होता था। सिन्धु निवासी विदेशों को निर्यात कौन-सी वस्तुएँ करते थे, यह निश्चित करना अत्यन्त कठिन है।

सिन्धु-सभ्यता के विभिन्न स्थानों से प्राप्त वस्तुओं की साम्यता को देखकर प्रतीत होता है कि आर्थिक क्षेत्र में सुसंगठित शासन तन्त्र का नियन्त्रण रहा होगा। पिगट का विचार है कि केवल शासकीय नियन्त्रण से इतनी समरूपता नहीं आ सकती,

शासकीय नियन्त्रण के अतिरिक्त वाणिज्यिक संहिता एवं वस्तुओं के मानकीकरण की कोई व्यवस्था भी उस समय अवश्य विद्यमान रही होगी।

प्र.6. सिन्धु-घाटी के निवासियों की नगर-योजना एवं वास्तु-कला के बारे में आप क्या समझते हैं?
What do you know about town planning and art of building of Indus Valley People.

उत्तर

नगर-योजना एवं वास्तु-कला
(Town Planning and Art of Building)

तत्कालीन नगर-योजना एवं वास्तु-कला से सम्बन्धित वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **नगर-योजना**—सिन्धु-सभ्यता की प्रमुख विशेषता अत्यन्त सुनियोजित नगरों का निर्माण किया जाना है। मोहनजोदडो के खण्डहरों को देखकर देखने वाला व्यक्ति प्राचीन नगरों के आयोजन की कारीगरी एवं सफाई के प्रबन्ध से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। **मैके** का विचार है कि **"उन अवशेषों को देखकर व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वे लंकाशायर (इंग्लैण्ड का एक प्रान्त) के किसी आधुनिक नगर के अवशेष हैं।"**
सिन्धु-सभ्यता के नगर नदियों के मुहानों पर बसाये गये थे। हड़प्पा, रावी तथा मोहनजोदड़ो सिन्धु नदी के किनारे स्थित थे। इन नदियों से नगर की सुरक्षा करने के लिए बाँधों का निर्माण भी कराया गया था। नगरों के अवशेषों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो ये नगर कुशल इंजीनियरों द्वारा योजनाबद्ध तरीके से बनाये गये हों। सड़कें प्रमुखतया कच्ची थीं। **केवल एक ऐसा उदाहरण मिलता है जिसमें सड़क को पक्का करने का प्रयत्न किया गया प्रतीत होता है।** कच्ची सड़कें होने के पश्चात् भी सफाई का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। सड़क के किनारे वृक्षारोपण भी किया जाता था। कहीं-कहीं पर सड़कों के किनारे चबूतरे बने हुए हैं जहाँ सम्भवत: दुकानें लगती थीं।
सड़क के किनारे नालियाँ होती थीं जो पक्की एवं ढकी हुई थीं। **प्रत्येक गली में भी ढकी हुई नाली होती थी जो सड़क की नाली से मिलती थी।** इन नालियों के द्वारा गन्दा पानी नगर के बाहर पहुँचाया जाता था। पक्की नालियों को बनाने में पत्थर, ईंटों एवं चूने का प्रयोग किया जाता था। इन नालियों में थोड़ी दूर पर शोषण-कूप (Soak pits) भी थे ताकि कूड़े से पानी का बहाव रुक न सके। इस नगरीय सरकार के प्राधिकार अवश्य ही इतने सुदृढ़ होंगे कि यह नगर आयोजन के उपनियमों का पालन करवा सके।
2. **भवन-निर्माण**—नगर-निर्माण के समान सिन्धु सभ्यता निवासी भवन निर्माण कला में भी दक्ष थे। इसकी पुष्टि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो आदि से प्राप्त भग्नावशेषों से होती है। इनके द्वारा निर्मित मकानों में सुख-सुविधा की पूर्ण व्यवस्था थी। भवनों का निर्माण भी सुनियोजित ढंग से किया जाता था। **भवन-निर्माण को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—**
   (i) **साधारण भवन**—साधारण लोगों के रहने के मकानों का निर्माण सड़क के दोनों ओर किया जाता था। इन मकानों का आकार आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा होता था। कुछ मकान कच्चे व कुछ पक्के बनाये जाते थे। **हवा व प्रकाश का मकानों को बनाते समय पूर्ण ध्यान रखा जाता था।** खुदाई में कुछ भवन ऐसे मिले हैं जिनमें मात्र दो कमरे हैं जबकि कुछ में अनेक कमरे हैं। मकान एक से अधिक मंजिल के भी होते थे। ऊपर की मंजिल पर जाने के लिए पत्थरों की सीढ़ियाँ होती थीं। मकानों में दरवाजे, खिड़कियाँ एवं रोशनदान, रसोईघर, स्नानगृह व आँगन भी होता था। खिड़कियाँ एवं दरवाजे गली में खुलते थे। **मुख्य सड़क की ओर दरवाजे व खिड़कियाँ न होने का कारण सम्भवत: धूल को मकान में आने से रोकना था।** दरवाजे दीवार की समाप्ति के स्थान पर होते थे बीच में नहीं। दरवाजे व छत लकड़ी के बने होते थे। दीवार बहुत मोटी बनायी जाती थी। इसका कारण सम्भवत: कमरों को ठण्डा रखना था। मकान का फर्श ईंटों, खड़िया, मिट्टी और गारे से बनाया जाता था। दीवारें ईंटों की बनी होती थीं। **मोहनजोदड़ो में कुछ घरों में कुएँ भी मिले हैं, किन्तु हड़प्पा में एक भी कुआँ नहीं मिलता।** स्नानागार सुन्दर ढंग से बनाये जाते थे। उनका फर्श पक्की ईंटों से कुशलतापूर्वक बनाया जाता था।
   (ii) **सार्वजनिक एवं राजकीय भवन**—सिन्धु-सभ्यता सम्बन्धी प्रदेशों के उत्खनन के परिणामस्वरूप यह तथ्य प्रकाश में आया है कि साधारण मकानों के अतिरिक्त यहाँ पर राजकीय एवं सार्वजनिक भवन भी थे। मोहनजोदड़ो में एक गढ़ी थी जिसका निर्माण कृत्रिम पहाड़ी पर किया गया था। नदी की बाढ़ से रक्षा करने के लिए इसके चारों ओर एक ऊँचा बाँध था। इनमें अनेक मीनारें थीं। गढ़ी के अन्दर ऊँचे चबूतरे पर सुन्दर भवनों का निर्माण किया गया था। इसमें अनेक मीनारें थीं।

(iii) **अन्न भण्डार गृह**—हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो में कुछ अन्य विशाल भवन मिले हैं जिन्हें पुरातत्ववेत्ता अन्न भण्डार गृह मानते हैं। मोहनजोदड़ो में सार्वजनिक भोजनालयों के अवशेष भी प्राप्त होते हैं।

3. **सार्वजनिक स्नानागार**—मोहनजोदड़ो में उत्खनन से एक विशाल स्नानागार के विषय में भी पता चला है। इस स्नानागार का भवन अत्यन्त भव्य है, जिसके कारण **कार्लेटन** ने इसकी तुलना समुद्र के किनारे स्थित किसी आधुनिक होटल से की है। स्नानकुण्ड के पानी को बाहर निकालने की भी समुचित व्यवस्था की गयी थी। **इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समय-समय पर जलाशय की सफाई की जाती होगी। जलाशय के निकट ही एक कुआँ है जिससे जलाशय में पानी भरा जाता होगा।** इतिहासकारों का अनुमान है कि यह जलाशय सम्भवत: धार्मिक महत्त्व रखता था तथा पवित्र पर्वों पर लोग इसमें स्नान करते थे। इस स्नानागार के निर्माण के लिए तत्कालीन अभियन्ता निश्चित रूप से बधाई के योग्य हैं जिन्होंने इतना सुदृढ़ जलाशय बनाया कि लगभग पाँच हजार वर्षों के उपरान्त भी उसका अस्तित्व विद्यमान है।

प्र.7. वैदिककालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
Describe the social condition during Vedic Age.

उत्तर

वैदिककालीन सामाजिक स्थिति
(Social Condition during Vedic Age)

ऋग्वेद से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था (Social Organization) पर व्यापक प्रकाश पड़ता है, जिसका वर्णन निम्नवत् है—

1. **पारिवारिक जीवन**—आर्यों के समाज की आधारभूत इकाई परिवार थी। वैदिककालीन परिवार पितृसत्तात्मक (Patriarchal) था अर्थात् किसी भी परिवार का मुखिया उस परिवार का सर्वाधिक आयु वाला पुरुष होता था। वह पितामह, पिता, चाचा, बड़ा पुत्र में से कोई भी हो सकता था। परिवार के मुखिया का सम्पूर्ण परिवार पर पूर्ण अधिकार होता था तथा अन्य सदस्यों को उसकी आज्ञा का पालन करना आवश्यक था। **तत्कालीन समाज में जन व धन की सुरक्षा के लिए सामूहिक परिवार** (Joint Family) **की व्यवस्था परम आवश्यक थी। परिवार में गृह-पत्नी का विशिष्ट महत्त्व एवं आदर था।** गृह-पत्नी पर घरेलू कार्यों का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व होता था। पुत्र न होने पर गोद लेने की प्रथा का भी प्रचलन था। परिवार में कभी-कभी सास (Mother-in-law) के रहने का भी उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। अतिथि का अत्यधिक आदर-सत्कार करने की प्रथा थी।
2. **मनोरंजन**—जीवन के प्रति आर्यों का स्वस्थ एवं आशावादी दृष्टिकोण था। वे जीवन को अधिक-से-अधिक सुखद तरीके से व्यतीत करना चाहते थे। मनोरंजन के प्रमुख साधन संगीत, नृत्य, जुआ, शिकार, रथ-दौड़ तथा द्यूत (dicing) थे। संगीत के वैदिककालीन लोग विशेष रूप से प्रेमी थे।
3. **भोजन**—वैदिककालीन व्यक्तियों के भोजन में दूध का विशेष महत्त्व था। दूध तथा उससे बनने वाली अन्य वस्तुओं (घी, पनीर) का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता था। अनाज को पीसकर उसमें घी अथवा मक्खन मिलाकर केक की तरह प्रयोग में लाया जाता था। सब्जियों एवं फलों को भी खाया जाता था। भोजन मात्र शाकाहारी ही नहीं मांसाहारी भी होता था। प्राय: भेड़, बकरी व बैल का गोश्त भूनकर ही लोग खाते थे। गाय को पवित्र मानकर उसका गोश्त नहीं खाया जाता था। ऋग्वेद में यद्यपि मदिरा-पान को 'अधार्मिकता एवं अपराध-प्रेरक' (Leading people to crime and godlessness) बताया गया है, परन्तु मदिरा-पान का अत्यधिक प्रचलन था।
4. **वेश-भूषा एवं प्रसाधन**—वैदिककालीन आर्यों की वेश-भूषा साधारण थी। आर्य सूती, ऊनी व रंग-बिरंगे कपड़े पहनते थे। मृगछाल का भी प्रयोग किया जाता था। आर्यों की पोशाक में प्रारम्भ में प्रमुख दो वस्त्र होते थे। **'वास'** (Vasa) **जो शरीर के नीचे के भाग पर पहना जाता था, दूसरे शब्दों में वास की एक प्रकार से धोती से तुलना की जा सकती है।** दूसरा वस्त्र 'अधिवास' (Adhivasa) होता था जो शरीर के ऊपरी भाग पर पहना जाता था। बाद में एक अन्य वस्त्र 'नीवी' (Nivi) का भी प्रयोग होने लगा था। नीवी को 'वास' के नीचे पहनते थे। विवाह के अवसर पर वधू एक विशेष वस्त्र धारण करती थी जिसे 'वधूय' (Vadhuya) कहते थे। आभूषण स्त्री व पुरुष समान रूप से धारण करते थे।
5. **औषधियों का ज्ञान**—ऋग्वेद में चिकित्सकों का भी उल्लेख मिलता है जिन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ऋग्वेद में प्रमुख बीमारी का नाम यक्ष्मा (Yakshma) बताया गया है। जड़ी-बूटियों का ही प्रमुखतया औषधियों के रूप में प्रयोग किया जाता था। शल्य-चिकित्सा (Surgery) का भी ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है।
6. **शिक्षा**—ऋग्वेद में उपनयन-संस्कार का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता यद्यपि इस संस्कार का उत्तर-वैदिक काल में अत्यधिक महत्त्व था। विद्यार्थियों को गुरु के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाता था। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य

धार्मिक एवं साहित्यिक शिक्षा प्रदान करना था जिसके द्वारा आर्य-संस्कृति का प्रचार हो सके। ऋग्वैदिक काल में लोगों को लिखने का ज्ञान था अथवा नहीं, यह सन्देहास्पद है। अधिकांश विद्वानों का मत है **कि ऋग्वैदिक लोगों को लिखने** (writing) **का ज्ञान नहीं था।**

7. **जाति-प्रथा**—वैदिककालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था का अस्तित्व था अथवा नहीं, इसमें विद्वानों में परस्पर मतभेद है। परन्तु ऋग्वेद में कहीं भी वैश्य एवं शूद्र शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। जहाँ तक ब्राह्मण एवं क्षत्रिय शब्दों का प्रश्न है सम्भवत: इसका तात्पर्य मात्र यह था कि जो युद्धों में भाग लेते थे, उन्हें क्षत्रिय व पूजा-पाठ में लीन रहने वाले लोगों को ब्राह्मण कहा गया। **अत: यदि यह मान भी लें कि ऋग्वैदिक-काल में जाति-प्रथा थी तो निश्चित रूप से यह जन्म पर नहीं वरन् कर्म पर आधारित थी।**
8. **विवाह एवं स्त्रियों की दशा**—वैदिककालीन युग में बाल-विवाह का प्रचलन नहीं था। तत्कालीन समाज में बहन व भाई, पिता एवं पुत्री, तथा माँ व पुत्र का परस्पर विवाह निषेध था। ऋग्वेद में एक स्थान पर वर्णित है कि यमी अपने भाई यम से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहती है तो यम निम्न शब्दों में उसे समझाता है—**"यमी, तुम किसी अन्य पुरुष का आलिंगन करो। जैसे लता वृक्ष का वेष्ठन करती है उसी प्रकार अन्य पुरुष तुम्हें आलिंगन करे। उसी के मन का तुम हरण करो, इसी में मंगल होगा।"**

वैदिककालीन समाज में विवाह एक धार्मिक एवं पवित्र कार्य समझा जाता था। विवाह के बिना जीवन अपूर्ण माना जाता था। यज्ञ के समय पति एवं पत्नी दोनों का उपस्थित होना आवश्यक था। लड़कों व लड़कियों को अपने लिए पत्नी अथवा पति चुनने की पूर्ण अनुमति थी। यद्यपि वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान सम्माननीय था, तथापि वे अपने पति पर आजीवन आश्रित रहती थीं तथा कन्या का जन्म अशुभ माना जाता था। उस समय पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती थी। पितृ-प्रधान समाज में ऐसा होना स्वाभाविक ही है क्योंकि पुत्र ही पिता का दाह संस्कार करता है तथा वही परिवार की वंश-परम्परा को जीवित रखता है।

प्र.8. वैदिककालीन राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
Describe the political condition during Vedic Period.

उत्तर

वैदिककालीन राजनीतिक स्थिति
(Political Condition during Vedic Period)

ऋग्वेद से तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से तत्कालीन व्यवस्था निम्नलिखित भागों में विभाजित थी—

1. **कुटुम्ब**—वैदिककालीन राजनीतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई 'कुटुम्ब' थी। कुटुम्ब में संयुक्त परिवार (Joint Family) की प्रथा थी तथा परिवार का सबसे अधिक आयु वाला पुरुष सदस्य कुटुम्ब का प्रधान होता था। कुटुम्ब के समस्त सदस्यों द्वारा प्रधान की आज्ञा मानना परम आवश्यक था।
2. **ग्राम**—अनेक कुटुम्बों के समूह को **ग्राम** कहा जाता था। जिस प्रकार प्रत्येक कुटुम्ब का एक **'प्रधान'** होता था जो अपने कुटुम्ब की देखभाल करता था, उसी प्रकार प्रत्येक ग्राम का एक अधिकारी होता था जिसे **ग्रामीण** कहते थे। ग्रामीण का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता था क्योंकि वह 'ग्राम' का एकमात्र प्रशासनिक अधिकारी होता था। ग्रामीण का चुनाव अथवा नियुक्ति किस प्रकार होती थी, इस विषय में ऋग्वेद मौन है।
3. **विश**—अनेक ग्रामों के समुदाय को 'विश' कहते थे, जिसके अधिकारी को 'विशपति' कहा जाता था।
4. **जन**—अनेक विश मिलकर 'जन' की रचना करते थे। जन के प्रधान अधिकारी को 'गोप' कहते थे। गोप का तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पद था। गोप प्राय: राजा ही हुआ करते थे।
5. **राष्ट्र**—देश अथवा राज्य को राष्ट्र कहते थे। राष्ट्र से संघात्मक सरकार का आभास होता है।
6. **शासन व्यवस्था**—वैदिक काल में शासन व्यवस्था प्रमुखतया राजतन्त्रात्मक (Monarchial) थी, जिसका अध्यक्ष राजा होता था। ऋग्वेद में गणों (Republics) का भी उल्लेख है, किन्तु राजतन्त्रों की ही संख्या अधिक थी। तत्कालीन शासन व्यवस्था का स्वरूप निम्नवत् था—
   (i) **राजा**—राज्य का प्रमुख अधिकारी राजा होता था जिसका पद वंशानुगत था। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि कभी-कभी राजवंश में से ही किसी भी व्यक्ति को चुनकर राजा बनाया जाता था। ऋग्वेद में राजा के कार्यों का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि राजा का सबसे पवित्र एवं सम्माननीय कार्य शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करना था। जनता भी इसके बदले में राजा के प्रति भक्तिभाव रखती थी तथा राजा को कर देती थी, जिसे

बलिहित (Balihrit) कहते थे। राजा निरंकुश न थे तथा राज्याभिषेक के समय प्रजा के हित में ही कार्य करने की उसे शपथ लेनी पड़ती थी।

राजा को प्रशासनिक कार्यों में सहायता करने के लिए अनेक पदाधिकारी होते थे, जिनमें प्रमुख पुरोहित एवं सेनानी थे।

(ii) **पुरोहित व सेनानी**—वैदिककलीन राज्य अत्यन्त छोटे-छोटे थे; अत: कुछ ही कर्मचारियों से प्रशासन कार्य चल जाता था। इन अधिकारियों में 'पुरोहित' एवं 'सेनानी' का अत्यन्त महत्त्व था। पुरोहित एक शिक्षक, पथ-प्रदर्शक, दार्शनिक एवं मित्र के रूप में राजा का मुख्य साथी होता था। राज-परिवार के समस्त धार्मिक कार्यकलाप करने के साथ-साथ पुरोहित राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेता था। युद्ध में भी वह राजा के साथ जाता था तथा उसकी रक्षा व विजय के लिए स्तुति करता था। **कीथ** के अनुसार, "**वैदिककालीन पुरोहित उन ब्राह्मण राजनीतिज्ञों का अग्रगामी है जिन्होंने समय-समय पर भारतवर्ष में प्रशासन में आश्चर्यजनक कार्यकुशलता का परिचय दिया।**" पुरोहित तत्कालीन प्रशासनिक-व्यवस्था का एक आवश्यक अंग था।

सेनानी, सेना का सबसे बड़ा अधिकारी होता था। राजाओं के निरन्तर युद्धों में रत रहने के कारण सेनानी का अत्यधिक महत्त्व होता था। **अत: सेनानी को सदैव राजा ही नियुक्त करता था।** सेनानी का प्रमुख कार्य अन्य राज्यों पर आक्रमण करना व अपने राज्य पर आक्रमणों का सामना कर राज्य की रक्षा करना था।

(iii) **सभा एवं समिति**—वैदिककालीन राजाओं की स्वेच्छाचारिता पर प्रतिबन्ध लगाने वाली दो संस्थाएँ, सभा एवं समिति थीं। वेदों में सभा एवं समिति को प्रजापति की कन्या कहा गया है। ऋग्वेद में दुर्भाग्यवश इन संस्थाओं के कार्यों एवं अधिकारों को स्पष्ट नहीं किया गया है। अत: सभा एवं समिति में अन्तर व उनके कार्यों के विषय में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु सभा एवं समिति का पारस्परिक सम्बन्ध कुछ भी रहा हो, किन्तु यह निश्चित है कि इन संस्थाओं को व्यापक अधिकार प्राप्त थे तथा इनके होते हुए राजा मनमानी नहीं कर सकता था।

7. **न्याय व्यवस्था**—ऋग्वेद से तत्कालीन न्याय व्यवस्था के विषय में अत्यन्त अल्प जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में कानून के लिए 'धर्मन्' शब्द का प्रयोग मिलता है। न्याय-व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा ही होता था तथा उसकी सहायतार्थ पुरोहित होता था। ग्राम के न्यायाधीश को ग्राम्यवादिन कहते थे। **ऋग्वेद में प्रमुखतया चोरी, धोखेबाजी, डकैती, जानवरों को चुराना व सेंध लगाने जैसे अपराधों का उल्लेख मिलता है।** न्याय की दिव्य-प्रणाली (Trial by Ordeal) अत्यधिक प्रचलित थी जिसमें गर्म कुल्हाड़ी, अग्नि तथा जल का प्रयोग किया जाता था। अपराधों के लिए कठोर दण्ड दिया जाता था। ऋण न चुकाने पर ऋणी व्यक्ति को, जिस व्यक्ति से धन लिया था. उसकी दासता करनी पड़ती थी।

प्र.9. उत्तर वैदिककालीन सामाजिक जीवन का वर्णन कीजिए।
Describe the social life during Later Vedic Period.

उत्तर उत्तर वैदिककालीन साहित्य से तत्कालीन सामाजिक दशा पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। अध्ययन की सुविधा के लिए उत्तर वैदिककालीन सामाजिक दशा को निम्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **पारिवारिक जीवन**—उत्तर वैदिककालीन समाज भी पितृ-प्रधान (Patriarchal Society) था तथा संयुक्त परिवार (Joint Family) की प्रथा थी। परिवार के सभी सदस्य परिवार के प्रधान पुरुष का आदर करते थे तथा उसकी आज्ञा का पालन करते थे। कभी-कभी परिवार अत्यन्त विशाल होता था जिसमें दादा तथा पौत्रों के अतिरिक्त पत्नी का भाई, भांजा एवं सास भी होते थे।
2. **मनोरंजन**—उत्तर वैदिककालीन लोगों के मनोरंजन के प्रमुख साधन नृत्य एवं संगीत थे। गायन एवं वाद्य दोनों ही प्रकार के संगीत का प्रचलन था। प्रमुख वाद्य, जिन्हें तत्कालीन लोग बजाते थे, ढोल, बाँसुरी इत्यादि थे। संगीत के अतिरिक्त रथ-दौड़ भी अत्यन्त लोकप्रिय थी। पासों के द्वारा जुआ खेलने के भी उल्लेख मिलते हैं।
3. **भोजन व पेय**—दूध, दही, घी, चावल, जौ, गेहूँ, बीन एवं सरसों के बीज का खाने में व्यापक रूप से प्रयोग होता था। उत्तरवैदिक काल में भी ऋग्वैदिक काल के समान मांस खाया जाता था। मांस विशेष रूप से उत्सवों एवं त्योहारों पर अवश्य खाया जाता था। सुरा का भी उत्तर वैदिक काल में प्रयोग होता था।
4. **वेश-भूषा एवं प्रसाधन**—उत्तरवैदिक काल में जो कपड़े पहने जाते थे उन्हें 'नीवी' (under-garment), 'वास' (lower garment) एवं 'अधिवास' (upper garment) कहते थे। ऊनी कपड़ों को भी लोग पहनते थे। पगड़ी स्त्री व

पुरुष दोनों ही लगाते थे। स्त्री व पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। आभूषण सोने एवं चाँदी के बने हुए होते थे। विभिन्न तरीकों से बालों को भी काढ़ा जाता था। अन्य शृंगार-प्रसाधनों का भी तत्कालीन लोग प्रयोग करते थे।

5. **शिक्षा**—उत्तरवैदिक काल में शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन हुए। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को सुखमय बनाना था। इस युग की शिक्षा मात्र पुस्तकीय नहीं थी वरन् वह भावी जीवन में संघर्ष का सामना करने के लिए व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती थी। आध्यात्मिक एवं सांसारिक क्षेत्र में सफलता में प्राप्त करना ही सम्भवत: शिक्षा का प्रमुख ध्येय था। उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्यार्थी को गुरु के आश्रम भेजा जाता था जहाँ गुरु व शिष्य के मध्य सीधा सम्पर्क रहता था। गुरु विद्यार्थी को वेद, उपनिषद्, व्याकरण के अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देता था।
6. **जाति-प्रथा**—पूर्व वैदिक काल में आर्यों के विस्तार के बाद ज्यों-ज्यों उनके उपनिवेशों और राज्यों में स्थिरता आने लगी त्यों-त्यों उनका सामाजिक जीवन भी स्थिर होने लगा। ऋग्वैदिक काल में वर्ण मुख्यत: कार्य अथवा रंग पर आधारित थे, किन्तु उत्तर वैदिक काल में वर्ण जन्म पर आधारित होकर पैतृक हो गया। **इस प्रकार जो धर्म की व्यवस्था जानते थे, ब्राह्मण कहलाये।** इसी प्रकार युद्ध में रत रहने वाले व राजनीति में अधिकार रखने वाले, **क्षत्रिय** तथा शेष सारी जनता **वैश्य** कहलायी जिसमें व्यापारी एवं कृषक थे। इस व्यवस्था का निम्नतम वर्ग 'शूद्र' था जो अनार्य थे तथा उनका काम शेष तीनों वर्णों की सेवा करना था। इस प्रकार की व्यवस्था में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का स्थान वैश्य व शूद्रों से बहुत ऊँचा था।
7. **आश्रम व्यवस्था**—वर्ण के साथ-साथ इस युग में आश्रम व्यवस्था का भी प्रादुर्भाव हुआ। आश्रम का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत सुधारों एवं संस्कारों से था। **मनीषी आर्यों ने जीवन को निम्नवत् चार आश्रमों में विभाजित कर दिया था—**
   (i) **ब्रह्मचर्य आश्रम**—इसमें मनुष्य कठोर नियमों का पालन करते हुए विद्या एवं ज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरु की शरण में 25 वर्ष की आयु तक रहता था।
   (ii) **गृहस्थ आश्रम**—ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् मनुष्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था तथा सामाजिक एवं धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन करता था। इस आश्रम में भी मनुष्य 25 वर्ष तक रहता था।
   (iii) **वानप्रस्थ आश्रम**—इस आश्रम के अन्तर्गत मनुष्य गृहस्थी से स्वयं को अलग कर त्याग एवं तपस्या का जीवन व्यतीत करता था।
   (iv) **संन्यास आश्रम**—इस आश्रम में मनुष्य समस्त सांसारिक बन्धनों का त्याग कर ब्रह्मचिन्तन करते हुए मुक्ति की तैयारी करता था।
8. **विवाह एवं स्त्रियों की दशा**—उत्तर वैदिक काल में विवाह एक पवित्र कार्य माना जाता था। **विवाह के विभिन्न तरीकों (आठ प्रकार के विवाह) का उत्तर वैदिक काल तक प्रचलन नहीं हुआ था** तथा विवाह यौवन प्राप्ति के पश्चात् ही किया जाता था। बाल-विवाहों का प्रचलन नहीं था। बहुविवाह (Polygamy) का इस काल में प्रचलन था, परन्तु यह प्रथा मुख्यतया राज परिवारों तक ही सीमित थी। विवाह में पुत्री के पिता द्वारा दहेज दिया जाता था। विधवा विवाह के भी उत्तर वैदिक काल में उल्लेख मिलते हैं। यद्यपि अन्तर्जातीय विवाह भी उत्तर वैदिक काल में होते थे, परन्तु मुख्यत: विवाह सजातीय ही होते थे। सती-प्रथा इस युग में प्रचलित नहीं थी।

स्त्रियों की दशा में इस युग में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। **स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी।** अब उनका ऋग्वैदिक काल के समान सम्मान न रहा। स्त्रियों को जुआ एवं सुरा की श्रेणी में रखा जाने लगा।

प्र.10. उत्तर वैदिककालीन धार्मिक और राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
Describe the religious and political conditions during later vedic period.

उत्तर

उत्तर वैदिककालीन धार्मिक स्थिति
(Religious Condition during Later Vedic Period)

उत्तर वैदिक काल की धार्मिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुआ। इस युग में धार्मिक व्यवस्था भी अत्यन्त जटिल हो गयी थी। निम्नवत् तथ्यों से यह व्यवस्था और स्पष्ट होती है—

1. **यज्ञ**—ऋग्वैदिक काल में धार्मिक जीवन अत्यन्त सरल था, किन्तु इस युग की धार्मिक स्थिति में परिवर्तन हुआ व लोगों ने अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए देवताओं को मन्त्रों से अपने वशीभूत करना चाहा, अत: वैदिक मन्त्रों के महत्त्व में भारी वृद्धि हुई। **राजबलि पाण्डेय** ने इस काल को **'वेदवाद का युग'** कहा है। वेदवाद के साथ-साथ कर्मकाण्ड का भी

विकास हुआ, परिणामस्वरूप यज्ञ अत्यधिक खर्चीले एवं जटिल होने लगे। यज्ञों में बलि का महत्त्व भी बढ़ने लगा। यज्ञों में पुरोहितों की संख्या भी बढ़ गयी थी।

2. **देवताओं की स्थिति में परिवर्तन**—उत्तर वैदिक काल में भी वही सब देवता थे जो ऋग्वैदिक युग में थे, किन्तु अब उनकी स्थिति में अन्तर आ गया था। कुछ देवताओं का गौरव बढ़ गया था व कुछ का घट गया था। **ऋग्वैदिक काल के प्रमुख देवता (इन्द्र, वरुण आदि) अब उतने प्रधान नहीं रहे।** उनके स्थान पर प्रजापति, विष्णू व रुद्र (शिव) प्रमुख देवता बन गये। प्रजापति को यज्ञों का स्वामी माना गया। विष्णु को भी प्रधान यज्ञ-पुरुष माना जाने लगा। रुद्र की पूजा अब शिवजी, पशुपति व महादेव के रूप में होने लगी।
3. **दर्शन**—कर्मकाण्ड की जटिलता एवं अत्यधिक यज्ञों का विपरीत प्रभाव हुआ। यज्ञ एवं अन्य कर्मकाण्डों में विशेष रूप से ब्राह्मण ही रुचि रखते थे जो इन धार्मिक कृत्यों की आड़ में अपने कार्य को साधते थे। धीरे-धीरे विद्वान एवं बौद्धिक लोग धार्मिक रीति-रिवाजों के प्रति उदासीन होने लगे व अनेक क्षत्रिय एवं बौद्धिक लोग शक्ति एवं ज्ञान की खोज के लिए प्रयत्नशील हो गये। इन्हीं व्यक्तियों में अनेक ऋषि हुए जिन्होंने ज्ञान के मार्ग का अनुशीलन किया। इनके आध्यात्मिक चिन्तन का वर्णन उपनिषदों में मिलता है।

उत्तर वैदिककालीन राजनीतिक स्थिति
(Political Condition during Later Vedic Period)

उत्तर वैदिककालीन साहित्य से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है, जिसका वर्णन निम्नवत् है—

1. **शक्तिशाली राजतन्त्रों का उदय**—इस युग की प्रमुख विशेषता शक्तिशाली राजतन्त्र का उदय होना था। राजतन्त्र के उदय होने का प्रमुख कारण साम्राज्यवाद की भावना का विकास होना था। ऐतरेय ब्राह्मण में साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, पारमेष्ठय, राज्य, महाराज्य, आधिपत्य, सार्वभौम आदि राज्यों का उल्लेख है।
2. **राजा के अधिकार**—ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि राजा के पद का जन्म अराजकता एवं युद्ध में विजयश्री प्राप्त करने के लिए हुआ था। इस युद्ध में यद्यपि राजा का पद पैतृक होता था, परन्तु कभी-कभी उसका निर्वाचन भी किया जाता था। **ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में राजा निर्वाचित होता था, किन्तु राजा एवं प्रजा में समझौता हुआ, जिसके अनुसार राजा ने प्रजा की सुरक्षा का दायित्व धारण किया व प्रजा ने राजा में विश्वास करना प्रारम्भ किया।** धीरे-धीरे राज पद पैतृक हो गया। विशाल साम्राज्यों के उदय के कारण राजाओं की शक्ति में भी वृद्धि हुई जिसकी पुष्टि राज्याभिषेक की बढ़ी हुई महत्ता से होती है।
3. **प्रशासनिक पदाधिकारी**—उत्तर वैदिक काल में, ऋग्वैदिक युग की अपेक्षा राजा की सहायतार्थ प्रशासनिक पदाधिकारियों की संख्या में वृद्धि हुई। राज्यों के बढ़ते हुए परिमाण को देखते हुए ऐसा होना स्वाभाविक ही था। प्रशासनिक व्यवस्था की सुविधा के लिए राज्य में अनेक विभागों की रचना की गयी थी जिसमें प्रमुख वित्त विभाग, निरीक्षण विभाग, आरक्षण एवं सेना विभाग, स्थानीय शासन विभाग थे। राजा मन्त्रियों की सहायता से शासन करता था। मन्त्री का पद परम्परा एवं जनमत पर आधारित होता था।
4. **सभा एवं समिति**—राजा की स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता पर प्रतिबन्ध लगाने वाली संस्थाएँ 'सभा' एवं 'समिति' थीं। सभा एवं समिति का विस्तृत विवरण वैदिककालीन राजनीतिक स्थिति के अन्तर्गत किया जा चुका है। उत्तर वैदिक काल में राज्य की सीमाएँ विस्तृत हो जाने के कारण इन संस्थाओं का प्रभाव वैदिक काल की तुलना में कुछ कम हो गया था, परन्तु फिर भी सभा एवं समिति जब-तब राजा को उसकी सीमाएँ स्पष्ट कर देती थीं।
5. **न्याय प्रशासन**—न्याय-व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था तथा उसकी सहायतार्थ अन्य अधिकारी भी होते थे। **न्यायाधीश को 'स्थपति' कहा जाता था।** उत्तर वैदिककालीन प्रमुख अपराध चोरी, डकैती, व्यभिचार, हत्या, धोखाधड़ी आदि थे। गाँव में छोटे-छोटे अपराधों का 'ग्राम्यवादिन' नामक अधिकारी निर्णय करता था। उत्तर वैदिक काल में भी हत्या के दण्डस्वरूप मृत व्यक्ति के रिश्तेदारों को सौ गायें देने की प्रथा थी। न्याय की दिव्य प्रथा (Ordeal System) इस युग में भी प्रचलित थी। उत्तर वैदिककालीन आर्यों की न्याय में गहरी निष्ठा थी।

❑

UNIT-III

मगध साम्राज्य का उदय एवं मौर्य वंश
Rise of Magadha Empire and Maurya Dynasty

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. महात्मा बुद्ध के समय के प्रमुख चार राजतन्त्र कौन-से थे?
Which were the main monarchies at the time of Lord Buddha?

उत्तर महात्मा बुद्ध के समय प्रमुख राजतन्त्र-मगध, कौशल, वत्स तथा अवन्ति थे।

प्र.2. मगध साम्राज्य के अन्तर्गत शासन करने वाले प्रमुख राजवंश कौन-से थे?
Who were the main dynasties to rule Magadha Empire?

उत्तर मगध साम्राज्य के अन्तर्गत शासन करने वाले तीन राजवंश—1. हर्यक वंश (544 ई०पू०-412 ई०पू०), 2. शिशुनाग वंश (412 ई०पू०-344 ई०पू०), 3. नन्द वंश (344 ई०पू०-324-23 ई०पू०) थे।

प्र.3. मगध साम्राज्य का संस्थापक कौन था?
Who was the founder of Magadha Empire?

उत्तर मगध पर शासन करने वाला प्राचीनतम ज्ञात राजवंश बृहद्रथवंश था। इसलिए बृहद्रथ को ही मगध साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है।

प्र.4. मौर्य वंश की स्थापना कब और किसने की?
Who founded the Maurya dynasty? When?

उत्तर मौर्य वंश की स्थापना 322 ई०पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु चाणक्य की सहायता से द्यनानन्द की हत्या करने के बाद की।

प्र.5. 'धम्म' से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by 'Dhamma'?

उत्तर सम्राट अशोक ने जिस धर्म की स्थापना की थी, उसे 'धम्म' कहा जाता था।

प्र.6. मौर्य वंश की राजधानी कहाँ थी?
Where was the capital of Maurya dynasty located?

उत्तर मौर्य वंश की राजधानी पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) थी।

प्र.7. बिन्दुसार कौन था? वह मगध की राजगद्दी पर कब बैठा?
Who was Bindusara? When did he sit on the throne of Magadha?

उत्तर बिन्दुसार मगध के सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र था। वह मगध की राजगद्दी पर 298 ई०पू० में बैठा।

प्र.8. कलिंग युद्ध में कितने लोग मारे गए थे?
How many people died in the Kaling War?

उत्तर कलिंग युद्ध में लगभग, 1,00,000 लोग युद्धभूमि में मारे गए थे।

प्र.9. किस युद्ध के बाद अशोक ने युद्ध की नीति का त्याग कर दिया था?
After which war did Ashoka give up his policy of war?

उत्तर कलिंग के युद्ध में हुए नरसंहार से अशोक बहुत व्यथित हो गया था। इसलिए उसने युद्ध की नीति का त्याग कर दिया।

TOUCH 'n PASS

प्र.10. सम्राट अशोक को उसके अभिलेखों में कौन-सी उपाधि दी गई है?
Which title was given to Ashoka in his inscriptions?

उत्तर सम्राट अशोक को उसके अभिलेखों में 'देवानांप्रिय प्रियदर्शी' अर्थात् 'देवों का प्यारा' की उपाधि दी गई है।

प्र.11. त्रिपिटकों के बारे में लिखिए। (2021)
Write about 'Tripitakas'.

उत्तर बुद्ध अपने उपदेश मौखिक रूप में ही करते थे। उनके निर्माण के 100 वर्ष बाद इन उपदेशों को विस्मृति के गर्भ से बचाने हेतु उनके पट्ट शिष्य आनंद के सहयोग से 'सुत्त पिटक' तथा उपालि के सहयोग से 'विनय पिटक' का संकलन किया गया। आगे चलकर सुत्त पिटक के दार्शनिक अंशों की व्याख्या से 'अभिदम्म पिटक' का निर्माण है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. चन्द्रगुप्त मौर्य से सम्बन्धित विदेशी साक्ष्यों के बारे में आप क्या जानते हैं? समझाइए।
What do you know about foreign evidences regarding Chandragupta Maurya? Explain.

उत्तर चन्द्रगुप्त मौर्य को यूनानी लेखक 'एण्ड्रोकोटस', 'सेण्ड्रोकोटस' आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। **प्लूटार्क** के अनुसार चन्द्रगुप्त युवक था तब वह सिकन्दर से मिला था और बाद में कहा करता था कि सिकन्दर ने बड़ी आसानी से सम्पूर्ण देश को जीत लिया होता, क्योंकि तत्कालीन मगध का नन्द राजा अपने कुल की निम्नता के कारण जनता में अत्यधिक घृणित एवं अप्रिय था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चन्द्रगुप्त यदि स्वयं निम्न कुलोत्पन्न होता तो वह नन्दों के कुल के विषय में ऐसी बातें नहीं करता। **जस्टिन** के शब्दों में, चन्द्रगुप्त 'यद्यपि सामान्य कुलोत्पन्न' था फिर भी दैवी प्रेरणा के कारण सम्राट बनने की महत्त्वाकांक्षा रखता था। एक बार सेण्ड्रोकोटस की स्पष्टवादिता से सिकन्दर अप्रसन्न हो गया तथा उसने उसे मार डालने का आदेश दिया, किन्तु चन्द्रगुप्त अपनी सतर्कता से बच निकला...।

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त राजपरिवार से सम्बन्धित नहीं था।

प्र.2. मगध के उदय में प्राकृतिक संसाधनों की क्या भूमिका थी?
What was the role of natural resources in the rise of Magadha?

उत्तर मगध के उदय में प्राकृतिक संसाधनों की महती भूमिका थी। सुविधाजनक भौगोलिक स्थिति के कारण निम्न गंगा के मैदानों पर नियन्त्रण सम्भव हो सका। ताँबे और लोहे की खानों से निकटता से अच्छे उपकरणों और हथियारों का निर्माण हुआ। जलोढ़ मिट्टी के जमाव से कृषि के लिए मजबूत आधार मिला।

मगध की दोनों राजधानियाँ—राजगृह और पाटलिपुत्र मगध की राजधानियाँ थीं। ये दोनों सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थीं। राजगृह पहाड़ियों से घिरी थी और शत्रुओं से पूरी तरह सुरक्षित थीं। पाटलिपुत्र गंगा, सोन और गण्डक नदी के संगम पर स्थित थी, अत: वह जलदुर्ग की भाँति सुरक्षित थी। दक्षिण बिहार में गया के घने जंगलों से इमारती लकड़ी और सेना के लिए हाथी प्राप्त होते थे। यही कारण था कि मगध ने पहली बार युद्धों में हाथियों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया।

प्र.3. हर्यक वंश के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में लिखिए।
What do you know about Haryaka dynasty? Write in brief.

उत्तर हर्यक वंश (544 ई०पू०-412 ई०पू०) के बिम्बिसार (544 ई०पू०-492 ई०पू०) को मगध साम्राज्य की सत्ता का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। 15 वर्ष की आयु में मगध साम्राज्य की सत्ता सँभालने वाले बिम्बिसार ने लगभग 52 वर्ष तक शासन किया। बिम्बिसार के शासनकाल में मगध ने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। बिम्बिसार ने अंग राज्य को जीतकर उसे मगध में मिला लिया तथा अपने पुत्र अजातशत्रु को वहाँ का शासक नियुक्त किया। इसने अवन्ति के शासक चण्डप्रद्योत से मित्रता कर ली तथा अपने राज्यवैद्य जीवक को उसके उपचार के लिए भेजा। बिम्बिसार की हत्या उसके पुत्र अजातशत्रु ने कर दी और वह 492 ई०पू० में मगध के सिंहासन पर बैठा।

प्र.4. सम्राट अशोक के अन्त के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में समझाइए।
What do you know about the end of Ashoka? Tell in brief.

उत्तर सम्राट अशोक के जीवन के अन्तिम दिनों की सूचना प्राप्त करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं लेकिन बौद्ध ग्रन्थों के द्वारा इसी मृत्यु के विषय में प्रमाण मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान के अनुसार अशोक का अंत बहुत दु:खद हुआ था। अशोक द्वारा राजकीय कोष से अत्यधिक धन बौद्ध संघों को दिए जाने का अमात्यों ने विरोध किया। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि एक बार जब वह कुक्कुटाराम विहार को कोई बड़ा उपहार देने वाला था, उसके अमात्यों ने राजकुमार सम्प्रति को उसके विरुद्ध भड़काया। राजकुमार सम्प्रति ने भाण्डागारिक को सम्राट की आज्ञानुसार कोई भी धनराशि संघ को न देने का आदेश दे दिया। सम्राट के निर्वाह के लिए दी जाने वाली धनराशि में भी बड़ी कटौती कर दी गई। अशोक का प्रशासन के ऊपर वास्तविक नियन्त्रण न रहा तथा अत्यन्त दुर्भाग्यवश परिस्थितियों में इस महान् सम्राट का अन्त हुआ। इस तथ्य को तिब्बती लेखक तारानाथ तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी स्वीकार किया है। हिन्दू पुराणों के अनुसार, अशोक ने लगभग 37 वर्ष तक राज्यकार्य किया। उसकी मृत्यु लगभग 237 ईसा पूर्व में हुई।

प्र.5. अशोक के उत्तराधिकारियों के बारे में चर्चा कीजिए।
Discuss about Ashoka's descendents.

उत्तर अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य वंश के इतिहास के बारे में बहुत अस्पष्ट जानकारी मिलती है। हिन्दू पुराणों, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में अशोक के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में बहुत विरोधाभासी जानकारी प्राप्त होती है। अशोक के एक लघु स्तम्भ लेख में उसके केवल एक पुत्र तीवर का नाम है जबकि अन्य साक्ष्य इसके विषय में कोई जानकारी नहीं देते। सम्भवतया अशोक के जीवन-काल में ही तीवर की मृत्यु हो गई थी। कश्मीरी लेखक कल्हण तथा तिब्बती लेखक तारानाथ ने अशोक के उत्तराधिकारियों का जो विवरण दिया है वह भी एक-दूसरे के विपरीत है। इस प्रकार यह बता पाना कठिन है कि अशोक के बाद शासन करने वाले राजाओं के नाम एवं उनका क्रम क्या था?

हिन्दू पुराणों से मिली जानकारी के अनुसार शालिशूक के बाद देवधर्मन्, फिर शतधन्वन् तथा अन्त में बृहद्रथ मौर्य वंश के राजा हुए। सभी पुराण बृहद्रथ को ही मौर्य वंश का अन्तिम शासक मानते हैं। इसकी पुष्टि बाणभट्ट के हर्षचरित से भी होती है। उसे बुद्धिहीन शासक कहा गया है। उसका सेनापति पुष्यमित्र शुंग था। पुष्यमित्र ने 184 ईसा पूर्व के लगभग अपने स्वामी बृहद्रथ की सेना निरीक्षण करते समय धोखे से हत्या कर दी। बृहद्रथ की मृत्यु के साथ ही मौर्य वंश का अन्त हो गया।

प्र.6. चाणक्य (कौटिल्य) के 'अर्थशास्त्र' के सम्बन्ध में आपको क्या ज्ञात है? संक्षिप्त विवरण दीजिए।
What do you know about 'Arthashastra' of Chanakya (Kautilya)? Give a brief description.

उत्तर चाणक्य (कौटिल्य) के 'अर्थशास्त्र' के रचनाकाल और उसके लेखक के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। **जाली, कीथ, विन्टरनित्ज** जैसे विद्वान् 'अर्थशास्त्र' को चाणक्य की रचना नहीं मानते। इनके विपरीत **शाम शास्त्री, जैकोबी, स्मिथ, काशी प्रसाद जायसवाल** आदि विद्वान् इस ग्रन्थ के रचयिता चाणक्य को ही मानते हैं। जो भी हो, वर्तमान में यह मान्यता है कि अर्थशास्त्र चाणक्य की ही रचना है।

अर्थशास्त्र में 15 अभिकरण और 180 प्रकरण हैं। इस ग्रन्थ में श्लोकों की संख्या 4,000 बताई गई है। शाम शास्त्री के अनुसार वर्तमान ग्रन्थ में भी इतने ही श्लोक हैं। चाणक्य के शासन का आदर्श बड़ा ही उदात्त था। उसने अपने ग्रन्थ में जिस विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप प्रस्तुत किया है उसमें राजा का चरम लक्ष्य प्रजा का हित ही होना चाहिए। वास्तव में यह ग्रन्थ चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था के ज्ञान के लिए बहुमूल्य सामग्रियों का भण्डार है।

राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में अर्थशास्त्र को वही स्थान प्राप्त है जो व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि की अष्टाध्यायी को प्राप्त है। चाणक्य केवल राजनीति का ज्ञाता ही नहीं था, बल्कि वह राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादक भी था। बाद के लेखकों ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक उसके नाम का उल्लेख किया है।

प्र.7. चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भिक जीवन कैसा था?
How was the initial life of Chandragupta Maurya?

उत्तर चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन की जानकारी हमें बौद्ध स्रोतों से प्राप्त होती है। चन्द्रगुप्त मौर्य एक साधारण परिवार में पैदा हुआ था फिर भी बचपन से ही उसमें उज्ज्वल भविष्य के सूचक महानता के सभी लक्षण विद्यमान थे। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार

चन्द्रगुप्त का पिता मोरियनगर का प्रमुख था। जब वह अपनी माता के गर्भ में था तभी उसके पिता की किसी सीमान्त युद्ध में मृत्यु हो गई। जन्म होने के बाद वह एक गोपालक को दे दिया गया। गोपालक ने गोशाला में अपने पुत्र की भाँति उसका लालन-पालन किया। कुछ बड़ा होने पर उसे एक शिकारी के हाथों बेच दिया गया। शिकारी के ग्राम में वह बड़ा हुआ। अपनी प्रतिभा के कारण चन्द्रगुप्त शीघ्र ही अपने समवयस्क बालकों में अग्रणी हो गया। वह बालकों की मण्डली का राजा बनकर उनके आपसी झगड़ों का निर्णय किया करता था।

एक दिन जब चाणक्य उधर से जा रहा था तब वह 'राजकीलम्' नामक खेल में व्यस्त था, चाणक्य ने अपनी सूक्ष्मदृष्टि से उस बालक के भावी गुणों का सूक्ष्म अनुमान लगा लिया। उसने शिकारी को 1,000 कार्षापण देकर चन्द्रगुप्त को खरीद लिया। यही चन्द्रगुप्त आगे चलकर मौर्य साम्राज्य का संस्थापक बना।

प्र.8. सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की मृत्यु कैसे हुई? संक्षेप में बताइए।

How did Chandragupta Maurya die? Tell in brief.

उत्तर सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य की मृत्यु के विषय में अस्पष्ट स्थिति है। जैन परम्पराओं के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जैन हो गया तथा भद्रबाहु की शिष्यता को ग्रहण किया। उसके शासन काल के अन्तिम समय में मगध में बारह वर्षों का भीषण अकाल पड़ा। पहले तो चन्द्रगुप्त ने स्थिति से निपटने के लिए पूर्ण प्रयास किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। परिणामस्वरूप, वह अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन त्याग कर भद्रबाहु के साथ श्रवणवेलगोला (मैसूर) में तप करने चला गया। इसी स्थान पर 298 ईसा पूर्व के लगभग उसने जैन विधि की उपवास पद्धति द्वारा प्राण त्याग किए। इसे जैन धर्म में 'सल्लेखना' कहा जाता है।

यहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि श्रवणवेलगोला की एक छोटी पहाड़ी का नाम आज भी चन्द्रगिरि है एवं वहाँ 'चन्द्रगुप्त बस्ती' नामक एक मन्दिर भी है। कालान्तर में कई लेखों में भी भद्रबाहु तथा चन्द्रगुप्त मुनि का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वारा जैन धर्म स्वीकार करने की बात तो सही प्रतीत होती है, लेकिन जैन लेखकों द्वारा बारह वर्षीय अकाल का विवरण सही नहीं प्रतीत होता। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज, जो चन्द्रगुप्त की राज्यसभा में निवास करता था, ने कहीं भी अकाल की स्थिति का उल्लेख नहीं किया है। अन्य किसी साक्ष्य से भी इसकी पुष्टि नहीं हो पाई है।

प्र.9. सम्राट अशोक बौद्ध धर्म से किस प्रकार सम्बन्ध रखता था? समझाइए।

What kind of relations did Emperor Ashoka have with Buddhism? Explain.

उत्तर सम्राट अशोक लगभग एक वर्ष तक बौद्ध धर्म का साधारण उपासक रहा। उसके बाद वह बौद्ध संघ के विद्वान भिक्षुओं के घनिष्ठ सम्पर्क में आया तथा उनके उपदेशों का श्रवण किया। इसके परिणामस्वरूप अशोक के हृदय में बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के प्रति अधिक श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने सार्वजनिक रूप से अपने को संघ का अनुयायी घोषित किया तथा संघ की प्रत्यक्ष सेवा करने का व्रत लिया। अपने इस नवीन मत-परिवर्तन की सूचना देने के लिए उसने अपने अभिषेक के दसवें वर्ष सम्बोधि (बोधगया) की यात्रा की।

बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद अशोक के जीवन में अनेक परिवर्तन हुए। उसने अहिंसा तथा सदाचार का पालन किया। उसने मांस-भक्षण त्याग दिया तथा राजकीय भोजनालयों में मारे जाने वाले पशुओं की संख्या कम करने के साथ-साथ आखेट तथा विहार यात्राओं पर रोक लगा दी। और उनके स्थान पर धर्म यात्राओं को शुरू कर दिया। इन यात्राओं के दौरान वह देश के अलग-अलग भागों के लोगों से मिलता था तथा उन्हें धम्म के विषय में बताता था। उसने महात्मा बुद्ध के चरण चिह्नों से पवित्र हुए स्थानों की यात्रा की तथा उनकी पूजा की। सर्वप्रथम बोधगया की यात्रा हुई। इसके उपरान्त अशोक अपने अभिषेक के बीसवें वर्ष में लुम्बिनी ग्राम में गया। उसने वहाँ पत्थर की सुदृढ़ दीवार बनवाई तथा शिला-स्तम्भ खड़ा किया। चूँकि वहाँ भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, इसलिए लुम्बिनी ग्राम को कर-मुक्त घोषित किया गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म से अशोक का अत्यधिक प्रगाढ़ सम्बन्ध था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मौर्यों से पूर्व मगध साम्राज्य के उत्कर्ष के क्या कारण थे? विस्तृत वर्णन कीजिए।
What were the causes of the rise of Magadha Empire before Mauryas? Discuss in detail.

उत्तर

मगध साम्राज्य के उत्कर्ष के कारण
(Causes of the Rise of Magadha Empire)

प्राचीन भारतीय इतिहास में मगध का विशिष्ट स्थान है। प्राचीन काल में भारत में अनेक छोटे-बड़े राज्यों की सत्ता थी। मगध के प्रतापी राजाओं ने इन राज्यों पर विजय प्राप्त कर भारत के एक बड़े भाग पर विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की और इस प्रकार मगध के शासकों ने सर्वप्रथम अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया। मौर्य वंश की स्थापना से पूर्व भी अनेक शासकों ने अपने बाहुबल व वीरता से मगध साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया था।

गौतम बुद्ध के समय में चार प्रमुख राजतन्त्र-मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति-थे। उल्लेखनीय है कि इन चारों राजतन्त्रों में से मगध साम्राज्य का ही विकास हो सका, क्योंकि वीर, प्रतापी एवं योग्य शासकों के अतिरिक्त मगध को एक साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभरने में अनेक परिस्थितियों ने भी सहायता की। मगध उत्तर भारत के विशाल तटवर्ती मैदानों के ऊपरी एवं निचले भागों के मध्य अति सुरक्षित स्थान पर था। पाँच पहाड़ियों के मध्य एक दुर्गम स्थान पर स्थित होने के कारण वहाँ तक शत्रुओं का पहुँचना प्राय: असम्भव था। इसके साथ ही मगध के निकटवर्ती क्षेत्र में लोहे की खानों से प्राप्त लोहे से भाँति-भाँति प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बनाकर आर्यों को जंगलों को साफ करने में सहायता मिली और नवीन उद्योग-धन्धों को उत्कर्ष मिला। गंगा नदी के कारण भी मगध में व्यापारिक सुविधाएँ बढ़ीं और आर्थिक दृष्टि से मगध के महत्त्व में वृद्धि हुई। मगध साम्राज्य की भूमि अत्यधिक उपजाऊ थी; अत: आर्थिक दृष्टि से मगध एक सम्पन्न राज्य था। मगध के निकटवर्ती वनों में हाथियों के बाहुल्य ने भी मगध साम्राज्य के उत्कर्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्राचीनकाल में युद्धों में हाथियों की सेना प्रमुख भूमिका निभाती थी। **चाणक्य** ने लिखा है, "राजाओं की विजय मुख्यत: हाथियों पर निर्भर करती है। शत्रुओं की छावनी, दुर्ग आदि को ध्वस्त करने में इन विशाल शरीर वाले हाथियों का विशेष महत्त्व है।" मगध की हस्ति सेना अत्यधिक शक्तिशाली थी। प्राचीनकालीन लेखकों ने इस सेना की अत्यधिक प्रशंसा की है।

किन्तु मात्र अच्छी सामरिक स्थिति तथा भौतिक समृद्धि ही किसी राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए पर्याप्त नहीं है। तत्कालीन प्रजा का भी मगध के उत्कर्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान था। **बर्क** ने लिखा है कि तत्कालीन प्रजा की यह विशेषता थी कि वह अपने सम्राटों को अपना जीवन व सर्वस्व अर्पित कर देती थी। इसके अतिरिक्त मगध के लोगों के व्यवहार में एक लचीलापन था। यह गुण अन्य समकालीन राजतन्त्रों में विद्यमान न था। मगध में ब्राह्मण लोग शूद्रों का सम्पर्क स्वीकार कर लेते थे तथा राजा भी अपने महलों में शूद्र कन्याओं को स्थान दे देते थे। राजा का सिंहासन एक साधारण नाई की भी पहुँच में होता था। मगध के शासक तथा मन्त्री अपने कार्यों में बहुत अधिक अनैतिक व मिथ्यावादी नहीं थे। वे किसी भी राज्य को नष्ट करने या उसे छिन्न-भिन्न करने में पाश्चात्य दार्शनिक मैकियावेली के समान नीतियों का ही अनुसरण करते थे। ये राजा और मन्त्री एक ऐसी व्यावहारिक प्रशासन पद्धति निकाल लिया करते थे, जिसमें राजा, मन्त्री व गाँवों के मुखियों का भी समान भाग होता था। चौथी शताब्दी ई० पू० में भारत में आये विदेशी यात्रियों एवं राजदूतों ने तत्कालीन राजाओं की न्याय बुद्धि, दानशीलता, आतिथ्य भावना तथा जनहित की चिन्ता का उल्लेख किया है। तत्कालीन मगध के शासक एक सुसंगठित वृहत्तर भारत की कल्पना को साकार करने के लिए अनवरत प्रयास करते थे। वे सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधना चाहते थे तथा अपने इस उद्देश्य में वे सफल भी हुए।

मगध पर शासन करने वाला प्राचीनतम ज्ञात राजवंश '**बृहद्रथ वंश**' है। महाभारत व पुराणों से ज्ञात होता कि प्राग्-ऐतिहासिक काल में चेदिराज वसु के पुत्र बृहद्रथ ने गिरिव्रज को राजधानी बनाकर मगध में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया था। दक्षिणी बिहार के गया और पटना जनपदों के स्थान पर तत्कालीन मगध साम्राज्य था। इसके उत्तर में गंगा नदी पश्चिम में सोन नदी, पूर्व में चम्पा नदी तथा दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वतमाला थी। बृहद्रथ को ही मगध साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। उसके द्वारा स्थापित राजवंश को '**बृहद्रथ वंश**' कहा गया। इस वंश का सबसे प्रतापी शासक जरासंध था, जो बृहद्रथ का पुत्र था। जरासंध अत्यन्त पराक्रमी एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का शासक था। कृष्ण की सहायता से भीम ने जब जरासंध का वध किया तब जरासंध की मृत्यु के पश्चात् मगध पतन की ओर अग्रसर हो गया, किन्तु फिर भी बहद्रथ वंश के अनेक शासक कुछ समय तक मगध पर

शासन करते रहे। बृहद्रथ वंश का अन्तिम शासक रिपुंजय था। कुछ समय पश्चात् उसके मन्त्री पुलिक ने रिपुंजय की हत्या कर दी तथा अपने पुत्र बालक को मगध का शासक नियुक्त किया। इस प्रकार बृहद्रथ वंश का पतन हो गया। कुछ समय पश्चात् महिय नामक एक सामन्त ने 'बालक' की हत्या करके अपने पुत्र बिम्बिसार को मगध की गद्दी पर बैठाया।

प्र.2. मगध-साम्राज्य के प्रमुख राजवंशों के शासकों के बारे में आप क्या जानते हैं? उनका वर्णन कीजिए।
What do you know about the rulers of major dynasties of Magadha Empire? Give an explanation.

उत्तर

मगध के प्रमुख राजवंश व उनके शासक
(Major Dynasties of Magadha and their Rulers)

मगध के प्रमुख राजवंश और उनके शासकों का विवरण निम्न है—

1. **हर्यक वंश व उसके शासक**—हर्यक वंश का काल 544 ई०पू० से 412 ई०पू० था। बिम्बिसार इस वंश का प्रथम शक्तिशाली शासक था। विद्धानों के अनुसार, बिम्बिसार हर्यक कुल में उत्पन्न हुआ था। इसीलिए इस राजवंश का नाम हर्यक वंश पड़ा। इसने 544 ई०पू० से 492 ई०पू० तक शासन किया। इसे मगध साम्राज्य की सत्ता का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। बिम्बिसान ने 15 वर्ष की आयु में मगध साम्राज्य की बागडोर सँभाली। उसने लगभग 52 वर्षों तक शासन किया। इसके शासनकाल में मगध ने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। बिम्बिसार ने अंग राज्य को जीतकर उसे मगध में मिला लिया तथा अपने पुत्र अजातशत्रु को वहाँ का शासक नियुक्त किया। बिम्बिसार ने अवन्ति के शासक चण्डप्रद्योत से मित्रता कर ली तथा अपने राज्यवैद्य जीवक को उसके इलाज के लिए भेजा।

   अजातशत्रु बिम्बिसार का पुत्र था। उसने अपने पिता की हत्या कर दी और 492 ई० पू० में मगध की राजगद्दी पर बैठ गया। अजातशत्रु और कोशल नरेश प्रसेनजित के मध्य युद्ध हुआ। प्रसेनजित की पराजय हुई, परन्तु बाद में दोनों में समझौता हो गया। प्रसेनजित ने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह अजातशत्रु से किया। अजातशत्रु का उपनाम 'कुणिक' था। यह जैन मतानुयायी था। अजातशत्रु का लिच्छवियों से भी युद्ध हुआ। अपने कूटनीतिक मित्र वस्सकार की सहायता से उसने लिच्छवियों के ऊपर विजय प्राप्त की। इस युद्ध में अजातशत्रु द्वारा **रथमूसल** तथा **महाशिलाकंटक** नामक हथियारों का प्रयोग किया गया। बाद में काशी व वैशाली दोनों मगध के अंग बन गए। अजातशत्रु के शासन काल में ही राजगृह की सप्तपर्णि गुफा में प्रथम **बौद्ध** संगीति का आयोजन हुआ। अजातशत्रु को लगभग 32 वर्षों तक मगध पर शासन करने के उपरान्त उसे अपने ही पुत्र **उदयिन** द्वारा मार डाला गया।

   पुराणों एवं जैन ग्रन्थों के अनुसार उदयिन ने गंगा तथा सोन नदियों के संगम तट पर पाटलिपुत्र (कुसुमपुर) नामक नगर की स्थापना की तथा उसे अपनी राजधानी बनाया। वह जैन मतानुयायी था। उदयिन का पुत्र नागदशक हर्यक वंश का अन्तिम राजा था। इसको उसके अमात्य शिशुनाग ने पदच्युत कर मगध की गद्दी पर अधिकार कर लिया और 'शिशुनाग' नामक एक नये वंश की स्थापना की।

2. **शिशुनाग वंश व उसके शासक**—इस वंश के संस्थापक शिशुनाग का शासन 412 ई०पू० से 394 ई०पू० तक रहा। शिशुनाग वंश का काल 412 ई०पू० से 344 ई०पू० तक है। शिशुनाग ने अवन्ति और वत्स राज्यों पर अधिकार कर उन्हें मगध साम्राज्य में मिला लिया। इसने वैशाली को मगध साम्राज्य की राजधानी बनाया। इसके शासन के समय मगध साम्राज्य के अन्तर्गत बंगाल से लेकर मालवा तक का भू-भाग सम्मिलित हुआ। महावंश के अनुसार, शिशुनाग की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र कालाशोक गद्दी पर बैठा।

   'पुराण' और 'दिव्यावदान' में कालाशोक का नाम **काकवर्ण** मिलता है। इसने वैशाली के स्थान पर पुनः पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। इसने 28 वर्ष तक शासन किया। इसी के समय वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ। कालाशोक के शासन के समय ही बौद्ध संघ दो भागों (स्थविर तथा महासांघिक) में बँट गया। बाणभट्ट द्वारा रचित **'हर्षचरित'** के अनुसार पाटलिपुत्र में घूमते समय महापद्मनन्द नामक व्यक्ति ने चाकू मारकर काकवर्ण की हत्या कर दी। महाबोधिवंश के अनुसार कालाशोक के दस पुत्र थे, जिन्होंने कालाशोक की मृत्यु (366 ई०पू०) के बाद मगध पर 22 वर्ष (लगभग 344 ई०पू०) तक शासन किया।

3. **नन्द वंश व उसके शासक**—पुराणों के अनुसार, इस वंश का संस्थापक महापद्मनन्द शूद्र था। नन्द वंश का काल 344 ई०पू० से 324-23 ई०पू० था। इसमें महापद्मनन्द को 'सर्वक्षत्रान्तक' (क्षत्रियों का नाश करने वाला) तथा 'भार्गव' (दूसरे परशुराम का अवतार) भी कहा गया है। महापद्मनन्द ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की तथा 'एकराट' एवं 'एकक्षत्र' की उपाधि धारण की। इसके आठ पुत्र थे। नन्द वंश का अन्तिम शासक धनानन्द भी इसका पुत्र था। धनानन्द सिकन्दर का समकालीन था। इसके समय में 326 ई०पू० में सिकन्दर ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया था। ग्रीक (यूनानी) लेखकों ने धनानन्द को 'अग्रमीज' कहा है। इसने जनता पर बहुत-से कर आरोपित किए थे, जिससे जनता असन्तुष्ट थी। इसके दरबार में चाणक्य (तक्षशिला का आचार्य) आया था। वह धनानन्द ने चाणक्य का अपमान किया। 322 ई०पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु चाणक्य की सहायता से धनानन्द की हत्या कर दी और मौर्य वंश की स्थापना की। मौर्यों के शासन में मगध साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मगध साम्राज्य के उदय में विभिन्न वंशों व उनके शासकों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

प्र.3. मौर्य साम्राज्य की स्थापना के बारे में आप क्या जानते हैं? इसके प्रथम शासक चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में प्राप्त विभिन्न मतों का विवरण दीजिए।
What do you know about the establishment of Maurya Empire? Give details of various views regarding Chandragupta Maurya.

उत्तर

मौर्य साम्राज्य की स्थापना
(Establishment of the Maurya Empire)

मगध साम्राज्य में नन्द वंश का शासक धनानन्द एक क्रूर और अत्याचारी शासक था। मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने राजनीतिक गुरु चाणक्य की सहायता से धनानन्द को पराजित किया और मगध में मौर्य वंश की स्थापना की। चन्द्रगुप्त की माता का नाम **मूर** था जिसका संस्कृत में अर्थ **'मौर्य'** होता है, इसलिए इस वंश का नाम **मौर्य वंश** पड़ा। मौर्य वंश के शासक किस 'वर्ण' के थे, इसको लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त को 'मोरिय क्षत्रिय' कहा गया है। यह प्रामाणिक भी प्रतीत होता है, क्योंकि चन्द्रगुप्त का गुरु चाणक्य वर्णाश्रम धर्म का प्रबल समर्थक था। अत: क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति ही राजत्व का अधिकारी हो सकता था।

चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में विभिन्न मत (Various views Regarding Chandragupta Maurya)

चन्द्रगुप्त मौर्य के वंश के विषय में अनिश्चतता है। पौराणिक बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी विवरण मिलते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का विवरण निम्न प्रकार है—

1. **पौराणिक साहित्य का मत**—पौराणिक साहित्य के अनुसार नन्द 'शूद्र' कहलाते हैं। विष्णुपुराण में दिए गए विवरण के अनुसार शिशुनागवंशी शासक 'महानन्दी' के बाद शूद्र योनि के राजा पृथ्वी पर शासन करेंगे। विष्णुपुराण के जनक भाष्यकार **श्रीधरस्वामी** ने चन्द्रगुप्त को नन्दराज की पत्नी 'मुरा' से उत्पन्न बताया है। इनके अनुसार मुरा की सन्तान होने के कारण ही वह मौर्य कहलाया। विशाखदत्त द्वारा लिखित 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक में चन्द्रगुप्त को नन्दराज का पुत्र माना गया है, किन्तु इसमें जो विवरण मिलता है उससे स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त नन्दराज का वैध पुत्र नहीं था। 'मुद्राराक्षस' के टीकाकार धुण्डिराज ने चन्द्रगुप्त को शूद्र सिद्ध करने के लिए कहा है कि सर्वार्थसिद्धि नामक एक क्षत्रिय राजा था। उसकी दो पत्नियाँ सुनन्दा तथा मुरा थीं। सुनन्दा एक क्षत्राणी थी जिसके नौ पुत्र हुए जो 'नव नन्द' कहे गए। मुरा शूद्रा थी। उसका एक पुत्र हुआ जो 'मौर्य' कहलाया। संस्कृत ग्रन्थों-सोमदेव द्वारा रचित **'कथासरित्सागर'** तथा क्षेमेन्द्र द्वारा रचित **'वृहत्कथामंजरी'** में चन्द्रगुप्त की शूद्र उत्पत्ति के सम्बन्ध में अलग विवरण मिलता है।

   उपर्युक्त ग्रन्थों के अनुसार नन्दराज की अचानक मृत्यु होने से इन्द्रदत्त नामक एक व्यक्ति योग के बल पर उसकी आत्मा में प्रवेश करके राजा बन गया। इसके परिणाम स्वरूप वह योगनन्द के नाम से जाना जाने लगा। जिसने नन्दराज की पत्नी से विवाह किया। बाद में उससे हिरण्यगुप्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, लेकिन वास्तविक नन्द राजा को पहले से ही चन्द्रगुप्त नामक एक पुत्र था। योगनन्द अपने तथा अपने पुत्र हिरण्यगुप्त के लिए चन्द्रगुप्त को शत्रु समझता था। वास्तविक नन्दराजा के मन्त्री **शकटार** ने चन्द्रगुप्त का पक्ष लिया। चाणक्य की सहायता से शकटार ने योगनन्द तथा हिरण्यगुप्त का अन्त कर

दिया एवं राज्य का वैध उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त ही सिंहासन पर बैठा। इन ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त को नन्दराज का पुत्र मानकर उसकी शूद्र उत्पत्ति के सम्बन्ध में मत व्यक्त किया गया है।

मुद्राराक्षस का प्रमाण मौर्यों की जाति के सम्बन्ध में प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यह नाटक नन्दों को उच्चवर्ण से सम्बन्धित मानता है जो भारतीय साहित्य तथा विदेशी विवरण के अनुसार विश्वसनीय नहीं है। पाणिनि के व्याकरण के नियमों के अनुसार 'मौर्य' शब्द पुल्लिग 'मूर' शब्द से उत्पन्न हुआ होगा। 'मुरा' शब्द से 'मौरेय' बनेगा, मौर्य नहीं। मनुस्मृति तथा महाभारत में 'वृषल' शब्द धर्मच्युत व्यक्ति के लिए प्रयुक्त है। मनु के अनुसार भगवान धर्म को 'वृष' कहते हैं। जो पुरुष धर्म का नाश करता है, देवता उसे 'वृषल' समझते हैं। अत: धर्म का नाश नहीं करना चाहिए। मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त के लिए 'वृषल' शब्द अधिकांशत: चाणक्य द्वारा प्रयोग किया गया है। चाणक्य इसे शूद्र अर्थ में कदापि प्रयुक्त नहीं कर सकता। वह चन्द्रगुप्त को प्रेमपूर्वक ही 'वृषल' कहकर सम्बोधित करता है। नाटक में ही एक स्थान पर इस शब्द का प्रयोग 'राजाओं में वृष' अर्थात् सर्वोत्तम राजा के अर्थ में मिलता है। अत: हम इसे शूद्र जाति का बोधक नहीं मान सकते। चन्द्रगुप्त ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जैन-धर्म स्वीकार कर लिया। सम्भव है विशाखदत्त ने इसी कारण ब्राह्मण व्यवस्था के पोषक चाणक्य के मुख से इसे 'वृषल' कहलवाया हो। इसी प्रकार कुलहीन शब्द से केवल इतना ही प्रमाणित होता है कि चन्द्रगुप्त राजकुल से सम्बन्धित नहीं था। नाटक की ऐतिहासिकता चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में संदिग्ध है। इसकी रचना मौर्यकाल के लगभग आठ शताब्दियों बाद की गई थी। अत: मौर्य इतिहास के पुनर्निर्माण में इसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

मुद्राराक्षस के टीकाकार द्वारा गढ़ी गई कथा पूर्णतया कपोलकल्पित है। इसका कोई आधार ही नहीं प्रतीत होता। 'कथासरित्सागर' और 'वृहत्कथामंजरी' बहुत बाद की रचनाएँ हैं, अत: मौर्य इतिहास के विषय में उन्हें भी प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। इन ग्रन्थों में नन्द, चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के नाम के अतिरिक्त कोई भी ऐसी बात नहीं कही गई है जो चन्द्रगुप्त को शूद्र सिद्ध करे।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त को शूद्र अथवा निम्न वर्ण से सम्बन्धित करने के पक्ष में जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं, वे सुस्पष्ट नहीं हैं। अत: हम उसे शूद्र नहीं मान सकते।

2. **बौद्ध साहित्य का मत**—बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार मौर्य क्षत्रिय थे। इन ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त 'मोरिय' क्षत्रिय वंश का बताया गया है। 'मोरिय' कपिलवस्तु के शाक्यों की ही एक शाखा थे। ये लोग कोशल नरेश के अत्याचारों से पीड़ित थे। इसलिए वे सुरक्षित जीवन व्यतीत करने हेतु हिमालय के उस क्षेत्र में आकर बस गए जो मोरों के लिए प्रसिद्ध था। अत: यहाँ के निवासी 'मोरिय' कहे गए। एक दूसरी कथा भी है, जिसमें 'मोरिय नगर' का उल्लेख है। इसमें बताया गया है कि यह नगर जिन ईंटों से बना था, उनकी बनावट 'मोरों' के गर्दन की भाँति थी। अत: इस नगर के निर्माता 'मोरिय' नाम से प्रसिद्ध हुए।

अनेक बौद्ध ग्रन्थ चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय बताते हैं। महाबोधिवंश चन्द्रगुप्त को राजकुल से सम्बन्धित बताता है। महावंश में चन्द्रगुप्त, 'मोरिय' नामक क्षत्रिय वंश में उत्पन्न कहा गया है। 'महापरिनिब्बानसूत्त' में मौर्यों को पिप्पलिवन का शासक होने के कारण क्षत्रिय वंश का गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के बाद मोरियों ने कुशीनारा के मल्लों के पास उनके अवशेषों को प्राप्त करने हेतु राजदूत भेजकर अपने क्षत्रिय होने के आधार पर ही दावा प्रस्तुत किया था।

3. **जैन साहित्य का सत**—हेमचन्द्र द्वारा रचित 'परिशिष्टपर्वन्' में चन्द्रगुप्त को मयूर पोषकों के ग्राम के मुखिया की पुत्री का 'पुत्र' कहा गया है। हरिभद्रीया टीका में भी चन्द्रगुप्त को मयूर पोषकों के ग्राम के मुखिया के कुल में उत्पन्न बताया है।

अशोक के लौरियानन्दनगढ़ के स्तम्भ के नीचे के हिस्से में उत्कीर्ण मयूर की आकृति से भी चन्द्रगुप्त के 'मोरिय' से सम्बन्धित होने की पुष्टि होती है। सर्वप्रथम ग्रूनवेडेल (Grunwedel) ने यह बताया था कि मयूर मौर्यों का वंशीय चिह्न था। यही कारण है कि मौर्य कालीन कलाकृतियों में मयूरों का प्रतिनिधित्व दिखाई देता है। **मार्शल** का मानना है कि साँचीमौर्यों के पूर्वी द्वार और भवनों को सजाने के लिए मोरों के चित्र बनाए जाते थे। साँची के विशाल स्तूप में भी मयूरों की कई आकृतियाँ उत्तीर्ण हैं।

4. **विदेशी लेखकों का मत**—मौर्यों की जाति के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व विदेशी यात्रियों के वृत्तान्तों का भी अध्ययन नितान्त आवश्यक है। यूनानी लेखक चन्द्रगुप्त को 'एण्ड्रोकोटस', 'सेण्डोकोटस' आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। **प्लूटार्क** के विवरण से स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला था तथा बाद में कहा करता था कि सिकन्दर ने बड़ी आसानी से सम्पूर्ण देश को जीत लिया होता, क्योंकि तत्कालीन नन्द राजा अपने कुल की निम्नता के कारण जनता

में अत्यधिक घृणित एवं अप्रिय था। इस कथन से स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त यदि स्वयं निम्न कुल का होता तो वह नन्दों के कुल के विषय में यह बात नहीं करता। **जस्टिन** के अनुसार, चन्द्रगुप्त यद्यपि सामान्य कुलो में उत्पन्न था फिर भी दैवी प्रेरणावश सम्राट बनने की महत्त्वाकांक्षा रखता था। एक बार सेण्ड्रोकोटस की स्पष्टवादिता के कारण सिकन्दर अप्रसन्न हो गया एवं उसने उसे मार डालने का आदेश दिया। चन्द्रगुप्त अपनी सतर्कता से बच निकला...। इन विवरणों से केवल यही ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त राजपरिवार से सम्बन्धित नहीं था।

उपरोक्त विवरणों के अनुसार, यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों का प्रमाण ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक सन्तोषजनक है। चन्द्रगुप्त मोरिय क्षत्रिय ही था। उसे शूद्र अथवा निम्नजातीय मानने हेतु हमारे पास कोई ठोस प्रमाण नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि चन्द्रगुप्त का गुरु चाणक्य वर्णाश्रम धर्म का प्रबल समर्थक था जिसके अनुसार क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति ही राजत्व का अधिकारी हो सकता था।

प्र.4. चन्द्रगुप्त मौर्य की विजयों का वर्णन कीजिए।
Describe the conquests of Chandragupta Maurya.

उत्तर

चन्द्रगुप्त मौर्य की विजयें
(Conquests of Chandragupta Maurya)

चन्द्रगुप्त मौर्य एक कुशल सेनानायक व वीर योद्धा था। चन्द्रगुप्त व चाणक्य दोनों का ही प्रमुख उद्देश्य नन्द वंश का विनाश कर मगध के राजसिंहासन पर अधिकार करना था। चन्द्रगुप्त का विजय क्रम निम्न प्रकार है—

1. **मगध पर प्रथम आक्रमण**—मगध पर चन्द्रगुप्त व चाणक्य द्वारा किये गये प्रथम आक्रमण के विषय में 'महावंश' में वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को शक्तिशाली सेना तैयार करके दी। तब उन्होंने ग्रामों व नगरों को विजित करना प्रारम्भ किया, किन्तु वहाँ के लोगों ने चन्द्रगुप्त की सम्पूर्ण सेना को घेर लिया व उसका विनाश कर दिया। किसी प्रकार चन्द्रगुप्त व चाणक्य भागने में सफल हो गये। जब वे भेष बदलकर घूमते फिर रहे थे तो एक रात को वे एक घर में रुके। वहाँ गृहस्वामिनी अपने बच्चे को खाना खिला रही थी। वह बच्चा रोटी के बीच के भाग को खा रहा था जिससे उसका मुँह जल जाता था। **यह देखकर गृहस्वामिनी ने कहा कि तुम्हारा यह कार्य चन्द्रगुप्त के समान है।** इस पर बच्चे ने पूछा कि चन्द्रगुप्त ने क्या किया था व मैं क्या कर रहा हूँ? **गृहस्वामिनी ने बच्चे को समझाया कि तुमने रोटी के किनारे के भाग को पहले खाने के स्थान पर पहले बीच का भाग खाया जिससे तुम्हारा मुँह जल गया। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त ने सीमाप्रान्तों को अपने अधिकार में लिये बिना राज्य के मध्य भाग पर आक्रमण किया, जिससे जनता उसके विरुद्ध हो गयी व सीमाप्रान्त से आक्रमण करके उसकी सेना का विनाश कर दिया।**

   इस वार्तालाप को सुनकर चन्द्रगुप्त को अपनी भूल का पता चल गया व उसने अपनी योजना में परिवर्तन करके पहले पंजाब पर आक्रमण करने की योजना बनायी।

2. **यूनानी शासन का उन्मूलन व पंजाब पर अधिकार**—चन्द्रगुप्त व चाणक्य की मगध पर अधिकार करने की नवीन योजना के अन्तर्गत प्रथम चरण पंजाब पर अधिकार करना था। पंजाब पर अधिकार करने के लिए यूनानियों का वहाँ से निष्कासन आवश्यक था, क्योंकि सिकन्दर की विजयों के परिणामस्वरूप, पंजाब के बड़े भू-भाग पर यूनानियों का अधिकार हो गया था। चन्द्रगुप्त व चाणक्य द्वारा अपनी योजना में सफलता प्राप्त करने के लिए धन, सेना, जनमत व राजकीय मैत्री अत्यन्त आवश्यक थी, अत: उन्होंने पहले इसी ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया तथा निम्नवत् प्रयास किये—

   (i) **धन प्राप्ति हेतु प्रयास**—महावंश टीका से ज्ञात होता है कि चाणक्य ने विन्ध्याचल के वनों में जाकर धन एकत्र किया था। परिशिष्टपर्वन् से भी इस कथन की पुष्टि होती है।

   (ii) **सेना एकत्र करना**—उस समय पंजाब में इस प्रकार की सेना के लिए उपयुक्त जातियों की कोई कमी नहीं थी। पंजाब की समस्त गणतान्त्रिक जातियों तथा राज्यों और वहाँ के साधारण निवासियों में, जो बहुमूल्य सैनिक सामग्री तथा साधन, जो निहित क्षमताएँ तथा सम्भावनाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं, उनका लाभ उठाने तथा एक बार पुन: उनका उपयोग करने का श्रेय चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त की मेधावी प्रतिभा को मिला। इस आधारभूत सामग्री तथा जनता

से प्रतिरोध की अदम्य भावना से स्वतन्त्रता के संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए एक सुसंगठित सेना तैयार करने में उनको कोई कठिनाई नहीं हुई।

(iii) **अन्य राज्यों से मैत्री सन्धियाँ**—चन्द्रगुप्त ने अपनी सेना को स्थानीय निवासियों के बीच से भरती किये गये सैनिकों तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् उसने अन्य राजाओं से मैत्री स्थापित कर अपनी शक्ति में वृद्धि की। **मुद्राराक्षस से ज्ञात होता है कि चाणक्य ने हिमालय के एक राज्य के पर्वतक नामक राजा से मैत्री सन्धि की थी।** परिशिष्टपर्वन् में भी इसका उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में भी इस घटना का उल्लेख है।

(iv) **जनमत प्राप्त करना**—सिकन्दर द्वारा जिन राज्यों पर विजय प्राप्त कर अपने अधीन किया गया था, युद्ध में यद्यपि वे परास्त हो गये थे पर विदेशी आधिपत्य को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं थे। चन्द्रगुप्त व चाणक्य ने इस स्थिति से लाभ उठाया। **उसने यूनानी शासन के विरुद्ध इन राज्यों को भड़काया।** चाणक्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि वह विदेशी शासन के कितना विरुद्ध था। इसी प्रकार नन्द राजा पर आक्रमण करने से पूर्व उसकी निम्न जातीयता व दुष्ट प्रकृति का प्रचार करके चन्द्रगुप्त ने जनमत को अपने पक्ष में कर लिया था।

इस प्रकार पूरी तैयारी करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने यूनानियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था।

3. **मगध पर पुनः आक्रमण**—पंजाब पर विजय प्राप्त करने व अपनी सेना को सुसंगठित करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने सीमान्त प्रदेशों से अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया। जैसे-जैसे वह इन प्रदेशों पर विजय प्राप्त करता जाता था, वैसे-वैसे वह वहाँ अपनी सेनाएँ भी नियुक्त करता जाता था। इस प्रकार सही रणपद्धति को अपनाकर उसने मगध पर आक्रमण किया।

मुद्राराक्षस के अनुसार इस युद्ध में चन्द्रगुप्त की सहायता पर्वतक नामक राजा ने की थी। चाणक्य ने मगध का आधा साम्राज्य पर्वतक को देने का वचन देकर उसकी सहायता इस युद्ध में ली। भीषण युद्ध के पश्चात् चन्द्रगुप्त घनानन्द को परास्त करने में सफल हुआ व चाणक्य ने नन्दवंश का चिह्न तक उन्मूलित कर दिया। **तत्पश्चात् पर्वतक की भी एक विषकन्या की सहायता से हत्या कर दी गयी।** महावंश टीका में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है व उसमें भी नन्द राजा की हत्या किये जाने का उल्लेख है। किन्तु परिशिष्टपर्वन् के अनुसार नन्द राजा की हत्या नहीं की गयी थी। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में पराजित शत्रु राजा के साथ सहानुभूतिपूर्ण व शिष्ट व्यवहार करने का निर्देश दिया है, अतः इस आधार पर परिशिष्टपर्वन् के कथन को सत्य स्वीकार किया जा सकता है।

4. **सैल्यूकस से युद्ध**—नन्द-वंश के उन्मूलन व स्वयं के मगध के सम्राट के रूप में सिंहासनारोहण के पश्चात् चन्द्रगुप्त एक विशाल साम्राज्य का शासक बन गया। विशाल नन्द साम्राज्य के अतिरिक्त, भारत के जिन प्रदेशों पर सिकन्दर ने विजय प्राप्त की थी, वे भी चाणक्य की कूटनीति व चन्द्रगुप्त की सैनिक क्षमता के कारण उसके साम्राज्य के अंग बन गये। **इस प्रकार उसका साम्राज्य हिमालय से दक्षिणापथ तथा बंगाल की खाड़ी से यमुना नदी तक विस्तृत हो गया था।** जिस समय चन्द्रगुप्त मौर्य अपने इस विशाल साम्राज्य को सुदृढ़ एवं सुसंगठित करने में व्यस्त था, उसी समय सिकन्दर का सेनापति सैल्यूकस भी अपने एशियाई यूनानी साम्राज्य को प्रबल बनाने के प्रयास कर रहा था।

सैल्यूकस सिकन्दर के समान ही महत्त्वाकांक्षी एवं वीर था। अपने राज्य में स्थिति सुदृढ़ करने के पश्चात् उसने सिकन्दर द्वारा भारत में जीते गये प्रदेशों को (जो कि सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् स्वतन्त्र हो गये थे) पुनः अपने अधीन करने का प्रयास किया। इसी उद्देश्य से सैल्यूकस ने पहले बैक्ट्रिया पर आक्रमण किया जिसमें उसे सफलता मिली। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर सैल्यूकस ने तत्पश्चात् भारत पर आक्रमण किया, किन्तु भारत की अब वह राजनीतिक स्थिति न थी जो कि सिकन्दर के आक्रमण के समय थी। **सिकन्दर का सामना असंगठित व परस्पर द्वेष रखने वाले प्रजातन्त्रों व राजतन्त्रों से हुआ था, जिसके कारण उसे सफलता प्राप्त हुई थी, किन्तु सैल्यूकस के आक्रमण के समय तक भारत में महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हो चुका था। भारत अब छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त न था वरन् मौर्य साम्राज्य के रूप में राजनीतिक एकता के सूत्र में बँध चुका था। परिणामस्वरूप सैल्यूकस का सामना छोटे-छोटे राज्यों से नहीं वरन् सार्वभौम सम्राट चन्द्रगुप्त की सुसंगठित एवं सुसज्जित सेना से हुआ।** अतः भारतीय प्रदेशों पर अधिकार करने के स्थान पर सैल्यूकस को ही अपने राज्य के अनेक प्रदेश चन्द्रगुप्त को सौंपने पड़े।

सेल्यूकस से सन्धि की शर्तें व महत्त्व–स्ट्रैबो के वर्णन से ज्ञात होता है कि सैल्यूकस व चन्द्रगुप्त के मध्य हुई सन्धि की निम्नलिखित प्रमुख धाराएँ थीं—

(i) सैल्यूकस ने एरियाना प्रदेश का विस्तृत भू–भाग चन्द्रगुप्त को दे दिया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त का साम्राज्य जो सैल्यूकस की पराजय से पूर्व सिन्धु नदी तक सीमित था, इस सन्धि के परिणामस्वरूप हिन्दूकुश तक विस्तृत हो गया। इस सम्बन्ध में **डॉ. स्मिथ** का कथन उल्लेखनीय है, **"दो हजार वर्ष से भी पूर्व भारत के प्रथम सम्राट ने उस वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त कर लिया था जिसके लिए उसके ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ ही आहे भरते रहे तथा जिसे सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दियों के मुगल सम्राट भी कभी पूर्णरूप से प्राप्त नहीं कर सके।"**

(ii) चन्द्रगुप्त ने सैल्यूकस को 500 हाथी उपहार में देकर सैल्यूकस से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये।

(iii) सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किया। उसने अपनी पुत्री हेलेना का विवाह चन्द्रगुप्त से किया।

इस प्रकार सैल्यूकस की पराजय के परिणामस्वरूप, भारत पर कुछ समय के लिए यूनानी आक्रमण का भय न रहा। इसी कारण मुद्राराक्षस में कहा गया है कि म्लेच्छों से पीड़ित पृथ्वी ने महाराजा चन्द्रगुप्त की युगल भुजाओं में आश्रय लिया था। इस प्रकार अपने राज्य की उत्तर–पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने पश्चिमी व दक्षिणी भारत की ओर सफल अभियान किये।

सैल्यूकस व चन्द्रगुप्त के मध्य हुए युद्ध की तिथि 303 ई. पू. मानना ही तर्कसंगत है।

5. **दक्षिण–विजय**—चन्द्रगुप्त ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में भारत की दिग्विजय की, किन्तु इस अभियान के अन्तर्गत उसने किन–किन प्रदेशों पर विजय प्राप्त की, इसका उल्लेख किसी स्रोत से नहीं मिलता। विभिन्न स्रोतों से ऐसा प्रतीत होता है कि उसने दक्षिणी भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की थी।

6. **पश्चिमी भारत पर विजय**—चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी भारत पर विजय प्राप्त की थी, इसमें कोई संशय नहीं है। **रूद्रदामन शिलालेख (150 ई.) से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रान्तीय शासक पुष्यगुप्त ने किस प्रकार ऊर्जयत पर्वत से नीचे की ओर बहने वाली सुवर्णसिक्ता व पलाशिनी आदि नदियों पर बाँध बनाकर सौराष्ट्र में प्रसिद्ध सुदर्शन झील का निर्माण कराया था।** पुष्यगुप्त सौराष्ट्र का प्रान्तीय शासक (गवर्नर) था। सौराष्ट्र की विजय के परिणामस्वरूप मालवा व उज्जैन पर भी उसका अधिकार हो गया था। बम्बई के थाना जिले के सोपारा नामक स्थान से प्राप्त अशोक के शिलालेख से ज्ञात होता है कि सोपारा भी चन्द्रगुप्त के अधीन रहा था।

प्र.5. चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य-विस्तार का वर्णन कीजिए। चन्द्रगुप्त मौर्य का एक शासक के रूप में मूल्यांकन भी कीजिए।

Describe the expansion of Chandragupta Maurya's empire. Also present an evaluation of Chandragupta as a ruler.

उत्तर

चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य-विस्तार
(Expansion of Chandragupta Maurya's Empire)

विभिन्न विजयों के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने साम्राज्य की सीमाओं का दूरस्थ देशों तक विस्तार किया। उसका साम्राज्य उत्तर हिमाचल से दक्षिण मैसूर तक एवं हिन्दूकुश से पूर्व बंगाल तक विस्तृत था। अफगानिस्तान एवं बलूचिस्तान का विस्तृत भू–भाग, सम्पूर्ण पंजाब, सिन्धु प्रदेश, कश्मीर, नेपाल, गंगा–यमुना का दोआब, मगध, बंगाल, कलिंग, सौराष्ट्र, मालवा, मैसूर तक का क्षेत्र चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य के अंग थे। **प्लूटार्क** के अनुसार चन्द्रगुप्त ने छह लाख की सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला और उस पर अपना अधिकार कर लिया। **जस्टिन** के विवरण से भी स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण भारत उसके अधिकार क्षेत्र में था। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष की जो परम्परा बिम्बिसार ने प्रारम्भ की थी, चन्द्रगुप्त के समय में वह चरम सीमा पर पहुँच गई। उसका विशाल साम्राज्य उत्तर–पश्चिम में ईरान की सीमा से लेकर दक्षिण में वर्तमान उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत था। पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में सुराष्ट्र और सोपारा तक का सम्पूर्ण प्रदेश उसके साम्राज्य के अन्तर्गत था। इतिहासकार **स्मिथ** की दृष्टि

में हिन्दूकुश पर्वत भारत की वैज्ञानिक सीमा थी। यूनानी लेखक इसे 'पैरोपेनिसस' अथवा 'इण्डियन काकेशस' नाम से सम्बोधित करते थे। यही चन्द्रगुप्त तथा सेल्यूकस के साम्राज्यों की भी सीमा थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य का मूल्यांकन (Evaluation of Chandragupta Maurya)

चन्द्रगुप्त मौर्य का मूल्यांकन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

1. **लोकोपकारी शासन व्यवस्था का निर्माता**—चन्द्रगुप्त मौर्य ने ही सर्वप्रथम अत्यन्त कुशल प्रशासनिक व्यवस्था को कार्यान्वित किया था वह एक वीर योद्धा एवं साम्राज्य निर्माता होने के साथ-साथ अत्यन्त योग्य शासक भी था। मौर्यों की प्रशासनिक व्यवस्था जो बाद की सभी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं का आधार कही जा सकती है, चन्द्रगुप्त एक निपुण तथा लोकोपकारी शासन व्यवस्था का निर्माता था। उसके शासन का आदर्श बाद के हिन्दू शासकों के लिए अनुकरणीय बना रहा। यहाँ तक कि मुस्लिम तथा ब्रिटिश शासकों ने भी राजस्व व्यवस्था, नौकरशाही तथा पुलिस व्यवस्था के क्षेत्रों में मौर्य शासन का ही अनुकरण किया। मौर्य प्रशासन के अधिकांश आदर्शों को आधुनिक युग के भारतीय शासन में भी भली-भाँति देखा जा सकता है। चन्द्रगुप्त ने अपने व्यक्तित्व एवं आचरण से कौटिल्य के प्रजाहित के राज्यादर्श को कार्य रूप में परिणित कर दिया। चन्द्रगुप्त द्वारा विदेशी स्त्री से विवाह करना भारत के तत्कालीन सामाजिक जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। इससे उसकी उदारता स्पष्ट होती है। जैन परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त एक राजर्षि था जिसने अपने उत्तरकालीन जीवन में राज्य के सुख-वैभव का परित्याग कर तप करते हुए स्वेच्छा से मृत्यु का वरण कर लिया।
2. **साम्राज्य-निर्माता**—चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने 24 वर्ष के शासनकाल में जितनी सफलताएँ प्राप्त की उतनी उपलब्धियाँ इतने अल्पकाल में किसी अन्य भारतीय शासक ने प्राप्त नहीं की। चन्द्रगुप्त की उपलब्धियों से यह प्रमाणित होता है कि वह एक महान् विजेता, साम्राज्य निर्माता और अत्यन्त कुशल प्रशासक था। उसने अपनी योग्यता एवं कुशलता से अपने को एक सार्वभौम सम्राट बना लिया। वह भारत का ऐसा प्रथम महान सम्राट था जिसके नेतृत्व में चक्रवर्ती आदर्श को वास्तविक स्वरूप मिला। यूनानी स्रोतों के अनुसार कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त की महान् सफलता अधिकांशत: उसकी वीरता, अदम्य उत्साह एवं साहस का परिणाम थी। वस्तुत: चन्द्रगुप्त के पीछे कोई राजकीय परम्परा नहीं थी। यूनानी आक्रान्ताओं से देश को मुक्त करना, शक्तिशाली नन्दों का विनाश करना तथा अपने समय के एक अत्यन्त उत्कृष्ट सेनानायक सेल्यूकस को नतमस्तक करना, निश्चित रूप से चन्द्रगुप्त की असाधारण सैनिक योग्यता के परिचायक हैं। उसने भारत की उस वैज्ञानिक सीमा को अभिकृत कर लिया जिसके लिए मुगल तथा ब्रिटिश शासक सदैव प्रयास करते रहे।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त मौर्य महान् सम्राट होने के साथ-साथ लोकोपकारी शासक भी था।

प्र.6. मौर्य शासक बिन्दुसार का विस्तृत वर्णन कीजिए।

Give a detailed description of Maurya ruler Bindusar.

उत्तर

बिन्दुसार (298 B.C.-273 B.C.)
(Bindusar)

बिन्दुसार मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र था। चन्द्रगुप्त के पश्चात् 298 ई. पू. में वह राजसिंहासन पर आसीन हुआ। पौराणिक अनुश्रुतियों में उसको बिन्दुसार, भद्रसार व नन्दसार आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया है। जैन ग्रन्थ उसे बिन्दुसार ही कहते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में भी उसके लिए बिन्दुसार शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

बिन्दुसार के प्रारम्भिक जीवन के विषय में भी अत्यन्त अल्प जानकारी उपलब्ध है। जैन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उसकी माता का नाम दुर्धरा था। **परिशिष्टपर्वन् नामक ग्रन्थ में उसके जन्म के विषय में एक रोचक प्रसंग है।** चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को विष का अभ्यस्त बनाने के उद्देश्य से उसको भोजन में अल्पमात्रा में विष देना आरम्भ किया था। इसका उद्देश्य यह था कि यदि कोई शत्रु विष अथवा विषकन्या द्वारा चन्द्रगुप्त की हत्या कराना चाहे तो वह सफल न हो सके। एक दिन चन्द्रगुप्त की पत्नी दुर्धरा ने भी चन्द्रगुप्त के साथ भोजन किया, किन्तु विष के प्रभाव से उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय रानी दुर्धरा गर्भवती थी। चाणक्य ने शीघ्र ही उसके उदर को चिरवाकर बच्चे को निकलवा लिया। **इस बालक के मस्तक पर विष की एक बूँद लगी थी, अत: उसका नाम बिन्दुसार रखा गया।**

विजयें (Conquests)

तारानाथ ने बिन्दुसार को राज्यों का विजेता बताया है। इस इतिहासकार के अनुसार बिन्दुसार ने चाणक्य की सहायता से सोलह राज्यों पर विजय प्राप्त की थी तथा पूर्वी व पश्चिमी समुद्र के मध्य के भू-भाग पर उसने अधिकार कर लिया था। इस आधार पर अनेक इतिहासकारों का विचार है कि दक्षिण भारत को मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत लाने वाला मौर्य शासक चन्द्रगुप्त नहीं वरन् बिन्दुसार था, किन्तु जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। विभिन्न स्रोतों व प्रमाणों के आधार पर चन्द्रगुप्त को ही दक्षिण भारत का विजेता माना जाता है। अत: यह स्वीकार करना कि चन्द्रगुप्त द्वारा बिन्दुसार को प्रदान किये गये मौर्य साम्राज्य में दक्षिण भारत भी था उचित एवं तर्कसंगत है। बिन्दुसार की इस क्षेत्र में उपलब्धि केवल यही थी कि उसने चन्द्रगुप्त द्वारा छोड़े गये साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा।

विद्रोह (Rebellion)

बिन्दुसार के शासनकाल में उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला में दो बार विद्रोह हुआ। दिव्यावदान से ज्ञात होता है कि जब तक्षशिला में विद्रोह हुआ तो बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को उस विद्रोह का दमन करने के लिए भेजा। जब अशोक तक्षशिला पहुँचा तो वहाँ के निवासियों ने उसका स्वागत किया व उससे निवेदन किया कि **"न हम कुमार के विरुद्ध हैं और न राजा बिन्दुसार के, पर दुष्ट आमात्य हमारा अपमान करते हैं।"**

दिव्यावदान से तक्षशिला के दूसरे विद्रोह के विषय में ज्ञात होता है। यह विद्रोह बिन्दुसार के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में हुआ था। उस समय अशोक उज्जैन में था, अत: विद्रोह के दमन के लिए **राजकुमार सुसीम** को भेजा गया था।

इस प्रकार बिन्दुसार ने अपने पुत्रों की सहायता से न केवल पैतृक साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा, वरन् उसका विस्तार भी किया।

विदेशों से सम्बन्ध (Foreign Relations)

बिन्दुसार ने शान्तिपूर्ण वैदेशिक नीति का पालन करते हुए तथा अपने पिता चन्द्रगुप्त के पदचिन्हों पर चलते हुए अन्य देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे। **बिन्दुसार के समकालीन यूनानी राजाओं ने भी भारत के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखे।** बिन्दुसार के अन्य देशों से सम्बन्ध के विषय में यूनानी लेखकों के वृत्तान्तों से ही जानकारी मिलती है।

इस वर्णन से बिन्दुसार के विदेशों से सम्बन्धों के अतिरिक्त यह भी स्पष्ट होता है कि बिन्दुसार की दर्शन में अभिरुचि थी। दिव्यावदान से पता चलता है कि उसने अपने दरबार में विद्वानों को आश्रय दिया था। इसकी पुष्टि अशोक के सातवें स्तम्भ लेख से भी होती है।

मूल्यांकन (Evaluation)

बिन्दुसार एक शक्तिशाली एवं योग्य शासक था। उसके शासनकाल में मौर्य साम्राज्य ने अत्यधिक उन्नति की। बिन्दुसार की आर्य मंजूश्री मूलकल्प में अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। इस कृति में उसे प्रौढ, धृष्ट (साहसी), प्रगल्भ (वाक्पटु), प्रियवादी (मीठा बोलने वाला) व संवृन्त (जो अन्यों के सम्मुख खुले नहीं) कहा गया है।

प्र.7. मौर्य शासक अशोक का परिचय देते हुए उत्तराधिकार के लिए युद्ध, कलिंग युद्ध व उसके परिणाम का वर्णन कीजिए।
Giving introduction of Ashoka describe the war of succession, the Kalinga War and its consequences.

उत्तर

अशोक (269 B.C.-232 B.C.)
(Ashoka)

बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अशोक शासक बना। **अशोक का शासनकाल भारतीय इतिहास का अत्यन्त गौरवमयी काल था क्योंकि उस समय में अशोक ने अपनी साधारण क्षमताओं से भारत को सर्वोन्मुखी उन्नति प्रदान की।** यही कारण है कि अशोक को न केवल भारत के वरन् विश्व के महानतम शासकों में से एक माना जाता है। **एच० जी० वेल्स** ने लिखा है, **"इतिहास के पृष्ठों को रँगने वाले सहस्त्रों राजाओं के नामों के मध्य अशोक का नाम सर्वोपरि नक्षत्र के समान दैदीप्यमान है।"** साम्राज्य विस्तार, प्रशासनिक व्यवस्था, धर्म संरक्षण, हृदय की उदारता, कला के विकास एवं प्रजा-वत्सलता आदि प्रत्येक दृष्टिकोण से

अशोक का स्थान सर्वोच्च है। अशोक ने अपने सुविशाल साम्राज्य के प्रशासन को पूर्ण बनाने तथा अपनी प्रजा को सुखी बनाने के लिए जो बीड़ा उठाया, इसके लिए उसने कोई कोशिश बाकी नहीं छोड़ी।

प्रारम्भिक जीवन (Early Life)

दुर्भाग्यवश अशोक के अभिलेख उसके जीवन की प्रारम्भिक घटनाओं के विषय में मौन हैं, अत: अशोक के प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं को जानने के लिए हमें एकमात्र साहित्यिक स्रोतों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अशोक के विषय में भिन्न-भिन्न जानकारी मिलती है जिससे सही तथ्य पता लगाने पर कार्य दुरूह हो जाता है।

अशोक बिन्दुसार का पुत्र था, किन्तु उसकी माता कौन थी? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। दीपवंश व महावंश ने बिन्दुसार की 16 रानियों व 101 पुत्रों का उल्लेख किया है। **अशोकावदान** के अनुसार अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी था जिसे एक राजकीय षड्यन्त्र के कारण राजा से अलग रखा गया। अन्त में राजा से मिलाप होने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। दिव्यावदान में अशोक की माता को एक ब्राह्मण की पुत्री बताया गया है, किन्तु इस ग्रन्थ में उस ब्राह्मण कन्या का नाम नहीं मिलता। महाबोधिवंश में धम्मा को अशोक की माता कहा गया है। **कुछ विद्वानों ने अशोक को यूनानी स्त्री की सन्तान कहा है।** ऐसे विद्वानों में **टार्न** प्रमुख हैं। टार्न के अनुसार सैल्यूकस ने परास्त होने के पश्चात् अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार से किया था। अशोक बिन्दुसार की इसी यूनानी पत्नी से उत्पन्न हुआ था। किन्तु इस मत को अधिकांश इतिहासकार स्वीकार नहीं करते क्योंकि यदि यह सत्य होता तो यूनानी इतिहासकार इसका उल्लेख कहीं न कहीं अवश्य करते। **अत: अशोक की माता सुभद्रांगी को ही मानना उचित प्रतीत होता है।**

बचपन में अशोक अत्यन्त उद्दण्ड एवं कुरूप था, जबकि उसका भाई सुसीम अत्यधिक रूपवान था। इसका कारण अशोक कभी भी अपने पिता का सुसीम के समान स्नेह का पात्र न बन सका। बिन्दुसार ने अपने सभी पुत्रों के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था की थी, किन्तु समस्त राजकुमारों में अशोक सबसे योग्य था। अशोक को प्रशासनिक शिक्षा प्रदान करने हेतु बिन्दुसार ने उसे उज्जैन का गवर्नर नियुक्त किया था। बिन्दुसार के शासनकाल से ही तक्षशिला में विद्रोह हुआ जिसे दबाने में सुसीम अक्षम रहा, तब बिन्दुसार ने अशोक को इस विद्रोह को दबाने व तक्षशिला में शान्ति की स्थापना करने के लिए भेजा था। अशोक इस उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल रहा। इस प्रकार अपने पिता के शासनकाल में ही अशोक ने काफी प्रशासनिक अनुभव प्राप्त कर लिया था। **ऐसा प्रतीत होता है बौद्ध धर्म का अनुयायी होने से पूर्व अशोक अत्यधिक अत्याचारी था, किन्तु बौद्ध अनुयायी बनते ही वह एक सहृदय व प्रजावत्सल शासक बन गया।** अशोक की क्रूरता का बौद्ध साहित्य में अतिरंजित वर्णन किया गया है, इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि कुषाण शासक कनिष्क का भी बौद्ध साहित्य में बिल्कुल इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। कनिष्क को भी प्रारम्भ में अत्यन्त क्रूर व बौद्ध धर्म का अनुयायी बनने के पश्चात् सहृदय व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

उत्तराधिकार के लिए युद्ध (War of Succession)

273 ई. पू. में बिन्दुसार बीमार पड़ा, तब अशोक उज्जैन में गवर्नर के रूप में शासन कर रहा था। पिता के रुग्ण होने का समाचार प्राप्त होने पर उसने पाटलिपुत्र के लिए प्रस्थान किया, परन्तु जब वह मार्ग में ही था तभी उसके पिता की मृत्यु हो गयी। पाटलिपुत्र पहुँचने पर उसने मगध के सिंहासन पर अधिकार करने का प्रयास किया, क्योंकि अशोक को तक्षशिला का विद्रोह दबाने व उज्जैन का सफल गवर्नर सिद्ध होने के पश्चात् अपनी क्षमताओं का आभास हो गया था, किन्तु उसके समक्ष सबसे प्रमुख समस्या यह थी कि बिन्दुसार का सबसे बड़ा पुत्र न होने के कारण यह युवराज नहीं था। अत: मगध साम्राज्य पर अधिकार करने के लिए उसे अपने भाइयों से संघर्ष करना आवश्यक था। विभिन्न स्रोतों से ऐसा प्रतीत होता है कि बिन्दुसार के उत्तराधिकारी होने का प्रश्न बिन्दुसार के जीवनकाल में ही उत्पन्न हो गया था। बिन्दुसार के समय में व उसके पश्चात् उत्तराधिकार के लिए हुए संघर्ष के विषय में निम्नलिखित स्रोतों से प्रकाश पड़ता है—

1. **दिव्यावदान**—इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि बिन्दुसार ने मृत्यु से पूर्व अपने पुत्र सुसीम को अपना उत्तराधिकारी बनाने की अभिलाषा प्रकट की थी, किन्तु उनके मन्त्रियों ने अशोक को राजा बनाया।
2. **महावंश**—महावंश के अनुसार बिन्दुसार के 101 पुत्र थे। इसमें अशोक सबसे योग्य था। उसने विमाताओं (Step mothers) से उत्पन्न 11 भाइयों की हत्या कर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का राज्य प्राप्त किया।

3. **दीपवंश**—महावंश के वर्णन के समान ही दीपवंश में भी अशोक द्वारा बिन्दुसार की विभिन्न रानियों से जन्मे भाइयों की हत्या का उल्लेख किया गया है।
4. **महाबोधिवंश**—इस ग्रन्थ में भी उत्तराधिकार के लिए हुए युद्ध का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि अशोक के अन्य भाई सुसीम के पक्ष में थे।
5. **फा-युएन-चु-लिन**—महाबोधिवंश के समान ही चीनी ग्रन्थ फा-युएन-चु-लिन में भी वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार अशोक ने अपने बड़े भाई सुसीम को मारकर राज्य प्राप्त किया था। उल्लेखनीय है कि इस ग्रन्थ में सिर्फ सुसीम की ही हत्या किये जाने का उल्लेख है, अन्य भाइयों की नहीं।
6. **तारानाथ**—तारानाथ के अनुसार अशोक ने अपने 6 भाइयों की हत्या करके राजसिंहासन प्राप्त किया था।
7. **वसत्थपकासिनी**—इससे ज्ञात होता है कि अशोक के 101 भाई थे और एक को छोड़कर सबको उसने मौत के घाट उतार दिया।
8. **इर्त्सिंग**—इर्त्सिंग नामक चीनी यात्री ने भी अशोक के राजसिंहासनारोहण के विषय में लिखा है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बिन्दुसार की मृत्यु से पूर्व ही जो संघर्ष उनके उत्तराधिकारी को लेकर प्रारम्भ हुआ था, उसने उसकी मृत्यु के पश्चात् युद्ध का रूप धारण कर लिया। **269 ई० पू०** में अशोक का औपचारिक राज्याभिषेक हुआ।

कलिंग का युद्ध और इसके परिणाम (Kalinga War and its Consequences)

कलिंग के युद्ध और इसके परिणाम को निम्न प्रकार भली-भाँति समझा जा सकता है—

1. **कलिंग की स्थिति**—अशोक के शासन के समय में कलिंग एक अत्यन्त शक्तिशाली राज्य था। उसकी निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति मौर्य साम्राज्य के लिए खतरा थी। अत: कलिंग की शक्ति को अवरोधित करना अशोक के लिए आवश्यक था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में यह राज्य अवश्य ही मगध के अधिकार में रहा होगा, क्योंकि यह स्वीकार करना कठिन है कि चन्द्रगुप्त जैसा वीर तथा महत्त्वाकांक्षी शासक, जिसने यूनानियों को पराजित किया एवं नन्दों की शक्ति को नष्ट किया, वह कलिंग की बढ़ती शक्ति एवं स्वाधीनता को कैसे सहन कर सकता था। ऐसी स्थिति में यही मानना तर्कसंगत लगता है कि बिन्दुसार के शासन काल में किसी समय कलिंग ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी होगी। अशोक जैसे महत्त्वाकांक्षी शासक के लिए यह असह्य था। **रोमिला थापर** की दृष्टि में कलिंग उस समय व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राज्य था तथा अशोक की दृष्टि उसके समृद्ध व्यापार पर भी थी। अत: उसने कलिंग के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया।
2. **कलिंग से युद्ध**—कलिंग का प्राचीन राज्य वर्तमान दक्षिणी उड़ीसा में अवस्थित था। 261 ई० पू० में अशोक ने अपने राज्यभिषेक के 8वें वर्ष में कलिंग पर आक्रमण किया था। कलिंग युद्ध तथा उसके परिणामों के विषय में अशोक के तेरहवें अभिलेख से महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। इससे स्पष्ट होता है कि वह युद्ध बहुत भयंकर था, जिसमें भीषण रक्तपात तथा नरसंहार हुआ। अन्तत: अशोक इस राज्य को जीतकर अपने साम्राज्य में मिलाने में सफल रहा। यह भी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि किसी भी साक्ष्य से हमें कलिंग के शासक का नाम ज्ञात नहीं होता है। तेरहवें शिलालेख में इस युद्ध के भयानक परिणामों का उल्लेख इस प्रकार है—इस युद्ध में एक लाख 50 हजार व्यक्ति बन्दी बनाकर कलिंग से लाए गए, एक लाख लोगों की हत्या की गई तथा इससे भी कई गुना अधिक अन्य कारणों से मर गए। युद्ध में भाग न लेने वाले ब्राह्मणों, श्रमणों तथा गृहस्थियों को अपने सम्बन्धियों के मारे जाने से बहुत कष्ट हुआ। सम्राट ने इस वृहद् नरसंहार को स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

   इस प्रकार कलिंग की स्वाधीनता का अन्त हुआ। कलिंग मगध साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया तथा उसको रजवंश के एक राजकुमार के अधीन कर दिया। वहाँ का शासक उपराजा (वायसराय) कहलाता था। कलिंग में दो अधीनस्थ प्रशासनिक केन्द्र स्थापित हुए—(1) उत्तरी केन्द्र (राजधानी-तोसलि) तथा (2) दक्षिणी केन्द्र (राजधानी-जौगढ़)। कलिंग ने फिर कभी स्वतन्त्र होने का प्रयास नहीं किया। मौर्य साम्राज्य की पूर्वी सीमा बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत हो गई।
3. **अशोक का हृदय परिवर्तन**—कलिंग-युद्ध में विनाश की ताण्डव लीला ने सम्राट अशोक के हृदय को द्रवित कर दिया तथा पश्चात्ताप से भर दिया। इस युद्ध में हुई अत्यधिक हिंसा एवं नरसंहार की घटनाओं ने अशोक का हृदय परिवर्तन किया जिसके दूरगामी परिणाम हुए। कलिंग युद्ध के बारे में **हेमचन्द्र राय चौधरी** ने लिखा है, "मगध और सम्पूर्ण भारत के

इतिहास में कलिंग की विजय एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके पश्चात् मौर्यों की जीत तथा राज्य विस्तार का वह दौर समाप्त हुआ जो बिम्बिसार द्वारा अंग राज्य को जीतने के बाद से शुरू हुआ था। इसके बाद एक नये युग का सूत्रपात हुआ और यह युग था—शान्ति, सामाजिक प्रगति व धार्मिक प्रचार का। यहीं से सैन्य विजय तथा दिग्विजय का युग समाप्त हुआ तथा आध्यात्मिक विजय और धम्मविजय का युग शुरू हुआ।'' कलिंग युद्ध के बाद अशोक का हृदय मानवता के प्रति दया एवं करुणा से उद्वेलित हो गया तथा उसने आजीवन युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की। यह अपने-आप में एक आश्चर्यजनक घटना थी जो विश्व इतिहास में अनोखी है। उसी समय से अशोक बौद्ध बन गया तथा उसने अपने साम्राज्य के सभी उपलब्ध साधनों को जनता के भौतिक एवं नैतिक कल्याण में नियोजित कर दिया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कलिंग युद्ध का सबसे बड़ा परिणाम व्यापक नरसंहार के कारण अशोक का हृदय परिवर्तन था।

प्र.8. अशोक का मूल्यांकन करते हुए उसकी महानता के कारणों का वर्णन कीजिए।
Evaluating Ashoka, describe the causes of his greatness.

उत्तर

अशोक का मूल्यांकन एवं उसकी महानता के कारण
(Evaluation of Ashoka and the Causes of his Greatness)

भारत के इतिहास का यदि अवलोकन करें तो अनेक ऐसे विजेताओं तथा सम्राटों के विषय में पता चलता है जिन्होंने विजयों द्वारा विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, राजराज आदि शासक यद्यपि अत्यन्त सफल सम्राट प्रमाणित हुए किन्तु इनके कृत्यों की स्मृति उतनी प्रभावशाली व स्थायी प्रमाणित नहीं हुई जितनी अशोक की। इसी कारण से एच. जी. वेल्स ने अशोक के विषय में लिखा है, ''**प्रत्येक युग तथा प्रत्येक राष्ट्र ऐसे राजा को प्रस्तुत नहीं कर सकता। विश्व इतिहास में आज तक भी, अशोक की समता किसी से नहीं की जा सकती।**'' किन्तु फिर भी कुछ इतिहासकारों ने अशोक की तुलना कान्सटेण्टाइन, मार्क्स आरीलियस, एल्फ्रेड, शार्लमेन, उमर खलीफा व अकबर आदि राजाओं से की है।

इस प्रकार, इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं है कि अशोक विश्व का महानतम सम्राट था तथा इसकी समता किसी भी सम्राट से नहीं की जा सकती। अशोक को विश्वव्यापी सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं—

1. **अशोक का व्यक्तित्व एवं आदर्शवादिता**—अशोक बचपन से ही अत्यन्त योग्य व मेधावी था। उसकी क्षमताओं को पहचानकर ही बिन्दुसार ने उसे साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में हुए विद्रोह को दबाने के लिए भेजा था, जिसमें उसने सफलता प्राप्त की थी।

   अशोक एक महान आदर्शवादी सम्राट भी था तथा उसकी आदर्शवादिता संकीर्ण विचारों पर आधारित न थी। अशोक ने सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक प्रत्येक क्षेत्र में महान आदर्शों का पालन किया। सामाजिक क्षेत्र में अशोक ने जन कल्याण के कार्यों को करते हुए उसे सुख एवं समृद्धि के पथ पर अग्रसारित किया तथा 'विश्वशान्ति' के सिद्धान्त से अवगत कराया। धार्मिक क्षेत्र में अशोक ने जिस उदारता एवं सहिष्णुता का परिचय दिया उसका दूसरा उदाहरण विश्व इतिहास में कहीं भी प्रतिबिम्बित नहीं होता। ऐसे उच्च आदर्शों का पालन करके अशोक का महान बनना स्वाभाविक ही था।

2. **महान विजेता**—अशोक एक युद्ध विजेता के रूप में उतना प्रसिद्ध नहीं है जितना कि धम्म विजेता के रूप में। कलिंग विजय के पश्चात् अशोक ने रणभेरी के स्थान पर धर्मभेरी के घोष से विजय प्राप्त की। अन्य शासकों की भाँति अशोक ने तलवार से नहीं वरन् शान्ति व अहिंसा के सुदृढ़ अस्त्रों से साम्राज्य विस्तार किया। निःसन्देह वह एक महान विजेता था जो रक्तपात के स्थान पर विजित व विजेता दोनों को ही 'धम्म' से लाभान्वित कराता था। इसी कारण डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी ने भी उसे महान विजेता बताया है।

3. **राष्ट्रीय एकता प्रदान करना**—चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधने के प्रयत्न को अशोक ने पूर्ण किया। इस प्रकार पालि भारत की राष्ट्रभाषा बन गयी। भाषा के अतिरिक्त अन्य सांस्कृतिक कार्यकलापों के द्वारा भी उसने राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ता प्रदान की।

4. **महान शासक**—अशोक एक महान शासक था। उसका शासन भी उसकी आध्यात्मिकता से परिपूर्ण था। अशोक ने अपने उज्ज्वल चरित्र एवं उच्च आदर्शों को प्रस्तुत करके अपने राज्याधिकारियों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया तथा जनता को सत्य एवं प्रकाश के मार्ग की ओर अग्रसर किया। अत्यन्त वैभव व शक्ति होने पर भी अशोक ने सरल एवं नैतिक जीवन व्यतीत कर जनता के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया। अशोक प्रजा को अपनी सन्तान की तरह चाहता था इसका प्रमाण

इस तथ्य से भी मिलता है कि उसने यह घोषणा कराई थी कि प्रजा के विषय में उसे किसी भी समय सूचना दी जा सकती है।

5. **उदारता एवं लोकहित-कार्य**—अशोक न केवल मानव वरन् सम्पूर्ण प्राणि जगत के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता था। यही कारण है कि अशोक ने पशु-पक्षियों के वध पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। उदारता के अतिरिक्त अशोक ने अनेक लोकहित के कार्य किये। कालसी के शिलालेख में उसके इन कार्यों का वर्णन मिलता है। इस लेख में वर्णन किया गया है कि **अशोक ने छायादार वृक्ष लगवाये, धर्मशालाएँ बनवायीं, कुएँ खुदवाये। इसके अतिरिक्त मनुष्य व पशुओं के लिए उपयोगी औषधियों व औषधालयों का भी इन्तजाम कराया।** यह सब कार्य अशोक ने मनुष्य व पशुओं के सुख व हित के लिए किया।
6. **धार्मिक नीति एवं धर्म सहिष्णुता**—अशोक को सर्वाधिक प्रसिद्धि उसकी धार्मिक नीति एवं धार्मिक सहिष्णुता के कारण ही प्राप्त हुई। अशोक का महत्त्व एक शासक की अपेक्षा एक धर्म प्रचारक के रूप में अधिक है। कलिंग युद्ध के पश्चात् चण्डाशोक अथवा कालाशोक, धम्माशोक बन गया तथा बौद्ध धर्म को ग्रहण कर उसे एक नवीन रूप में जनता के समक्ष अशोक ने प्रस्तुत किया। **अशोक ने चार आर्य सत्य व कठोर अष्टांगिक मार्ग के स्थान पर बौद्ध-धर्म का एक सरल व रोचक रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत किया।** अशोक ने माता-पिता व गुरुजनों की सेवा करना, ब्राह्मणों, श्रमणों, सम्बन्धियों, मित्रों, वृद्धों के प्रति दान, दया तथा दासों के साथ अच्छा व्यवहार करने को ही धर्म का पालन करना बताया। साथ ही उसने पाप से दूर रहने को कहा। इस प्रकार उसकी धार्मिक नीति व धार्मिक सहिष्णुता स्पष्ट होती है।
7. **कर्त्तव्यनिष्ठ शासक**—अशोक में कर्त्तव्यनिष्ठा का प्रबल भाव था तथा कर्त्तव्यों को पूरा करने में वह असाधारण शक्ति का प्रमाण देता था। उसकी निश्चयात्मक घोषणा थी कि सम्पूर्ण प्रजा के कल्याण साधन से अधिक महत्त्व का कोई दूसरा कार्य नहीं है। उसके लिए ऐश्वर्य और यश का वहीं तक मूल्य था जहाँ तक उनके द्वारा लोगों में सदाचार, सद्भाव तथा सुख बढ़ाया जा सकता था। उसका साम्राज्य काफी विशाल था, तथापि उसके प्रत्येक भाग तथा प्रत्येक वर्ग की जनता से स्वयं सम्पर्क रखने को वह बहुत महत्त्व देता था। उसने घोषणा की थी, "मैं जो कुछ भी पराक्रम करता हूँ वह उस ऋण को चुकाने के लिए है जो सभी प्राणियों का मुझ पर है।" वह अपने अधिकारियों को भी यही कहता था कि प्रजा की समुचित रक्षा करना उनका धर्म है। 232 ई० पू० में अशोक की मृत्यु हो गई।

प्र.9. अशोक की धार्मिक नीति कैसी थी? उसके द्वारा स्थापित 'धम्म' का भी वर्णन कीजिए।
How was Ashoka's religious policy? Also describe his 'Dhamma'.
***अथवा* 'अशोक के धम्म' से आप क्या समझते हैं?** **(2021)**
***Or* What do you understand by 'Ashoka's Dhamma'?**

उत्तर

अशोक की धार्मिक नीति
(Ashoka's Religious Policy)

अशोक अपने प्रारम्भिक काल में ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी' के विवरण के आधार पर यह स्पष्ट है कि वह भगवान शिव का उपासक था। अन्य हिन्दू शासकों की भाँति वह अपने खाली समय में विहार यात्राओं पर निकलता था। अपनी प्रजा के मनोरंजन हेतु वह विभिन्न प्रकार की गोष्ठियों एवं प्रीतिभोजों का आयोजन करता था, जिसमें मांसाहारी भोजन बनता था। इसके लिए राजकीय पाकशाला में बहुत-से पशु-पक्षियों की प्रतिदिन हत्या की जाती थी। सिंहली अनुश्रुतियों-दीपवंश व महावंश के अनुसार अशोक को उसके शासन के चौथे वर्ष 'निग्रोध' नामक सात वर्षीय भिक्षु ने बौद्ध मत में दीक्षित किया। तत्पश्चात् मोग्गलिपुत्ततिस्स के प्रभाव से वह बौद्ध बन गया।

अशोक की धार्मिक नीति के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण महत्त्व पूर्ण हैं—

1. **उदार धार्मिक नीति**—अशोक उदार धार्मिक नीति का पोषक था। इस बात के प्रमाण हैं कि अशोक की दानशीलता से बौद्ध धर्म को न मानने वाले लोगों को बहुत लाभ हुआ। उसने बरोचर (गया जिला) पहाड़ी पर आजीवक सम्प्रदाय के संन्यासियों के निवास के लिए कुछ गुफाएँ बनवाई थीं। यवनजातीय तुषास्प को अशोक ने काठियावाड़ प्रान्त का राज्यपाल बनाया। राजतरंगिणी के विवरण के अनुसार ज्ञात होता है कि अशोक ने कश्मीर में विजयेश्वर नामक एक शैव मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था तथा उसके भीतर दो समाधियाँ निर्मित करवाई थीं।

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि अशोक धार्मिक सहिष्णु था। अशोक के काल में हमें किसी भी तनाव या साम्प्रदायिक संघर्ष के स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलते हैं। वस्तुत: यह उसकी उदार धार्मिक नीति का ही परिणाम था कि वह अपने विशाल साम्राज्य में एकता स्थापित करने में सफल रहा। एक नया धर्म बनाने या अपने धर्म को बलपूर्वक सबसे स्वीकार कराने के स्थान पर उसने उदार नीति का अनुसरण किया। उसने ऐसे मार्ग का अनुसरण किया, जिससे स्वस्थ और सुव्यवस्थित विकास की सम्भावना थी।

2. **विभिन्न धर्मों के प्रति दृष्टिकोण**—अशोक अन्य धर्मों का भी बहुत सम्मान करता था। अशोक द्वारा व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बावजूद अपने विशाल साम्राज्य में उसने कहीं भी किसी दूसरे धर्म या सम्प्रदाय के प्रति अनादर या असहिष्णुता प्रदर्शित नहीं की। उसके अभिलेख इस बात के प्रमाण हैं कि अपने राज्य के विभिन्न मतों तथा सम्प्रदायों के प्रति वह सदैव उदार एवं सहनशील बना रहा। उसने बलपूर्वक किसी को भी अपने मत में दीक्षित करने का प्रयत्न नहीं किया। सातवें शिलालेख में वह अपनी धार्मिक इच्छा व्यक्त करता है कि सब मतों के व्यक्ति सब स्थानों पर रह सकें, क्योंकि वे सभी आत्म-संयम एवं हृदय की पवित्रता चाहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अशोक ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि सभी धर्मों में सच्चाई का अंश विद्यमान है और यह समझ लेने के उपरान्त उसका सभी मतों के प्रति उदार होना स्वाभाविक ही था।

   बारहवें शिलालेख में लिखित विवरण में वह कहता है-मनुष्य को अपने धर्म का आदर और दूसरे धर्म की अकारण निन्दा नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने पर मनुष्य अपने सम्प्रदाय की वृद्धि करता है तथा दूसरे के सम्प्रदाय का उपकार करता है। इसके विपरीत कृत्य करता हुआ वह अपने सम्प्रदाय को कमजोर करता तथा दूसरे के सम्प्रदाय का अपकार करता है। जो कोई अपने सम्प्रदाय के प्रति भक्ति और उसकी उन्नति की इच्छा से दूसरे के धर्म की निन्दा करता है तो वह वास्तव में अपने सम्प्रदाय की ही बहुत बड़ी हानि करता है।...लोग एक-दूसरे के धम्म को सुनें। इससे सभी सम्प्रदाय बहुश्रुत (अधिक ज्ञान वाले) होंगे तथा संसार का कल्याण होगा। अशोक की ऐसी मान्यता से स्पष्ट है कि एक सच्चे अन्वेषक की भाँति उसने यह अनुभव कर लिया था कि विभिन्न मतों की संकीर्ण बुद्धि ही परस्पर कलह एवं विवाद का कारण बनती है। अत: वह सबको उदार दृष्टिकोण अपनाने का उपदेश देता है।

अशोक की धम्म नीति (Dhamma Policy of Ashoka)

अशोक ने तत्कालीन सामाजिक तनाव और संकीर्णतावादी झगड़ों को समाप्त करने तथा अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न भागों के मध्य सौहार्द पूर्व सम्बन्धों को विकसित करने के लिए 'धम्म' का प्रतिपादन किया। वस्तुत: 'धम्म' संस्कृत के 'धर्म' का ही रूपान्तरित स्वरूप है। अशोक की धम्म नीति को हम निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं—

1. **समस्त धर्मों का सार**—अशोक द्वारा प्रतिपादित धम्म सभी धर्मों का सार था। उस पर सभी धर्मों का प्रभाव था। अशोक संसार को अमर मानता था और इसके सभी प्राणी उसी शृंखला की कड़ी थे। अशोक की उदारता इतनी सार्वभौम थी कि उसने कभी अपना व्यक्तिगत धार्मिक विचार जनता पर थोपने का प्रयास नहीं किया। जिस धम्म का रूप उसने संसार के सामने रखा, वह प्रमाणत: सारे धर्मों का सार है। कर्त्तव्य की नितान्त वृहद् व्याख्या तथा सार्वभौम धर्म के सर्वप्रथम निरूपण का श्रेय अशोक को ही देना होगा। अशोक अपने विचारों में अपने समय से बहुत आगे था। उसके 'धम्म' ने अनेक सुधारवादी आन्दोलनों की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है।
2. **सर्वग्राह्य आचार-तत्त्वों का समावेश**—अपनी धम्म नीति के अन्तर्गत अशोक ने आचारमूलक तत्त्वों को प्रोत्साहित किया। उसने सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की शिक्षा दी। अशोक के मतानुसार मनुष्यों को दूसरे के धर्म को सुनना और समझना चाहिए। दूसरे धर्म की निन्दा करने वाला मनुष्य अपने धर्म को हानि पहुँचाता है। मनुष्य को वाक्संयमी होना चाहिए। ब्राह्मणों और श्रमणों को समान रूप से सम्मानित करना चाहिए। उसके 'धम्म' का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा था। उसके सम्बल उदारता और अनुग्रह थे। 'धम्म' उसके सम्पूर्ण शासन की आधारपीठिका था। वस्तुत: अशोक की धम्म नीति में सर्वग्राह्य आचार-तत्त्वों का समावेश था।
3. **आचरणों का विधान**—अशोक की धम्म नीति में आचरणों का विधान सन्निहित है। दया, सत्य, साधुता, शौच, संयम आदि के अतिरिक्त कृतज्ञता, दृढभक्ति और दान को भी उसने धम्म के गुणों में सम्मिलित किया है। द्वितीय लघुशिलालेख

में अशोक कहता है—माता-पिता की उचित सेवा, सर्वप्राणियों के प्रति आदर-भाव तथा सत्यता गम्भीर सिद्धान्त हैं। इन धर्म-गुणों की अभिवृद्धि होनी चाहिए। शिष्यों को गुरुओं का उचित आदर करना चाहिए। सम्बन्धियों से उचित एवं उत्तम व्यवहार करना चाहिए। ग्यारहवें शिलालेख में अशोक कहता है—दास और भृत्यों तथा वेतनभोगी सेवकों के साथ सही व्यवहार, माता-पिता की सेवा, मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों, श्रमणों और साधुओं के प्रति उदारता, प्राणियों में संयम और पशुबलि से विरक्ति। उसका 'धम्म' मूल रूप से आचरणों का विधान था। अशोक ने सम्पत्ति (उचित व्यवहार) की प्रशंसा की है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक की धार्मिक नीति व धम्म नीति सारगर्भित मानवीय तत्त्वों से परिपूर्ण थी।

प्र.10. धम्म प्रचार हेतु अशोक द्वारा किए गए उपाय क्या थे? विस्तार से वर्णन कीजिए।
What were the measures taken by Ashoka to promote Dhamma? Describe in detail.

***अथवा* अशोक ने धम्म के प्रचार-प्रकार के लिए क्या उपाय किए?** **(2021)**

***Or* What did Ashoka do for the promotion of Dhamma?**

उत्तर

अशोक द्वारा धम्म प्रचार हेतु किए गए उपाय
(Measures taken by Ashoka to Promote Dhamma)

अशोक द्वारा धम्म प्रचार हेतु किए गए उपाय निम्नलिखित हैं—

1. **धर्म सम्बन्धी यात्राएँ**—अशोक ने धम्म प्रचार हेतु यात्राएँ प्रारम्भ कीं। वह अपने अभिषेक के दसवें वर्ष बोधगया की यात्रा पर गया। यह अशोक की पहली धर्म यात्रा थी। इसके पहले वह दूसरे राजाओं की भाँति विहार-यात्राओं पर जाया करता था, परन्तु कलिंग युद्ध के बाद उसने विहार यात्राएँ बन्द कर दीं तथा धर्म यात्राओं की शुरुआत कर दी। इन यात्राओं में अशोक ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन, दान, वृद्धों का दर्शन, जनपद के लोगों का दर्शन, धर्म का उपदेश और धर्म के सम्बन्ध में उनसे प्रश्न आदि करता था। अपने अभिषेक के बीसवें वर्ष अशोक लुम्बिनी ग्राम गया तथा वहाँ का कर घटाकर 1/8 कर दिया। इसी प्रकार नेपाल की तराई में स्थित निग्लीवा में उसने कनकमुनि के स्तूप का सौन्दर्यकरण करवाया। अशोक के इन कार्यों ने जनता को बहुत प्रभावित किया। फलस्वरूप जनता बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुई।
2. **उपदेश के लिए व्यवस्था**—अशोक ने अपने साम्राज्य में धर्म-प्रचार के उद्देश्य से धर्मश्रावन तथा धर्मोपदेश की व्यवस्था करवाई। उसके साम्राज्य के विभिन्न अधिकारी स्थान-स्थान पर घूमकर धर्म के बारे में लोगों को शिक्षा देते तथा राजा की ओर से जो धर्म-सम्बन्धी घोषणाएँ की जाती थीं, उनका जनता में प्रचार-प्रसार करते थे।
3. **धम्म प्रचार हेतु अधिकारियों की नियुक्ति**—अशोक का साम्राज्य बहुत विस्तृत था। इसिलए यह एक व्यक्ति के लिए आसान नहीं था कि वह सभी स्थानों पर जाकर धर्म का प्रचार कर सके। इसीलिए उसने अपने साम्राज्य के उच्च अधिकारियों को भी धर्म प्रचार के काम में लगा दिया। स्तम्भ-लेख तीन एवं सात से ज्ञात होता है कि उसने व्युष्ट, रज्जुक, प्रादेशिक तथा युक्त नामक अधिकारियों को जनता के बीच जाकर धर्म के प्रचार एवं उपदेश करने का आदेश दिया था। ये अधिकारी प्रति पाँचवें वर्ष अपने-अपने क्षेत्रों में दौरे पर जाया करते थे तथा सामान्य प्रशासकीय कार्यों के साथ जनता में धर्म का प्रचार किया करते थे।
4. **स्वर्गीय सुखों का प्रदर्शन**—अशोक ने धर्म को लोकप्रिय बनाने हेतु जनता के मध्य मान्यताप्राप्त उन स्वर्गीय सुखों का प्रदर्शन करवाया जो मनुष्य को देवत्व प्राप्त करने पर स्वर्गलोक में प्राप्त होते हैं। इनमें विमान, हस्ति, अग्निस्कन्ध आदि दिव्य रूपों को प्रदर्शित किया गया। इसके पीछे यह भावना थी कि मनुष्य यदि धर्म के अनुसार आचरण करेगा तो वह देवत्व को प्राप्त कर स्वर्ग-लोक में निवास करेगा तथा इन सुखों का उपभोग करेगा।

   ये प्रदर्शन वर्तमान में भारत के विभिन्न भागों में दशहरा एवं अन्य धार्मिक उत्सवों के अवसर पर निकाली जाने वाली चौकियों की भाँति प्रतीत होते हैं। इन प्रदर्शनों से जहाँ एक ओर जनता का मनोरंजन होता था वहीं दूसरी ओर पारलौकिक सुखों की लालसा से वह धर्म की ओर उन्मुख होती थी।

5. **विशिष्ट अधिकारियों की नियुक्ति**—कालान्तर में अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु विभिन्न अधिकारियों का एक नवीन वर्ग बनाया जिसे धर्म-महापात्र कहा जाता था। अशोक के पाँचवें शिलालेख में उल्लेख है—"प्राचीनकाल में धर्म-महापात्र कभी नियुक्त नहीं हुए थे। मैंने (अशोक) अपने अभिषेक के 13वें वर्ष धर्म-महापात्र नियुक्त किए हैं।" इनका एक कार्य विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच के द्वेष-भाव को समाप्त कर धर्म की एकता पर जोर देना था। उनका प्रमुख कर्त्तव्य धर्म की रक्षा, धर्म की वृद्धि करना बताया गया है। धर्ममहापात्र राजपरिवार के सदस्यों से धर्म के लिए धनादि दान में प्राप्त करते थे तथा राजा द्वारा जो धन दान में दिया जाता था उसकी समुचित व्यवस्था करके उसे धर्म प्रचार के काम में नियोजित करते थे।
6. **धर्म के सिद्धान्तों का उत्कीर्णन**—अशोक ने धर्म के प्रचार हेतु शिलाओं एवं स्तम्भों पर धर्म-सिद्धान्तों को उत्कीर्ण करवाया। ये लेख उसके विशाल साम्राज्य के प्रत्येक कोने में फैले थे। इन लेखों में धर्म के उपदेश एवं शिक्षाएँ लिखी होती थीं। उनकी भाषा संस्कृत न होकर पालि थी और यह उस समय आम जनता की भाषा थी। इनके दो उद्देश्य थे—पहला पाषाणों पर खुदे होने से ये लेख चिरस्थायी होंगे, दूसरा उसके परवर्ती पुत्र-पौत्रादि प्रजा के भौतिक एवं नैतिक लाभ के लिए उनका अनुसरण कर सकेंगे।
7. **मानव व पशु कल्याणार्थ कार्य**—अशोक ने सर्वप्रथम पशु-पक्षियों की हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसके पश्चात् अशोक द्वारा अपने राज्य तथा विदेशी राज्यों में भी मनुष्यों तथा पशुओं की चिकित्सा की अलग-अलग व्यवस्था करवाई गई। सातवें स्तम्भ-लेख में अशोक कहता है— "मार्गों में मेरे द्वारा वट-वृक्ष लगाए गए। वे पशु एवं मनुष्यों को छाया प्रदान करेंगे। आम्रवाटिकाएं लगाई गईं। आधे-आधे कोस की दूरी पर कुएँ खुदवाए गए और विश्राम गृह बनवाए गए। मनुष्य तथा पशु के उपयोग के लिए प्याऊ चलाए गए·····मैंने यह इस उद्देश्य से किया है कि लोग धम्म का अनुकरण करें।" बौद्ध ग्रन्थ संयुक्त निकाय में फलदार वृक्ष लगवाने, कुएँ खुदवाने, प्याऊ चलवाने पुल बनवाने आदि को महान् पुण्य का कार्य बताया गया है। इन कार्यों को करने से मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। यह सम्भव है कि अशोक की प्रेरणा का स्रोत यही रहा हो।
8. **विदेशों में धर्म का प्रचार**—अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु विदेशों में भी प्रचारकों को भेजा। दूसरे तथा तेरहवें शिलालेख में अशोक उन देशों के नाम का उल्लेख करता है जहाँ उसने अपने दूत भेजे थे। इनमें दक्षिणी सीमा पर स्थित राज्य चोल, पाण्ड्य, सतियपुत्त, केरलपुत्त एवं ताम्रपर्णि (लंका) सम्मिलित हैं। तेरहवें शिलालेख में पाँच यवन राजाओं का उल्लेख है जिनके राज्यों में अशोक के धर्म प्रचारक गए थे—(1) अन्तियोक (सीरियाई नरेश), (2) तुरमय (मिस्री नरेश), (3) अन्तिकिनि (मेसीडोनियन राजा), (4) मग (एपिरस) और (5) अलिकसुन्दर (सिरौन)।

अन्तियोक सीरिया का राजा एन्टियोकस द्वितीय थियोस (ई०पू० 261-246) और तुरमय मिस्र का शासक टॉलेमी द्वितीय फिलाडेल्फस (ई०पू० 285-247) था। अन्तिकिन, मेसीडोनिया के एन्टिगोनस गोनाटास (ई०पू० 276-239) को माना जाता है। मग से आशय सीरियाई नरेश मगस (ई०पू० 300-250) से है। अलिकसुन्दर के बारे में कुछ सुनिश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् इसे एपिरस का अलेक्जैण्डर (ई०पू० 272-255) तथा कुछ इसे कोरिन्थ का अलैक्जैण्डर (ई०पू० 252-244) मानते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अशोक ने धम्म/धर्म प्रचार हेतु उन समस्त उपायों को अपनाया, जिनको वह अपना सकता था।

प्र.11. अशोक के साम्राज्य-विस्तार का वर्णन करते हुए उसकी विदेश नीति समझाइए।
Explaining the expansion of Ashoka's empire, describe his foreign policy.

उत्तर

अशोक का साम्राज्य-विस्तार
(Expansion of Ashoka's Empire)

अशोक के साम्राज्य-विस्तार को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा समझिए—

1. अशोक के अभिलेखों से उसके साम्राज्य विस्तार का पता चलता है। कि उसका साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में हिन्दूकुश से पूर्व बंगाल तक तथा उत्तर में हिमालय की तराई से दक्षिण में मैसूर तक विस्तृत था। कलिंग तथा सौराष्ट्र पर भी अशोक की

अधिकतर थी। डॉ० आर०एस० त्रिपाठी के अनुसार, "प्राचीन भारत का कोई सम्राट इतने विस्तृत भूखण्ड का स्वामी न था।" उत्तर-पश्चिम में दो स्थानों से अशोक के शिलालेख मिले हैं—

(i) पेशावर जिले में अवस्थित शाहबाजगढ़ी तथा

(ii) हजारा जिले में अवस्थित मानसेहरा। इनके अतिरिक्त कन्दहार के समीप शरेकुना व जलालाबाद के निकट काबुल नदी के उत्तरी किनारे पर स्थित 'लघमान' से अशोक के अरामेइक लिपि के लेख प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि उसके साम्राज्य में हिन्दूकुश, एरिया (हेरात), आरकीसिया (कन्दहार) तथा जेड्रीसिया आदि सम्मिलित थे। इन प्रदेशों को सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य को दिया था।

2. उत्तर भारत में कालसी (उत्तराखण्ड के देहरादून जिले में स्थित) से अशोक का शिलालेख प्राप्त हुआ है। रुमिन्ददेई व निग्लीवा के स्तम्भ लेखों से स्पष्ट है कि उत्तर में हिमालय क्षेत्र का एक बड़ा भाग (नेपाल की तराई) भी उसके साम्राज्य का हिस्सा था। दक्षिण की ओर वर्तमान कर्नाटक राज्य के ब्रह्मगिरि (चित्तलदुर्ग जिला), मास्की (रायचूर जिला), जटिग-रामेश्वरम् (चित्तलदुर्ग जिला), सिद्धपुर (ब्रह्मगिरि से लगभग एक मील पश्चिम में स्थित) से अशोक के लघुशिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनसे उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा कर्नाटक राज्य तक जाती प्रतीत होती है। द्वितीय शिलालेख में अशोक अपनी दक्षिणी सीमा पर स्थित सतियपुत्त, केरलपुत्त, चोल, पाण्ड्य तथा ताम्रपर्णि के नाम का उल्लेख करता है। ये सभी तमिल राज्य थे तथा उसके साम्राज्य के बाहर थे।
3. तेरहवें शिलालेख में अशोक के निकटवर्ती राज्यों की सूची—रठिक, भोजक, योन, कम्बोज, गन्धार, नाभक, नाभपम्ति, पितिनिक, आन्ध्र, पारिमिदस इत्यादि। इनमें यवन, कम्बोज और गान्धार प्रदेश उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित थे। भोज बरार व कोंकण में तथा रठिक या राष्ट्रिक महाराष्ट्र में निवास करते थे। नाभक या नाभपमिस राज्य पश्चिमी तट तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के बीच ही कहीं बसा था। पितिनिक पैठन में तथा आन्ध्र राज्य कृष्णा और गोदावरी नदियों के मध्य में स्थित था।
4. **ह्वेनसांग** के अनुसार समतट, पुण्ड्रवर्धन, कर्णसुवर्ण आदि में भी अशोक के स्तूप थे। इन सभी अभिलेखों की प्राप्ति स्थानों में यह स्पष्ट होता है कि अशोक का साम्राज्य उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (अफगानिस्तान) से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक और पश्चिम में काठियावाड़ से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत था। पश्चिम में काठियावाड़ में जूनागढ़ के निकट गिरनार पहाड़ी तथा उसके दक्षिण में महाराष्ट्र के थाना जिले के सोपारा नामक स्थान से भी अशोक के शिलालेख प्राप्त होते हैं। बंगाल की खाड़ी के समीप स्थित कलिंग राज्य को अशोक ने अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में जीता था। उड़ीसा के दो स्थानों, धौली और जौगढ़ से भी अशोक के शिलालेख प्राप्त होते हैं। बंगाल में ताम्रलिप्ति से प्राप्त स्तूप अशोक के आधिपत्य की सूचना देता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक का साम्राज्य अत्यन्त व्यापक क्षेत्र में विस्तृत था।

अशोक की विदेश नीति
(Ashoka's Foreign Policy)

अशोक की धम्म नीति का उसकी विदेश नीति पर विशेष प्रभाव पड़ा। अशोक की विदेश नीति को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं—

1. अशोक अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति एवं सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों पर व्यवहार करता था। वह विदेशी राज्यों के साथ सम्बन्धों के महत्त्व को भली-भाँति समझता था। साम्राज्य के पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमा पर स्थित राज्यों के साथ अशोक ने राजनयिक एवं मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। चन्द्रगुप्त के समय में सेल्यूकस तथा मौर्य राजवंशों के मध्य मैत्री सम्बन्ध था और दूतों का आदान-प्रदान होता था। यह परम्परा बिन्दुसार के समय में भी बनी रही। मिस्री नरेश टॉलेमी फिलाडेल्फस ने जो अशोक का समकालीन था, उसके दरबार में अपना राजदूत भेजा था।
2. अशोक के तेरहवें शिलालेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने पाँच यवन राज्यों में अपने धर्म प्रचारक भेजे थे। इनका मुख्य उद्देश्य सम्राट की धम्मनीति के बारे में वहाँ के लोगों को परिचित कराना था। यवन राज्यों में उसके प्रचारकों को सफलता

मिली। अपने दूसरे शिलालेख में अशोक यह बताता है कि उसने इन राज्यों में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए अलग-अलग चिकित्सा की व्यवस्था कराई थी। अशोक ने अपनी विदेश नीति के आधार पर दक्षिणी सीमा पर स्थित चार तमिल राज्यों-चोल, पाण्ड्य, सतियपुत्त तथा केरलपुत्त और ताम्रपर्णि अर्थात् लंका में भी अपने धर्म-प्रचारक भेजे थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार उसने चोल तथा पाण्ड्य राज्यों में अशोक द्वारा निर्मित एक-एक स्तूप देखे थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक के प्रचारक दक्षिणी राज्यों में भी गए थे।

3. अशोक ने अपने पड़ोसी राज्यों के प्रति अपने विचारों को कलिंग लेख में इस प्रकार व्यक्त किया है—'उन्हें मुझसे डरना नहीं चाहिए, वे मुझ पर विश्वास करें। उनको मुझसे सुख मिलेगा, दुःख नहीं। उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि राजा यथासम्भव उन्हें क्षमा करेगा। उन्हें मेरे कहने से धर्म का अनुसरण करना चाहिए, जिससे इस लोक तथा परलोक का लाभ प्राप्त हो।' इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि अशोक अपने पड़ोसी राज्यों के साथ शान्ति, सहिष्णुता एवं बन्धुत्व के आधार पर सम्बन्ध बनाए रखना चाहता था और वह इसमें सफल भी हुआ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अशोक की विदेश नीति शान्ति व सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों पर आधारित थी।

प्र.12. मौर्य साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे? विस्तार में समझाइए।
What were the causes of the decline of Maurya empire? Explain in detail.

उत्तर

मौर्यों के पतन के कारण
(Causes of the Downfall of the Mauryas)

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य को अशोक ने उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाया, परन्तु अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य पर संकट के घने बादल मँडराने लगे तथा शीघ्र ही इस शक्तिशाली एवं प्रसिद्ध साम्राज्य का पतन हो गया। अशोक के उत्तराधिकारी, उसकी मृत्यु के पश्चात् पचास वर्षों तक भी अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण न रख सके। 184 ई. पू. में अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने हत्या कर दी तथा 'शुंग वंश' की स्थापना कर मौर्य साम्राज्य का अन्त कर दिया। **डॉ० रोमिला थापर** ने मौर्यों के पतन के लिए उत्तरदायी कारणों के विषय में लिखा है, **"मौर्य साम्राज्य के पतन की सन्तोषजनक व्याख्या सैनिक अकर्मण्यता, ब्राह्मण रोष, सार्वजनिक विद्रोह या आर्थिक दबाव के आधार पर नहीं की जा सकती। कारण कहीं अधिक मूलभूत थे और इनमें उपर्युक्त कारणों से कहीं अधिक मौर्य जीवन का विस्तृत परिप्रेक्ष्य सम्मिलित था।"**

मौर्यों के पतन के लिए निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे—

1. **निर्बल एवं अयोग्य उत्तराधिकारी**—मौर्यों के पतन के लिए उत्तरदायी कारणों में सर्वप्रथम अशोक के उत्तराधिकारियों का निर्बल एवं अयोग्य होना था। राजतन्त्रीय शासक प्रणाली में राज्य की सफलता एवं विफलता उसके शासक की योग्यता अथवा अयोग्यता पर निर्भर करती है। अशोक के उत्तराधिकारियों के अयोग्य होने पर उनका पतन होना स्वाभाविक ही था। अशोक के उत्तराधिकारी न तो उसके समान धम्मघोष में और न ही चन्द्रगुप्त के समान भेरीघोष में सफलता प्राप्त कर सके। रोमिला थापर ने भी अशोक के अयोग्य उत्तराधिकारियों को मौर्यों के पतन का प्रमुख कारण माना है।
2. **केन्द्रीय शासन का दुर्बल होना**—अशोक के उत्तराधिकारियों के अयोग्य होने के कारण केन्द्रीय शासक का कमजोर होना स्वाभाविक ही था। प्रथम तीन मौर्य-शासकों (चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार व अशोक) द्वारा राजनीतिक एवं प्रशासनिक संगठन की योजना इस प्रकार की गयी थी कि इसमें केन्द्र के कठोर नियन्त्रण का होना आवश्यक था। केन्द्र से ही पूरे साम्राज्य के शासन तन्त्र में शक्ति का प्रसारण होता था। मौर्य शासन प्रणाली इतनी केन्द्रीकृत थी कि सिर्फ एक योग्य शासक ही अपने व अपनी प्रजा के लिए इसका उपयोग कर सकता था। इसी सीमा तक एक कमजोर शासक के अधीन यह दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती थी। ऐसे शासकों (निर्बल) ने केन्द्रीय नियन्त्रण खो दिया और इस प्रकार क्षयकारी शक्तियों को इसे खण्डित व नष्ट करने का अवसर प्राप्त हो गया। इस प्रकार कमजोर शासकों के कारण केन्द्रीय शासन दुर्बल हो गया व केन्द्रीय शासन के निर्बल होते ही मौर्य साम्राज्य ढह गया।
3. **साम्राज्य का विभाजन**—केन्द्रीय सरकार के निर्बल होते ही अनेक प्रान्तों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। अपने शासन के अन्तिम दिनों में शाही संगठन पर अशोक की पकड़ ढीली हो गयी थी। तक्षशिला में जहाँ उसके पिता के शासन काल में विद्रोह हो चुका था, मन्त्रियों के दमन के परिणामस्वरूप विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। वहाँ का विद्रोह दबाने के

लिए राजकुमार कुणाल को भेजा था। अशोक के निधन के पश्चात् कश्मीर व गान्धार स्वतन्त्र हो गये थे। जो शासक सीमा प्रान्तों में नियुक्त थे वे भी केन्द्रीय शासन की इस दुर्बलता से लाभ उठाकर प्राय: स्वतन्त्र हो गये थे।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों का विचार है कि अशोक की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य का दो भागों में विभाजन भी मौर्यों के पतन के लिए उत्तरदायी था।

4. **प्रान्तीय गवर्नरों के अत्याचार**—मौर्य शासकों ने प्रशासन की सुविधा के लिए अपने साम्राज्य को अनेक भागों में विभक्त कर रखा था। इन प्रान्तों के शासक अत्याचारी थे। इसका प्रमाण बिन्दुसार के शासनकाल में विभिन्न प्रान्तों में हुए विद्रोह हैं। दिव्यावदान से ज्ञात होता है कि जब तक्षशिला में हुए विद्रोह को दबाने के लिए अशोक गया तो वहाँ की जनता ने उससे निवेदन किया कि **"न तो हम कुमार के विरुद्ध हैं और न राजा बिन्दुसार के, परन्तु दुष्ट आमात्य हमारा अपमान करते हैं।"**
5. **प्रजा का विद्रोह**—प्रान्तीय गवर्नरों के अत्याचारों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे कारण थे जिनसे प्रजा मौर्यों के विरुद्ध हो गई। इस सम्बन्ध में **प्रो. निहाररंजन रे** ने लिखा है कि वास्तव में पुष्यमित्र शुंग का विद्रोह प्रजा का विद्रोह था। प्रो. रे के विचार से इस विद्रोह का कारण मौर्य अत्याचार व मौर्यों का विदेशी विचार ग्रहण करना, विशेष रूप से कला के क्षेत्र में। इस मत का आधार यह है कि साँची व भरहुत कला (शुंग कला) लोक परम्परा के अनुकूल तथा भारतीय है किन्तु मौर्य कला इस लोक कला से भिन्न है व विदेशी कला से प्रभावित है। प्रो. रे का मानना है कि विद्रोह का दूसरा कारण अशोक द्वारा समाजों का निषेध था, जिससे जनता में अशोक के विरुद्ध रोष उत्पन्न हो गया।
6. **अत्याचारी शासक**—प्रान्तीय शासकों के अतिरिक्त अशोक के अनेक उत्तराधिकारी भी अत्यन्त अत्याचारी थे। गार्गी संहिता में मौर्यशासक शालिशुक के लिए लिखा है कि वह निरंकुश व अत्याचारी शासक था तथा कथन में सदाचारी और व्यवहार में पूर्णत: दुराचारी था। अत: ऐसे शासकों का विरोध होना स्वाभाविक ही था।
7. **दरबार के षड्यन्त्र**—मौर्य दरबार के सदस्य भी अनेक गुटों में विभक्त थे, तथा अपने हितों व पारस्परिक संघर्ष में वे राष्ट्रीय हितों को भी भूल जाते थे। षड्यन्त्रों के कारण को अनेक बार कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अशोक द्वारा राजसिंहासन पर अधिकार करने का प्रयास व उसके कारण हुआ गृह-युद्ध है।
8. **विदेशी आक्रमण**—मौर्यों के पतन का एक अन्य कारण विदेशी आक्रमण थे। जिन मध्य व पश्चिमी एशिया के यूनानियों को अशोक ने अपना मित्र व शान्तिवादी बनाने का प्रयास किया था और जो अशोक के धर्मोपदेश से नहीं, वरन् उसके पीछे छिपी राजनीतिक शक्ति से दबे व मित्र बने रहे, उन्होंने भारत की केन्द्रीय शक्ति के दुर्बल और यहाँ के राजनीतिक जीवन को विशृंखलित पाते ही आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। शालिशुक के शासन काल में ही यवनों ने भारत पर आक्रमण की तैयारी प्रारम्भ कर दी तथा उसके पश्चिमी द्वारों को खटखटाने लगे थे।
9. **अशोक की अहिंसात्मक नीति**—**डॉ. रायचौधरी** ने अशोक की अहिंसात्मक नीति की आलोचना करते हुए लिखा है कि अशोक ने इस नीति को इतने उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ अपनाया कि सैनिक दृष्टिकोण से राष्ट्र एकदम दुर्बल हो गया। उनका मत है कि अशोक की नीति प्रत्यक्ष रूप से उसकी मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य के तीव्र विघटन के लिए उत्तरदायी थी। अहिंसा की नीति न सिर्फ सैनिक अवनति का कारण बनी अपितु इसने सम्राट की नियन्त्रण शक्ति को भी कम कर दिया। अहिंसा की नीति के कारण ही भारत यूनानी आक्रमण का सामना करने में असमर्थ रहा। इस कथन को पूर्णत: सत्य स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि अशोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने हिंसा का पूर्णत: त्याग नहीं किया था, परन्तु फिर भी उसकी अहिंसात्मक नीति से मौर्य साम्राज्य कमजोर अवश्य हुआ।
10. **राष्ट्रीय भावना का अभाव**—कुछ विद्वानों का विचार है कि मौर्य साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण तत्कालीन प्रजा में राष्ट्रीयता की भावना का न होना था। इन विद्वानों में **डॉ. रोमिला थापर** प्रमुख हैं। डॉ. रोमिला थापर ने लिखा है कि मौर्यकाल में राजनीतिक दृष्टि से भारतीय एकता का विचार विद्यमान नहीं था, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि यूनानियों का प्रतिरोध संगठित रूप से नहीं किया गया था। चूँकि मौर्य साम्राज्य में कोई मौलिक राजनीतिक एकता नहीं थी इसलिए उसका राजनीतिक विघटन लगभग अनिवार्य था। डॉ. रोमिला थापर ने पुन: लिखा है कि "अत: मौर्यों के पतन का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय भावना के अभाव को दिया जाना चाहिए।"

11. **आर्थिक कारण**—कुछ इतिहासकारों ने मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था व आर्थिक स्थिति को मौर्यों के पतन के लिए उत्तरदायी माना है। **प्रो. कोशाम्बी** का मत है कि उत्तरकालीन मौर्यों के समय में अर्थव्यवस्था संकटग्रस्त थी। इसी कारण नये-नये कर लगाये गये थे, यहाँ तक कि वेश्याओं पर भी कर लगाया गया था। आर्थिक कारणों व करों की अधिकता ने निश्चित रूप से मौर्यों के पतन में सहायता दी होगी। करों की अधिकता से प्रजा में अवश्य ही रोष उत्पन्न हुआ होगा। इस प्रकार कह सकते हैं कि मौर्य साम्राज्य के अन्तिम राजनीतिक विघटन का सबसे बड़ा कारण यह था कि शाही वित्त व्यवस्था निरन्तर क्षीण होती जा रही थी।
12. **ब्राह्मण प्रतिक्रिया**—मौर्य साम्राज्य के पतन का एक कारण सूक्ष्म किन्तु गम्भीर था। यह था मौर्य साम्राज्य के विरोध में वैदिक प्रतिक्रिया। **महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री** ने भी इस विषय में लिखा है कि पुष्यमित्र का विद्रोह अशोक की बौद्ध धर्म के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति व उसके उत्तराधिकारियों की जैन मत के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति व उसके विरुद्ध ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया का परिणाम था।

प्र.13. कौटिल्य का सामान्य परिचय देते हुए अर्थशास्त्र को उनकी रचना मानने के सम्बन्ध में विभिन्न मतों की समीक्षा कीजिए।
Giving a general introduction of Kautilya, review the different views about Arthashastra being his creation.

उत्तर चाणक्य का वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था, किन्तु उसे 'कौटिल्य' के नाम से भी जाना जाता है। चाणक्य एक ब्राह्मण था, किन्तु अपनी योग्यता के बल पर मगध के शासक नन्दवंशीय धनानन्द का उन्मूलन उसी ने किया था। इस कार्य को पूर्ण करने में उसने चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता ली थी तथा नन्द वंश का उन्मूलन कर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य को ही मगध के राजसिंहासन पर बैठाया था। चाणक्य अर्थशास्त्र एवं राजनीति का प्रकाण्ड पण्डित था। चाणक्य ने 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें उसने अपने राजनीति के ज्ञान का परिचय दिया। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमन्त्री के रूप में कार्य किया था, अत: राजा के कर्त्तव्यों, प्रशासन इत्यादि का उसने इस ग्रन्थ में विस्तृत वर्णन किया है। चाणक्य ने भारत में जिस प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की वह इतनी सक्षम थी कि हजारों वर्षों के उपरान्त अकबर तथा उसके पश्चात् अंग्रेजों ने भी लगभग उसी के समान प्रशासनिक व्यवस्था को लागू किया था। प्रशासनिक व्यवस्था के अतिरिक्त मौर्यकालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर भी 'अर्थशास्त्र' से प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र मौर्यकालीन इतिहास पर प्रामाणिक जानकारी देने वाला एक प्रमुख ग्रन्थ है।
अर्थशास्त्र को कौटिल्य की रचना मानने के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इस मतभेद को हम निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं—

1. **अर्थशास्त्र को कौटिल्य की रचना न मानने वाले विद्वान**—विण्टरनित्ज, जाली, कीथ आदि विद्वान अर्थशास्त्र को कौटिल्य की रचना नहीं मानते। अर्थशास्त्र को कौटिल्य की रचना न मानने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं—
   (i) कौटिल्य का नामोल्लेख मेगस्थनीज नहीं करता जो चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा था। इस प्रकार कौटिल्य की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। पतंजलि ने भी, जो मौर्य शासन के परिचित थे, कौटिल्य का नामोल्लेख नहीं किया है।
   (ii) यह नगर प्रशासन तथा सैनिक प्रशासन की परिषदों का कोई उल्लेख नहीं करता। इसमें विदेशी नागरिकों के आचरण तथा उनकी देख-रेख के लिए भी कोई नियम निर्धारित नहीं किए गए हैं।
   (iii) अर्थशास्त्र में कौटिल्य के विचार अन्य पुरुष—'इति कौटिल्य:'—के रूप में व्यक्त किए गए हैं। यह कौटिल्य स्वयं इस ग्रन्थ का लेखक होता तो इस प्रकार लिखने की कोई आवश्यकता नहीं थी।
   (iv) अर्थशास्त्र में मौर्य साम्राज्य और शासनतन्त्र का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता जबकि यूनानी साक्ष्य इस पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं।
2. **अर्थशास्त्र को कौटिल्य की रचना बताने वाले विद्वान**—काशी प्रसाद जायसवाल, शाम शास्त्री, जैकोबी व स्मिथ जैसे विद्वान् अर्थशास्त्र को कौटिल्य की ही रचना मानते हैं। इस सम्बन्ध में अग्रलिखित बिन्दु महत्त्वपूर्ण हैं—

(i) मेगस्थनीज का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं है। यह सम्भव है कौटिल्य का उल्लेख उन अंशों में हुआ हो जो अप्राप्य हैं। पतंजलि ने बिन्दुसार और अशोक के नाम का भी उल्लेख नहीं किया है, तो क्या इन दोनों शासकों को अनैतिहासिक माना जा सकता है। वस्तुत: पतंजलि का उद्देश्य पाणिनि तथा कात्यायन के सूत्रों की व्याख्या करना था, न कि इतिहास लिखना।

(ii) उल्लेखनीय यह भी है कि कौटिल्य तथा मेगस्थनीज के विवरणों में कई समानताएँ की हैं। मेगस्थनीज के समान कौटिल्य भी उल्लेख करता है कि जब चन्द्रगुप्त आखेट के लिए निकलता था, तो उसके साथ राजकीय जुलूस भी चलता था तथा सड़कों की कड़ी सुरक्षा रखी जाती थी। दोनों यह उल्लेख करते हैं कि सम्राट की अंगरक्षक महिलाएँ होती थीं तथा वह अपने शरीर की मालिश करवाता था। मेगस्थनीज के ओवरसीयर्स अर्थशास्त्र के गुप्तचर हैं। इसी प्रकार मेगस्थनीज द्वारा उल्लिखित कुछ अधिकारी अर्थशास्त्र के अध्यक्षों से साम्यता रखते हैं। सामान्यत: हम कह सकते हैं कि दोनों के द्वारा प्रस्तुत प्रशासनिक एवं सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप अधिकांश अंशों में साम्यता रखता है।

(iii) भारतीय लेखकों द्वारा अपने नाम का उल्लेख अन्य पुरुष में करने की परम्परा रही है। अत: यदि अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने अपना उल्लेख अन्य पुरुष में किया है, तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह स्वयं इस ग्रन्थ का रचयिता नहीं था।

(iv) कौटिल्य द्वारा वर्णित समाज में नियोग प्रथा, विधवा विवाह आदि का प्रचलन था। यह प्रथा मौर्ययुगीन समाज में थी। उसने 'युक्त' शब्द अधिकारी के अर्थ में प्रयुक्त किया है। यही शब्द अशोक के लेखों में भी आया है। इसमें मद्र, कम्बोज, लिच्छवि, मल्ल आदि गणराज्यों का भी उल्लेख है जो इस बात के सूचक हैं कि यह ग्रन्थ मौर्य युग के प्रारम्भ में लिखा गया था।

(v) अर्थशास्त्र वस्तुत: एक असाम्प्रदायिक रचना है जिसका मुख्य विषय सामान्य राज्य एवं उसके शासनतन्त्र का विवरण प्रस्तुति है। इसमें चक्रवर्ती सम्राट का अधिकार-क्षेत्र हिमालय से लेकर समुद्र तट तक बताया गया है जो इस बात का सूचक है कि कौटिल्य विस्तृत साम्राज्य से परिचित था।

उपर्युक्त विवरण से यह बात पूर्णत: स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र निश्चित रूप से कौटिल्य की रचना है। अर्थशास्त्र को कौटिल्य की रचना न मानना आधारहीन है, क्योंकि 'अर्थशास्त्र' में कहा गया है, "इसकी रचना उस व्यक्ति ने की है, जिसने क्रोध के वशीभूत होकर शस्त्र, शास्त्र तथा नन्दराज के हाथ में गई हुई पृथ्वी का शीघ्र उद्धार किया।" कौटिल्य द्वारा नन्दों का विनाश एक ऐसा ऐतिहासिक तथ्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-IV

गुप्त वंश
Gupta Dynasty

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'मुद्राराक्षस' ग्रन्थ का लेखक कौन था?
Who was the writer of Mudrarakshasa?

उत्तर 'मुद्राराक्षस' के लेखक विशाखदत्त थे।

प्र.2. घटोत्कच किसका पुत्र था?
Whose son was Ghatotkacha?

उत्तर घटोत्कच श्रीगुप्त का पुत्र था।

प्र.3. 'गुप्त संवत्' की स्थापना कब और किसने की?
By whom and when was Gupta Samvat founded?

उत्तर 'गुप्त संवत्' की स्थापना चंद्रगुप्त ने सन् 319-20 ई० में की।

प्र.4. फाह्यान किसके शासनकाल में भारत आया था?
During whose Fa-Hien came to India?

उत्तर फाह्यान चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में भारत आया था।

प्र.5. समुद्रगुप्त का शासन काल क्या था?
What was the reign period of Samudragupta?

उत्तर समुद्रगुप्त का शासन काल 325 ई० से 375 ई० तक था।

प्र.6. आर्यावर्त शब्द से आप का क्या आशय है? आर्यावर्त का प्रथम युद्ध किसके मध्य लड़ा गया?
What do you mean by the word 'Aryavarta'? Who fought the first war of Aryavarata?

उत्तर मनुस्मृति के अनुसार, पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक और विन्ध्याचल तथा हिमालय पर्वतों के मध्य स्थित भाग को आर्यावर्त की संज्ञा प्रदान की गई। आर्यावर्त का प्रथम युद्ध समुद्रगुप्त व तीन शक्तियों—अच्युत, नागसेन व कोतकुलज के मध्य लड़ा गया।

प्र.7. 'भारत का नेपोलियन' किसे कहा जाता है?
Who is called the 'Napoleon of India'?

उत्तर समुद्रगुप्त को 'भारत का नेपोलियन' कहा जाता है।

प्र.8. अश्वमेघ यज्ञ गुप्तवंश के किस शासक ने किया था?
Which Gupta ruler performed Ashvamedha Yajna?

उत्तर समुद्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ किया था।

प्र.9. चीनी ग्रन्थों में भारत को क्या कहा गया है?
What is India called in Chinese books?

उत्तर चीनी ग्रन्थों में भारत को 'यिन-तू' कहा गया है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.10. चन्द्रगुप्त द्वितीय राजगद्दी पर कब बैठा?
When did Chandragupta II come to the throne?

उत्तर चन्द्रगुप्त द्वितीय 380 ई० में राजगद्दी पर बैठा था और 412 ई० तक शासन किया था।

प्र.11. 'शकारि' किस गुप्त शासक को कहा जाता था?
Which Gupta Emperior is called 'Shakari'?

उत्तर 'शकारि' चन्द्रगुप्त द्वितीय को कहा जाता है।

प्र.12. हूणों को परास्त करने के बाद स्कंदगुप्त ने कौन-सी उपाधियाँ प्राप्त थीं?
After defeating Hunas, which titles did Skandagupta accept?

उत्तर हूणों को परास्त करने के बाद स्कंदगुप्त ने 'विक्रमादित्य' एवं 'क्रमादित्य' की उपाधियाँ प्राप्त थीं।

प्र.13. नालंदा विश्वविद्यालय पर टिप्पणी लिखिए। *(2021)*
Write a comment on Nalanda University.

उत्तर नालंदा विश्वविद्यालय प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और विख्यात केन्द्र था। प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्त काल के दौरान पाँचवीं सदी में कुमारगुप्तप्रथम के द्वारा की गई थी। इतिहास के अनुसार, सन् 1193 में बख्तियार खिलजी के आक्रमण के बाद यह नष्ट हो गया था।

प्र.14. 'प्रयाग प्रशस्ति' किस सम्राट से सम्बन्धित है? *(2021)*
'Prayag Prashasti' is related to which emperor?

उत्तर 'प्रयाग प्रशस्ति' गुप्त राजवंश के सम्राट समुद्रगुप्त से सम्बन्धित है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. चन्द्रगुप्त से सम्बद्ध सिक्कों के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त विवरण दीजिए।
What do you know about Chandragupta's coins? Give a brief detail.

उत्तर चन्द्रगुप्त गुप्तकाल का प्रसिद्ध शासक था। उससे सम्बद्ध 25-26 सिक्के प्रकाश में आए हैं। इन सिक्कों को 'चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी प्रकार के सिक्के' कहा जाता है। यद्यपि इन सिक्कों के प्रचलनकर्ता के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है। अत: किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत कठिन है। **अल्टेकर** का मानना है कि कुमारदेवी लिच्छवि राज्य की शासिका थी तथा इन मुद्राओं के ऊपर लिच्छवियों का अंकन उनके आग्रह से ही किया गया था। **एलन** इन सिक्कों को स्मारक-सिक्के मानते हुए इनके प्रचलन का श्रेय समुद्रगुप्त को प्रदान करते हैं, जिसने माता-पिता के विवाह की स्मृति में इन सिक्कों को ढलवाया था परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं लगता, क्योंकि इस स्थिति में इन पर समुद्रगुप्त का नाम भी उत्कीर्ण होना चाहिए था।
इन मुद्राओं के अवलोकन से इतना तो स्पष्ट है कि इनके ऊपर लिच्छवि-प्रभाव अधिक है। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि मुख भाग पर चन्द्रगुप्त का नाम बिना किसी सम्मानसूचक शब्द के साथ अंकित है जबकि कुमारदेवी के नाम के पहले 'श्री' शब्द जुड़ा मिलता है। पुनश्च पृष्ठ भाग में केवल 'लिच्छवय:' ही उत्कीर्ण है जबकि गुप्तों का उल्लेख तक नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब इन सिक्कों के लिच्छवियों से सम्बन्धित होने के कारण ही हुआ है।

प्र.2. समुद्रगुप्त का चरित्र चित्रण कीजिए।
Give a character-sketch of Samudragupta.

उत्तर इतिहासकार **स्मिथ** ने समुद्रगुप्त की वीरता से प्रभावित होकर उसे 'भारतीय नेपोलियन' (Indian Napoleon) कहा है। आर्यावर्त के शासकों का उन्मूलन और सुदूर दक्षिण के राज्यों पर आधिपत्य उसकी उत्कृष्ट सैनिक प्रतिभा का परिचायक है। समुद्रगुप्त असाधारण सैनिक योग्यताधारक सम्राट था। विभिन्न युद्धों में समुद्रगुप्त ने जिन भिन्न-भिन्न नीतियों का अनुसरण किया उससे उसकी कूटनीति में निपुणता एवं राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है। दक्षिणापथ के राज्यों के साथ समुद्रगुप्त द्वारा अपनाई गयी नीति तत्कालीन परिस्थितियों में सर्वथा उपयुक्त थी।
समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में कहा गया है कि उसकी उदारता के फलस्वरूप 'श्रेष्ठकाव्य' (सरस्वती) तथा लक्ष्मी का शाश्वत् विरोध सदैव के लिए समाप्त हो गया। वह उदार व दानशील शासक था। उसे विद्वानों को पुरस्कृत करने वाला तथा गाय एवं सुवर्ण

मुद्राओं का दान करने वाला शासक बताया गया है। वह सज्जनों के लिए उदय तथा दुर्जनों के लिए प्रलय के समान था। असहायों एवं अनाथों को उसने आश्रय दिया था। वह विभिन्न शास्त्रों का ज्ञाता भी था।

समुद्रगुप्त ने वैदिक धर्म के अनुसार शासन किया। समुद्रगुप्त को 'धर्म की प्राचीर' कहा गया है। उसके शासन काल में ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान हुआ। वस्तुत: वह सर्वगुण सम्पन्न सम्राट था।

प्र.3. महरौली के लौह स्तम्भ लेख का संक्षिप्त उत्तर प्रस्तुत काजिए।

Give a brief description of Mehrauli's Iron Pillar inscription.

उत्तर यह लौह स्तम्भ दिल्ली के महरौली नामक स्थान पर स्थित है। इसमें 'चन्द्र' नामक किसी राजा की उपलब्धियों का वर्णन तीन श्लोकों के अन्तर्गत किया गया है। इस लेख में किसी तिथि का अंकन नहीं है, इसमें राजा का पूरा नाम भी उत्कीर्ण नहीं है। इसमें कोई वंशावली भी नहीं दी गई है। ऐसी दशा में विद्वानों में इस 'चन्द्र' नामक शासक के सम्बन्ध में मतभेद है उदाहरण के लिए—

1. एच०सी० सेठ द्वारा 'चन्द्र' की पहचान चन्द्रगुप्त मौर्य के रूप में की गई है।
2. हरप्रसाद शास्त्री द्वारा इसकी पहचान सुसुनिया (प० बंगाल) नरेश चन्द्रवर्मा के रूप में की गई है।
3. राय चौधरी ने इस राज्य की पहचान पुराणों में वर्णित नागवंशी शासक चन्द्रांश के रूप में की है।
4. फ्लीट, आयंगर, बसाक जैसे विद्वानों द्वारा 'चन्द्र' की पहचान चन्द्रगुप्त प्रथम के रूप में की गई है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'चन्द्र' शासक के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मतभेद हैं, किन्तु समस्त ऐतिहासिक साक्ष्यों का अवलोकन करने के पश्चात् महरौली लौह स्तम्भ लेख का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ जोड़ना सर्वाधिक तर्कसंगत है।

प्र.4. 'दैवपुत्र षाहि षाहानुषाहि' से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में लिखिए।

What do you understand by 'Daivputra Shahi Shahanushahi'? Write in brief.

उत्तर विद्वानों का यह भी मत है कि देवपुत्र, षाहि और षाहानुषाहि से आशय तीन कुषाण राजाओं से है। प्रत्येक शासक एक-एक उपाधि ग्रहण करता था, किन्तु डी०आर० भण्डारकर की दृष्टि में मूल शब्द देवपुत्र न होकर 'दैवपुत्र' है। यह एक तद्धित शब्द है। गुप्त शासन काल में कुषाण पश्चिमी पंजाब में निवास करते थे। उनका शासक देवपुत्र, षाहि एवं षाहानुषाहि की उपाधियाँ धारण करता था। समुद्रगुप्त का समकालीन कुषाण नरेश किदार कुषाण था। वह पेशावर क्षेत्र का शासक था। पहले वह ससानी नरेश, शापुर द्वितीय की अधीनता में था, बाद में समुद्रगुप्त की सहायता पाकर उसने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इस प्रकार वह स्वतन्त्र न होकर बाद के दोनों पदों-षाहि तथा षाहानुषाहि-से सम्बद्ध है। इस प्रकार तीनों को एक समस्त पद मानना ही उचित है। अत: यह कुषाण शासकों की प्रसिद्ध राजकीय उपाधि 'देवपुत्रमहाराजाधिराज' ही है।

प्र.5. गुप्तवंश के प्रारम्भिक इतिहास के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए।

What do you know about the early history of the Gupta dynasty? Give a brief description.

उत्तर गुप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि गुप्तवंश की स्थापना श्री गुप्त ने 275 ई० में की थी। उसका कोई भी लेख अथवा सिक्का प्राप्त नहीं होता। दो मुहरें प्राप्त हुई हैं, जिनमें से एक के ऊपर संस्कृत तथा प्राकृत मिश्रित मुद्रालेख 'गुप्तस्य' तथा दूसरे के ऊपर संस्कृत में 'श्रीगुप्तस्य' अंकित है। गुप्तवंश का दूसरा शासक महाराज घटोत्कच था। यह श्रीगुप्त का पुत्र था। प्रभावती गुप्ता के पूना व रिद्धपुर ताम्रपत्रों में उसे ही गुप्तवंश का प्रथम शासक बताया गया है। स्कन्दगुप्त के सुपिया (रीवा) के लेख के अनुसार भी गुप्तों की वंशावली घटोत्कच के समय से ही प्रारम्भ होती है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का मानना है कि वस्तुत: घटोत्कच ही इस वंश का संस्थापक था तथा गुप्त या श्रीगुप्त कोई आदि पूर्वज व्यक्ति रहा होगा, जिसके नाम की सहायता गुप्तवंश की उत्पत्ति बताने के लिए ली गई, किन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष तर्कसंगत नहीं है। गुप्त लेखों में इस वंश का प्रथम शासक श्रीगुप्त को ही कहा गया है।

सुधाकर चट्टोपाध्याय का मानना है कि मगध पर तीसरी शती में मुरुण्डों का शासन था और महाराजगुप्त तथा घटोत्कच उन्हीं के सामन्त थे। **फ्लीट एवं बनर्जी** के अनुसार गुप्त शकों के सामन्त थे जो तृतीय शताब्दी में मगध के शासक थे। सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने ही गुप्तवंश को शकों की अधीनता से मुक्त किया था। **काशी प्रसाद जायसवाल** की दृष्टि में गुप्तों के पूर्व मगध पर लिच्छवियों का शासन था तथा प्रारम्भिक गुप्त नरेश उन्हीं के सामन्त थे।

प्र.6. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा प्रचलित विभिन्न सिक्कों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
Give a brief introduction of the coins of Chandragupta Vikramaditya.

उत्तर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अनेक प्रकार के सिक्कों का प्रचलन करवाया। उसकी स्वर्ण के साथ-साथ रजत एवं ताम्र मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं। इसके विभिन्न सिक्के विभिन्न प्रकार के थे, जिनका विवरण निम्नलिखित है—

3. **धनुर्धारी** प्रकार के सिक्के सर्वाधिक प्रचलित थे। इसके मुख भाग पर धनुष-बाण लिए हुए राजा अंकित है।
4. **छत्रधारी** प्रकार के सिक्के में राजा के पीछे एक बौना नौकर उसके ऊपर छत्र ताने हुए खड़ा है।
5. **पर्यंक** प्रकार के सिक्के बहुत कम संख्या में प्राप्त हुए हैं। इसमें राजा पलंग पर बैठा है और उसके दायें हाथ में कमल है।
1. **सिंह-निहन्ता** प्रकार के सिक्कों के मुख भाग पर सिंह को धनुष-बाण अथवा कृपाण से मारते हुए राजा की आकृति उत्कीर्ण है।
2. **अश्वारोही** प्रकार के सिक्के में घोड़े पर सवार राजा की आकृति अंकित है।

प्र.7. गुप्त साम्राज्य का सैन्य संगठन कैसा था?
How was the military organisation of Gupta Empire?

उत्तर गुप्त-शासकों की सैन्य-शक्ति बहुत सुदृढ़ थी। उन्होंने सैन्य-शक्ति के आधार पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। राजा सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था व युद्ध में सेनापति के रूप में सेना का संचालन व नेतृत्व करता था। राजा के अधिक वृद्ध होने पर युवराज सेना का संचालन करता था। राजा के पश्चात् सेना का सर्वोच्च अधिकारी सेनापति होता था जिसे महादण्डनायक भी कहते थे। महादण्डनायक के अतिरिक्त अनेक उपसेनापति भी होते थे। सेना की टुकड़ी को 'चमू' कहते थे। सेना के चार अंग—हस्ति, अश्व, रथ व पदाति होते थे। गुप्तकाल में रथ-सेना का विशेष महत्व नहीं रह गया था। हस्ति सेना के अध्यक्ष को महापीलुपति व अश्व सेना के अध्यक्ष को महाश्वपति कहते थे। गुप्त-युग की सेना की एक विशेषता अश्वसेना में अश्वारोही धनुर्धरों का होना था। गुप्तकाल में नौ-सेना भी विद्यमान थी। सैनिक युद्ध में फरसा, बाण, शंकु शक्ति, तोमर, नाराच आदि शस्त्रों का प्रयोग करते थे। युद्धों के समय गुप्तों के सामन्त भी सैनिक सहायता प्रदान करते थे।

प्र.8. गुप्त काल की न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था के विषय में संक्षेप में लिखिए।
Write in brief about the law and punishment system of the Gupta Period.

उत्तर गुप्तकाल में न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था अत्यन्त व्यवस्थित और सुसंगठित थी। न्यायालय को न्यायाधिकरण कहा जाता था। स्मृतियों से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में न्यायालयों की चार श्रेणियाँ कुल, श्रेणी, पुग व राजा का न्यायालय था। न्याय-विभाग का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। राजधानी में मुख्य न्यायाधीश होता था, उसके अधीन नगरों व ग्रामों के न्याय अधिकारी होते थे। सबसे निम्न स्तर का कुल था। कुल के पश्चात् श्रेणी, तत्पश्चात् पुग व अन्तिम राजा का न्याय होता था। राजा का निर्णय अन्तिम व सर्वमान्य होता था। दिव्य-प्रथा भी गुप्त-काल में प्रचलित थी। न्यायालयों में प्रमाण व गवाही भी ली जाती थी। उपरोक्त न्यायालयों के अतिरिक्त पंचायतें भी न्याय का कार्य करती थीं।

चीनी यात्री **फाह्यान** के वर्णन से ज्ञात होता है कि गुप्त-काल में दण्ड-व्यवस्था कठोर नहीं थी। उसके के अनुसार अंग-भंग या मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जाता, केवल अपराध की गुरुता के अनुरूप अर्थ-दण्ड दिया जाता था। फाह्यान ने यह भी लिखा है कि अपराध बहुत कम होते थे, अत: लोगों को न्यायालयों अथवा कानूनों की आवश्यकता ही नहीं थी।

प्र.9. गुप्त-साम्राज्य के प्रान्तीय प्रशासन को संक्षेप में समझाइए।
Explain in brief the provincial administration of the Gupta empire.

उत्तर

प्रान्तीय प्रशासन
(Provincial Administration)

गुप्त-साम्राज्य के प्रान्तीय प्रशासन को निम्न प्रकार समझ सकते हैं—

1. **भुक्ति**—गुप्त-साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। अत: प्रशासनिक सुविधा के उद्देश्य से गुप्त-साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभक्त किया गया था। प्रत्येक प्रान्त को **भुक्ति, देश, भोग** आदि नामों से जाना जाता था। गुप्त-युग में उल्लेखनीय भुक्ति मगध, वर्द्धमान, पूर्वी मालवा, पश्चिमी मालवा, पुण्ड्रवर्धन, तीरभुक्ति (उत्तरी बिहार) व सौराष्ट्र थे। प्रत्येक भुक्ति

आधुनिक मण्डल के समान होती थी। '**उपरिक**' भुक्ति का सर्वोच्च अधिकारी होता था। उपरिक प्राय: राजपुत्र अथवा राजवंश से सम्बन्धित होते थे। उपरिक की नियुक्ति सम्राट करता था। गुप्तकालीन प्रमुख उपरिक तीरभुक्ति था राज्यपाल गोविन्दगुप्त (चन्द्रगुप्त द्वितीय का पुत्र), पूर्वी मालवा का घटोत्कचगुप्त एवं सौराष्ट्र का पर्णदत्त थे। प्रत्येक उपरिक के अधीन अनेक कर्मचारी होते थे जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करता था।

2. **विषय**—प्रत्येक भुक्ति अनेक विषयों में विभक्त होता था। विषय का सर्वोच्च अधिकारी **विषयपति** कहलाता था। विषय आधुनिक जनपद के समान होता था। विषयपति की नियुक्ति उपरिक द्वारा होती थी। प्रशासन में विषयपति की सहायतार्थ एक समिति होती थी जिसमें चार सदस्य-नगर श्रेष्ठि, सार्थवाह, प्रथम कुलिक व प्रथम कायस्थ होते थे। इनके अतिरिक्त तीन पुस्तपाल होते थे, जो सभी विषयों का लेखा-जोखा रखते थे।
3. **नगर-प्रशासन**—प्रत्येक विषय के अन्तर्गत अनेक नगर होते थे। नगरपति नगर का अधिकारी होता था। नगर की व्यवस्था के लिए एक परिषद होती थी जो आधुनिक नगरपालिका के समान थी। इस परिषद का कार्य नगर में शान्ति की स्थापना, सभागृह, सरोवर, मन्दिर बनवाना तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों को करवाना था।
4. **ग्राम-प्रशासन**—प्रत्येक नगर अनेक ग्रामों में विभक्त था। ग्राम प्रशासन की न्यूनतम इकाई थी। प्रत्येक ग्राम के अधिकारी को **मुखिया, ग्रामिक, महत्तर** आदि कहते थे। ग्रामिक की सहायतार्थ एक समिति होती थी इसे ग्राम-सभा कहते थे। ग्राम सभा का प्रमुख कार्य मुकदमों का निर्णय, भूमि की सीमा का निर्धारण, सार्वजनिक हित के कार्य, कृषि और सिंचाई की उचित व्यवस्था करना था।

प्र.10. गुप्तकालीन वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में समझाइए।
What do you know about architecture, sculpture and painting of the Gupta period? Write in brief.

उत्तर गुप्त-काल की वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला को निम्न प्रकार समझ सकते हैं—

1. **वास्तुकला**—गुप्तकाल में वास्तु-कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई। **पर्सी ब्राउन** के अनुसार, भारत की राजनीतिक एकता, शासन की स्थिरता व राजाओं के प्रोत्साहन से ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान हुआ जिसका सर्वाधिक प्रभाव गुप्तकालीन वास्तुकला पर दृष्टिगत होता है। इस युग की उल्लेखनीय उपलब्धि मन्दिरों का निर्माण किया जाना था।
2. **चित्रकला**—गुप्तकालीन चित्रकला का उत्कृष्ट प्रदर्शन अजन्ता एवं बाघ की गुहाओं में किया गया है। गुप्तकाल में वास्तु एवं मूर्तिकला के समान ही चित्रकला भी अपनी पूर्णता तक पहुँची। **प्रो० वासुदेवशरण अग्रवाल** के अनुसार "गुप्त-युग में चित्रकला की शिक्षा प्रत्येक नागरिक के सांस्कृतिक-जीवन का एक आवश्यक अंग थी तथा प्रत्येक सुसंस्कृत स्त्री व पुरुष इस युग में उसमें श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था।"
3. **मूर्तिकला**—गुप्त-काल से पूर्व कुषाण-काल में भारत की मूर्तिकला यवन यूनानी-शैली से प्रभावित थी, किन्तु गुप्तकाल में भारतीय मूर्तिकला ने धीरे-धीरे यवन प्रभाव से मुक्त होकर पूर्णतया भारतीय परिवेश धारण कर लिया था। गुप्त-युगीन मूर्तिकला भावपूर्ण-ओजस्विता अथवा आध्यात्मिक प्रभावोत्पादकता, सहज-प्राकृतिकता, अंग-सौष्ठवता, कलात्मक सुन्दरता तथा शिल्पीय कौशल की निपुणता में अनुपम अंग है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. गुप्त वंश के इतिहास के विभिन्न स्त्रोतों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of different sources of history of the Gupta dynasty.

उत्तर

गुप्तकालीन इतिहास के स्त्रोत
(Sources of the History of the Guptas)

गुप्त-काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग (Golden Age) कहा जाता है। मौर्यों के पतन के पश्चात् नष्ट हुई भारत की राजनीतिक एकता को गुप्त शासकों ने पुन: अर्जित किया तथा लगभग सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक छत्र के अधीन कर शक्तिशाली विदेशी आक्रान्ताओं का सफलतापूर्वक सामना कर भारत की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखा। इस युग में भारत ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक व कला के क्षेत्र में अपार उन्नति की। विदेशी लेखकों द्वारा भी प्रशंसित, सुखी एवं

समृद्ध समाज की स्थापना, वृहत्तर भारत की अवधारणा की क्रियान्विति, धर्म-सहिष्णुता, गुण-ग्राहकता, इस युग की प्रमुख देन थी। सांस्कृतिक उन्नति होने के कारण इस युग के विषय में जानने के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। गुप्त-युग के इतिहास की इस सामग्री को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है—

1. **साहित्यिक-स्त्रोत**—गुप्तकाल पर प्रकाश डालने वाली साहित्यिक सामग्री को भी अनेक भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) **पुराण**—गुप्त-काल के इतिहास को जानने के लिए पुराण महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। **विष्णु पुराण, वायु पुराण** व **ब्राह्मण पुराण** इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुछ समय पूर्व तक पुराणों को प्रामाणिक नहीं माना जाता था, परन्तु आधुनिक विद्वान पुराणों की ऐतिहासिकता को स्वीकार करते हैं। पुराणों से गुप्तों के प्रारम्भिक इतिहास, सीमा निर्धारण तथा सांस्कृतिक कार्यकलापों के विषय में जानकारी मिलती है।

(ii) **धर्मशास्त्र**—धर्मशास्त्रों से भी गुप्तकालीन धर्म, संस्कार, स्त्रियों की दशा तथा नैतिक आदर्श के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। गुप्तकाल में सम्भवत: व्यास, बृहस्पति, हारित आदि स्मृतियों की रचना हुई थी।

(iii) **काव्य एवं नाट्य साहित्य**—गुप्तकाल के विषय में काव्यों व नाटकों से भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। गुप्तकाल पर प्रकाश डालने वाले महत्वपूर्ण ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(a) **मृच्छकटिक**—शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक से गुप्तकाल की न्याय, दण्ड विधान तथा सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

(b) **कामसूत्र**—वात्स्यायन के प्रसिद्ध ग्रन्थ कामसूत्र से तत्कालीन वेश-भूषा, आभूषण, वाद्य, सुगन्धित द्रव, एवं संगीत तथा जनता के मनोविनोद के साधनों के विषय में पता चलता है।

(c) **आर्यमंजूश्रीमूलकल्प**—यह एक बौद्ध-ग्रन्थ है जिससे विशेष रूप से परवर्ती गुप्त शासकों के विषय में सामग्री प्राप्त होती है।

(d) **कौमुदी महोत्सव**—इस नाटक की लेखिका **वज्जिका** नामक एक विदुषी थी। इस नाटक से मगध की तत्कालीन स्थिति एवं गुप्त वंश की उत्पत्ति के विषय में नवीन जानकारी प्राप्त होती है।

(e) **कालिदास की रचनाएँ**—कालिदास को भी अधिकांश विद्वान गुप्तकालीन ही मानते हैं। कालिदास की रघुवंश महाकाव्यम् व अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामक रचनाओं से गुप्तकाल पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

(f) **देवीचन्द्रगुप्तम्**—विशाखदत्त द्वारा रचित देवीचन्द्रगुप्तम् नामक नाटक से रामगुप्त की ऐतिहासिकता पर प्रकाश पड़ता हे।

(g) **मुद्राराक्षस**—इस नाटक का रचयिता भी विशाखदत्त ही था। मुद्राराक्षस का कथानक यद्यपि मुख्यरूप से मौर्यकालीन ही है किन्तु गुप्त-वंश की स्थापना के विषय में इस नाटक से जानकारी मिलती है।

(iv) **विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त**—गुप्तकाल में तथा उसके पश्चात् अनेक विदेशी यात्रियों ने भारत की यात्रा की जिन्होंने अपने वृत्तान्तों में गुप्तकाल सम्बन्धी अनेक तथ्यों का उल्लेख किया है। यह वर्णन निष्पक्ष होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुप्तकाल पर निम्नलिखित यात्रियों के वृत्तान्तों से प्रकाश पड़ता है—

(a) **फाह्यान**—फाह्यान चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आया था। उसके वर्णन से तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति के विषय में पता चलता है।

(b) **इर्त्सिग**—इर्त्सिग सातवीं शताब्दी में भारत आया। उसके वर्णन से गुप्तों के मूल-निवास-स्थान के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है।

(c) **अल्बरूनी**—ग्यारहवीं शताब्दी के इस मुसलमान यात्री के वर्णन से गुप्त-संवत् की तिथि को निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

(d) **सुंग-युन**—इस यात्री का वर्णन हूण-आक्रमण के विषय में जानकारी प्रदान करता है।

(e) **ह्वेनसांग**—ह्वेनसांग यद्यपि हर्षवर्धन के शासनकाल में भारत आया था, लेकिन इसके विवरण से गुप्तकाल के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती हैं।

2. **अभिलेखीय**—गुप्त-अभिलेख शिलाओं, स्तम्भों व ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण हैं। गुप्त-वंश के इतिहास के निर्माण में, उत्तर-भारत के विभिन्न स्थानों से प्राप्त अभिलेखों से महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इन अभिलेखों की भाषा संस्कृत है। इन अभिलेखों में शासकों की वंशावलियाँ, शासक तथा प्रशस्तिकार का नाम उत्कीर्ण है। अत: गुप्त-अभिलेख सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत माने जाते हैं। अभिलेखों के प्राप्ति-स्थल के आधार पर साम्राज्य की सीमाओं का निर्धारण करने में सहायता मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमुख गुप्त-अभिलेख समुद्रगुप्त के प्रयाग व ऐरण अभिलेख, चन्द्रगुप्त के **महरौली** व **उदयगिरि गुहा** अभिलेख, कुमारगुप्त के **मन्दसौर, मिलसद, गढ़वा,** अभिलेख व स्कन्दगुप्त के **भीतरी** एवं **कहौम** अभिलेख हैं।
3. **मुहरें**—गुप्तकालीन अनेक मुहरें वैशाली से प्राप्त हुई हैं, जिनसे तत्कालीन प्रान्तीय तथा स्थानीय व्यवस्था के विषय में प्रकाश पड़ता है।
4. **मुद्राएँ**—गुप्तकालीन मुद्राओं से तत्कालीन स्थिति पर व्यापक प्रकाश पडता है। गुप्त-युग से भारतीय मुद्रा के इतिहास में नवीन युग का प्रारम्भ होना माना जाता है। गुप्त-काल में स्वर्ण, चाँदी व ताँबे की मुद्राओं का निर्माण हुआ था। मुद्राओं के प्राप्ति-स्थान के आधार पर साम्राज्य की सीमा निर्धारण करने में सहायता मिलती है। **मुद्राओं पर उत्कीर्ण चित्र से सम्राटों की शारीरिक बनावट व व्यक्तित्व के विषय में पता चलता है।** कुछ मुद्राओं पर गुप्त-शासक को सिंह का शिकार करते हुए दिखाया गया है जिससे उसकी शक्ति व रुचि का पता चलता है। चन्द्रगुप्त प्रथम की मुद्राओं पर उसकी पत्नी कुमारदेवी का भी चित्र उत्कीर्ण होने से चन्द्रगुप्त का लिच्छवियों से सम्बन्ध के विषय में जानकारी मिलती है।
5. **स्मारक**—गुप्तकाल के अनेक स्मारक व कलाकृतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है। गुप्तकालीन स्मारकों में प्रमुख **भूमरा का शिव-मन्दिर, तिगवा का विष्णु-मन्दिर, नचना का पार्वती-मन्दिर, भीतरगांव का लाड़खान मन्दिर हैं** जिनसे गुप्तकाल से प्रारम्भ हुई शिखर बनाने की परम्परा के विषय में पता चलता है। इन स्मारकों से गुप्तकाल में भारत की सांस्कृतिक उन्नति तथा राजा और प्रजा की धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। गुप्तकालीन कलाकृतियों से गुप्त शासकों के धर्म-सहिष्णु होने के विषय में भी पता चलता है। मन्दिरों के अतिरिक्त, गुप्तकालीन अन्य प्रमुख स्मारक स्कन्दगुप्त का भीतरी-स्तम्भ, बुधगुप्त का गरुण-स्तम्भ, चन्द्रगुप्त का महरौली लौह-स्तम्भ तथा शिवजी, विष्णु व बुद्ध के अतिरिक्त दुर्गा, गंगा और यमुना आदि की मूर्तियाँ हैं। चित्रकला की दृष्टि से अजन्ता व बाघ की गुफाओं के चित्र अनुपम हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्त-काल पर प्रकाश डालने वाले अनेक स्रोत हैं जिनके आधार पर गुप्त-काल के प्रामाणिक इतिहास का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार साहित्यिक ग्रन्थ विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त, गुप्तकालीन अभिलेख एवं मुद्राएँ, मुहरें एवं स्मारक उस स्वर्णिम-युग की झलक प्रदान करते हैं जो प्राचीन भारतीय इतिहास को विश्व के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करती है।

प्र.2. गुप्त शासक चन्द्रगुप्त का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of Gupta ruler Chandragupta.
***अथवा* गुप्त वंश के संस्थापक का वर्णन करते हुए गुप्त शासक चन्द्रगुप्त का विस्तृत वर्णन कीजिए।**
***Or* Mentioning the founder of Gupta dynasty, give a detailed description of Chandragupta.**

उत्तर

गुप्त-वंश का संस्थापक—गुप्त
(Gupta : The Founder of the Guptas)

गुप्त-अभिलेखों से ज्ञात होता है कि गुप्त-वंश का संस्थापक श्रीगुप्त था, किन्तु **स्मिथ, ऐलन** व **जायसवाल** का विचार है कि गुप्तों का आदि पुरुष 'गुप्त' था, उसके नाम के साथ 'श्री' शब्द सम्मानार्थ जोड़ा गया है। इन विद्वानों के अनुसार इस मत की पुष्टि समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति से होती है जिसमें समुद्रगुप्त ने स्वयं को महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र बताया है। इस प्रशस्ति में सभी गुप्त राजाओं के नाम के साथ 'श्री' जोड़ा गया है तथा यदि किसी का नाम 'श्री' से प्रारम्भ हो रहा हो तो वहाँ दो बार श्री शब्द का प्रयोग किया गया है। अत: गुप्त-वंश के संस्थापक का नाम 'गुप्त' ही अधिक प्रमाणित प्रतीत होता है।

श्रीगुप्त के लिए गुप्त-अभिलेखों में 'महाराज' उपाधि का प्रयोग किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि श्रीगुप्त स्वतन्त्र नहीं था। **सिलवां लेवी** व **सुधाकर चट्टोपाध्याय** का विचार है कि वह मुरुण्डों का सामन्त था। **फ्लीट** एवं **राखलदास बनर्जी** उसे शकों के आधीन मानते हैं। **डॉ० स्मिथ** व **काशीप्रसाद जायसवाल** के अनुसार श्रीगुप्त लिच्छवियों का सामन्त था। स्मिथ व जायसवाल का यह मत सर्वाधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम के पूर्व के गुप्त शासक लिच्छवियों के ही सामन्त थे तथा कुमारदेवी के साथ विवाह के उपरान्त समस्त लिच्छवि-राज्य चद्रगुप्त प्रथम को प्राप्त हो गया तथा गुप्तों की शक्ति में असाधारण वृद्धि हो गई।

श्रीगुप्त ने लगभग 275 ई० से 300 ई० तक राज्य किया।

चन्द्रगुप्त प्रथम (319-324 ई०)
(Chandragupta-I)

घटोत्कच के पश्चात् उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम शासक बना। गुप्त-अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ही गुप्त-वंश का प्रथम स्वतन्त्र शासक था जिसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' थी। यह सार्वभौमिक उपाधि इस बात का प्रमाण है कि चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त-वंश का प्रथम शक्तिशाली और स्वतन्त्र राजा हुआ जिसके पौरुषपूर्ण प्रारम्भिक प्रयत्नों ने गुप्त राजशक्ति के विकास का द्वार उन्मुक्त कर, अपने उत्तराधिकारी और पुत्र समुद्रगुप्त के सार्वभौम साम्राज्य के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। दुर्भाग्यवश, चन्द्रगुप्त प्रथम का कोई व्यक्तिगत लेख या प्रशस्ति उपलब्ध नहीं है, अत: उसकी उपलब्धियों एवं तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के विषय में जानकारी अत्यन्त अल्प है।

गुप्त-संवत्—चन्द्रगुप्त के समय की प्रमुख घटना अपने राज्यारोहण के समय उसके द्वारा एक नवीन संवत् की स्थापना करना थी जो गुप्त संवत् के नाम से जाना जाता है। चन्द्रगुप्त ने इस संवत् की स्थापना 319-20 ई० में की थी।

शासनावधि—समुद्रगुप्त के शासनकाल की दो सील मिलती हैं—**नालन्दा सील** व **गया सील** जो क्रमश: 5 गुप्त संवत् व 9 गुप्त संवत् की हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त (319 + 5 = 324) 324 ई० में शासन कर रहा था। अत: चन्द्रगुप्त प्रथम ने 324 ई० तक ही राज्य किया होगा। यद्यपि कतिपय विद्वानों ने इन सीलों की प्रामाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया है तथा चन्द्रगुप्त का शासनकाल 335 ई० तक माना है, परन्तु प्रभावशाली प्रमाणों के अभाव में ऐसा मानना तर्कसंगत नहीं है। अत: चन्द्रगुप्त का शासनकाल 324 ई० तक ही माना जाना चाहिए।

वैवाहिक सम्बन्ध—चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल की सबसे प्रमुख घटना उसका लिच्छवि राजकुमारी के साथ विवाह होना था। इस विवाह के विषय में जानकारी विशेष प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं से होती है जिन्हें **'लिच्छवि-प्रकार'**, **'विवाह-प्रकार'** अथवा **'राजा-रानी प्रकार'** की मुद्राएँ कहा जाता है। इस प्रकार की अब तक 25 मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओं के मुख-भाग पर चन्द्रगुप्त प्रथम एवं उसकी रानी कुमारदेवी के चित्र नामों-सहित उत्कीर्ण हैं। इन मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर धराशाई सिंह अथवा सिंहासन की पीठ पर शुभासीन देवी की आकृति उत्कीर्ण है तथा इसी ओर 'लिच्छवय:' लेख भी प्राप्त है। इस विवाह की पुष्टि प्रयाग-प्रशस्ति से भी होती है जिसमें समुद्रगुप्त को महादेवी कुमारदेवी के गर्भ से उत्पन्न तथा 'लिच्छवि-दौहित्र' (लिच्छवियों का नाती) कहा गया है।

चन्द्रगुप्त व कुमारदेवी के इस विवाह का अत्यधिक राजनीतिक महत्व है। विवाह के परिणामस्वरूप ही चन्द्रगुप्त प्रथम सम्राट बन सका तथा महाराजाधिराज की उपाधि धारण करने में सफल हुआ। किन्तु **एलन** का विचार है कि इस विवाह का वास्तविक महत्व वस्तुत: सामाजिक है। लिच्छवि रक्त पर समुद्रगुप्त के घमण्ड करने का कारण लिच्छवियों की कुलीनता थी, परन्तु एलन के इस निष्कर्ष को मानना कठिन है क्योंकि लिच्छवि किसी उच्च जाति के नहीं थे। इसके विपरीत, राजनीतिक शक्ति के रूप में लिच्छवियों की महत्ता महात्मा बुद्ध के समय से ही चली आ रही थी। अत: इसी कारण समुद्रगुप्त ने प्रयाग-प्रशस्ति में लिच्छवि-दौहित्र कहने में गर्व का अनुभव किया होगा। चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल में गुप्तों की शक्ति व वैभव में जो असीमित वृद्धि हुई, उसमें इस विवाह का प्रमुख योगदान था। **डॉ० राय** का विचार है कि कुमारदेवी के समय में लिच्छवियों के राज्य का गणतन्त्रात्मक संघटन बहुत कुछ विघटित हो गया था और उसके स्थान पर उसने स्वतन्त्र राजतन्त्रात्मक स्वरूप धारण कर लिया था। यही कारण है कि राजकन्या कुमारदेवी पैतृक आधार पर लिच्छवि राज्य की स्वामिनी बन गई तथा लिच्छवियों का सम्पूर्ण अधिकार-क्षेत्र चन्द्रगुप्त प्रथम को उपलब्ध हो गया। **डॉ० अल्तेकर** का विचार है कि लिच्छवि राज्य के गुप्त-साम्राज्य में विलीन

हो जाने पर भी गुप्त-शासन पर लिच्छवियों का प्रभाव कुछ समय तक छाया रहा। सम्भवत: इसी कारण 'राजा-रानी-प्रकार' की मुद्राएँ प्रचलित की गई होंगी। इन मुद्राओं के आधार पर ही कुछ विद्वानों का विचार है कि कुछ समय तक चन्द्रगुप्त प्रथम व कुमारदेवी ने संयुक्त रूप से शासन किया था।

राज्य-विस्तार—चन्द्रगुप्त प्रथम ही गुप्त-वंश का प्रथम स्वतन्त्र शासक था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने ही सर्वप्रथम गुप्त-साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयत्न किया। कुमारदेवी से विवाह करने के कारण उसे लिच्छवियों का वैशाली का राज्य प्राप्त हो गया था। पुराणों एवं प्रयाग-प्रशस्ति से चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य-विस्तार के विषय में प्रकाश पड़ता है। उपरोक्त स्रोतों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त का राज्य पश्चिम में प्रयाग जनपद से लेकर पूर्व में मगध अथवा बंगाल के कुछ भागों तक व दक्षिण में मध्य प्रदेश के दक्षिण-पूर्वी भाग तक विस्तृत था।

प्र.3. समुद्रगुप्त की शासन सम्बन्धी जानकारी के मुख्य स्रोतों का वर्णन विस्तार से कीजिए।
Describe in detail the major sources of information regarding Samudragupta.

उत्तर

समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में जानकारी के प्रमुख स्रोत
(Major Sources of Information Regarding Samudragupta)

समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में जानकारी के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं—

1. **मुद्राएँ**—विभिन्न प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ समुद्रगुप्त के जीवन व कार्यों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती हैं। ये निम्नलिखित प्रकार की हैं—
   (i) **धनुर्धारी मुद्रा** के मुख भाग पर राजा धनुष-बाण लिए हुए खड़ा है। इसमें यह उत्कीर्ण है 'अजेय राजा' पृथ्वी को जीतकर उत्तम कार्यों द्वारा स्वर्ग को जीतता है।
   (ii) **गरुड़ मुद्रा** के मुख पर सुसज्जित वेश-भूषा में राजा की आकृति, गरुड़ध्वज, उसका नाम उत्कीर्ण मिलता है। पृष्ठ भाग पर सिंहासन पर आसीन देवी के साथ 'पराक्रम' अंकित है। ये सिक्के नागवंशी राजाओं के ऊपर समुद्रगुप्त की विजय के संकेत देते हैं।
   (iii) **व्याघ्रहनन मुद्रा** के मुख भाग पर धनुष-बाण से व्याघ्र का आखेट करते हुए राजा की आकृति और उसकी उपाधि 'व्याघ्रपराक्रम:' अंकित है। पृष्ठ भाग पर मकरवाहिनी गंगा की आकृति के साथ 'राजा समुद्रगुप्त:' उत्कीर्ण है। ये सिक्के जहाँ एक ओर समुद्रगुप्त के आखेट-प्रेम का बोध कराते हैं, वहीं दूसरी ओर उसकी गंगा-घाटी की विजय भी स्पष्ट करते हैं।
   (iv) **परशु मुद्रा** के मुख भाग पर राजा बाएँ हाथ में परशु धारण किए हुए खड़ा है। इसमें यह उत्कीर्ण है कि कृतान्त परशु राजा राजाओं का विजेता और अजेय है। पृष्ठ भाग पर देवी की आकृति और उसकी उपाधि 'कृतान्त परशु' अंकित है।
   (v) **वीणावादन मुद्रा** के मुख भाग में वीणा बजाते हुए राजा की आकृति तथा मुद्रालेख 'महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्त:' उत्कीर्ण है। पृष्ठ भाग पर हाथ में कार्नकोपिया धारण किए हुए लक्ष्मी जी की आकृति अंकित है। ये सिक्के समुद्रगुप्त का संगीत-प्रेम प्रकट होता है।
   (vi) **अश्वमेध मुद्रा** के द्वारा समुद्रगुप्त द्वारा अश्वमेध यज्ञ किए जाने के प्रमाण प्रकट होते हैं। इसके मुख भाग पर यज्ञ के घोड़े का चित्र तथा 'राजाधिराज पृथ्वी को जीतकर तथा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कर स्वर्गलोक की विजय करता है' उत्कीर्ण है।
2. **प्रयाग प्रशस्ति या इलाहाबाद स्तम्भ लेख**—प्रयाग प्रशस्ति इलाहाबाद स्तम्भ लेख समुद्रगुप्त के सचिव हरिषेण की कृति है। यह स्तम्भ लेख ब्राह्मी लिपि में है और विशुद्ध संस्कृत भाषा में लिखा गया है। प्रशस्ति की प्रारम्भिक पंक्तियाँ पद्यात्मक और बाद की गद्यात्मक हैं। वस्तुत: यह स्तम्भ संस्कृत की चम्पू शैली का अनूठा उदाहरण है। प्रशस्ति की भाषा प्रांजल व शैली मनोरम है। इतिहास व साहित्य की दृष्टि से भी यह अभिलेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
   अभिलेख में समुद्रगुप्त के जीवन तथा कृतियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। यदि यह लेख नहीं मिला होता तो समुद्रगुप्त जैसे महान् शासक के विषय में हमारी जानकारी अपूर्ण रह जाती।

3. **एरण से प्राप्त लेख**—मध्य प्रदेश के सागर जिले से एरण नामक स्थान से समुद्रगुप्त का खण्डित लेख प्राप्त हुआ है, जिसमें समुद्रगुप्त को पृथु, राघव आदि राजाओं से बड़ा दानी कहा गया है जो प्रसन्न होने पर कुबेर और रुष्ट होने पर यमराज की भाँति था। अभिलेख में समुद्रगुप्त की पत्नी का नाम दत्तदेवी बताया गया है तथा उसे अनेक पुत्र-पौत्रों वाली बताया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में जानकारी के प्रमुख स्रोत उसके सिक्के व लेख आदि हैं। इनसे समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में हमें सम्यक् जानकारी प्राप्त होती है।

प्र.4. समुद्रगुप्त की विजय यात्रा के विषय में आप क्या जानते हैं? विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of the conquests of Samudragupta.

उत्तर समुद्रगुप्त की विजय-यात्रा का निम्नलिखित क्रम में वर्णन किया जा सकता है—

1. **आर्यावर्त का प्रथम अभियान**—समुद्रगुप्त द्वारा अपनी दिग्विजय का प्रारम्भ उत्तरी-भारत के राजाओं पर विजय प्राप्त करके किया गया। इस अभियान का वर्णन प्रयाग-प्रशस्ति की 13वीं व 14वीं पंक्ति में किया गया है। प्रयाग-प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने इस अभियान के दौरान निम्नलिखित राजाओं पर विजय प्राप्त की—
   (i) **अच्युत— डॉ० जायसवाल** के अनुसार अच्युत अहिच्छत्र (बरेली) का शासक था, किन्तु उसकी मुद्राओं की नागवंशीय मुद्राओं से समानता के कारण कुछ अन्य विद्वान अच्युत को नागवंशीय शासक मानते हैं।
   (ii) **नागसेन**—यह नागवंशीय शासक था। इसकी राजधानी पद्मावती थी। पद्मावती आधुनिक ग्वालियर जिले में स्थित थी। डॉ० जायसवाल के अनुसार नागसेन मथुरा में शासन करता था।
   (iii) **ग**—प्रयाग-प्रशस्ति में नागसेन से आगे का भाग नष्ट हो गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार, वहाँ गणपतिनाग लिखा हुआ था तथा उनके अनुसार नागसेन के बाद 'ग' शब्द अभी भी पढ़ा जा सकता है। नागवंशीय शासक गणपति विदिशा में शासन करता था।
   (iv) **कोटकुलज**—'कोटकुलज' एक वंश का नाम है। प्रयाग-प्रशस्ति में इस शब्द से पूर्व राजा का नाम भी लिखा हुआ होगा लेकिन अब वह मिट गया है। **डॉ० जायसवाल** आदि कुछ विद्वानों का विचार है कि कोटकुल-वंश पाटलिपुत्र का मगध-वंश था। अपने मत के समर्थन में उन्होंने प्रयाग-प्रशस्ति को कोटकुलज शब्द से आगे के वर्णन का आश्रय लिया है जिसके अनुसार कोटकुल पर विजय के पश्चात् समुद्रगुप्त ने पुष्पपुर में उत्सव मनाया। डॉ० जायसवाल पुष्पपुर का समीकरण पाटलिपुत्र से करते हैं, किन्तु इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि पाटलिपुत्र पर तो गुप्तों का अधिकार पहले से ही था। इस सन्दर्भ में **डॉ० आर० सी० मजूमदार** का मत ही उचित प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त द्वारा पराजित कोटकुल-वंश कान्यकुब्ज (कन्नौज) में शासन कर रहा था। उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में कान्यकुब्ज पुष्पपुर कहलाता था।
2. **दक्षिणापथ का अभियान**—आर्यावर्त के प्रथम अभियान की सफलता के पश्चात् समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत का अभियान किया तथा 12 राज्यों पर विजय प्राप्त करने में सफल रहा। समुद्रगुप्त द्वारा पराजित राज्य निम्नलिखित थे—
   (i) **अवमुक्त**—यहाँ का शासक नीलराज था। यह राज्य कहाँ स्थित था यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है।
   (ii) **वेंगी**—वेंगी का शासक हस्तिवर्मन् था। यह राज्य मद्रास के कृष्णा जिले में स्थित था।
   (iii) **पालक्क**—पालक्क में उग्रसेन राज्य कर रहा था। यह राज्य गोदावरी नदी के तट पर पालकोल्लू नामक स्थान पर स्थित रहा होगा।
   (iv) **कोशल**—कोशल का राजा महेन्द्र था। इस राज्य के अन्तर्गत आधुनिक मध्यप्रदेश के बिलासपुर, रायपुर, सम्भलपुर जिले थे।
   (v) **महाकान्तार**—यहाँ का शासक व्याघ्रराज था। यह राज्य मध्य प्रदेश का वन्य प्रदेश था।
   (vi) **कोराल**—कोराल का शासक व्याघ्रराज था। यह राज्य उड़ीसा व मद्रास के मध्य में कहीं स्थित था।
   (vii) **पिष्टपुर**—पिष्टपुर का राजा महेन्द्रगिरि था। यह राज्य गोदावरी जिले में स्थित था।
   (viii) **कोट्टूर**—कोट्टूर का राजा स्वामिदत्त था। स्वामिदत्त का राज्य गंजाम जिले में कोठूर नामक स्थान पर स्थित था।

(ix) **एरण्डपल्ल**—यहाँ का शासक दमन था। एरण्डपल्ल राज्य की स्थिति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। सम्भवत: यह उड़ीसा के समुद्र-तट पर स्थित एरण्डपल्ली नामक स्थान पर स्थित था।

(x) **कांची**—कांची का शासक विष्णुगोप था जो पल्लव-वंशीय था। यह राज्य आधुनिक कांजीवरम् नामक स्थान पर स्थित था।

(xi) **देवराष्ट्र**—इस राज्य में कुबेर शासन कर रहा था। यह राज्य विशाखापट्टनम के समीप एलामांचिली नामक स्थान पर था।

(xii) **कुस्थलपुर**—यहाँ का शासक धनंजय था। यह राज्य अरकाट में स्थित कुट्टलुर नामक स्थान पर था।

दक्षिण राजाओं का संघ—डॉ. जायसवाल का विचार है कि कोसल और महाकान्तार के राजाओं को छोड़कर दक्षिण के शेष राजाओं ने एक संघ बनाकर समुद्रगुप्त का प्रतिरोध किया था। इस संघ का नेतृत्व कांची का शासक विष्णुगोप कर रहा था। इस संघ व समुद्रगुप्त के मध्य कुराल के पास युद्ध हुआ था। डॉ. डाण्डेकर का विचार है कि दक्षिण भारत के सभी बारह नरेश इस संघ में शामिल थे जिस पर समुद्रगुप्त ने विजय प्राप्त की थी।

3. **आर्यावर्त का द्वितीय अभियान**—समुद्रगुप्त ने अपने प्रथम आर्यावर्त-अभियान के समय **अच्युत, नागसेन, गणपतिनाग** व **कोटकुल-वंश** के किसी राजा को परास्त किया था किन्तु उनका उन्मूलन नहीं किया था। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ अभियान के समय उत्तर-भारत के इन राजाओं ने पुन: अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी तथा गुप्तों की बढ़ती हुई शक्ति से आतंकित होकर आर्यावर्त के अन्य शासक भी समुद्रगुप्त का विरोध करने के उद्देश्य से सिर उठाने लगे। कुछ विद्वानों का विचार है कि आर्यावर्त के सभी राजाओं ने मिलकर एक संघ बनाया था, तथा समुद्रगुप्त को इस संघ का सामना करना पड़ा था। किन्तु प्रयाग-प्रशस्ति में इस अनुमान के लिए किसी प्रकार का कोई संकेत उपलब्ध नहीं है।

आर्यावर्त के द्वितीय अभियान में समुद्रगुप्त ने निम्न 9 राजाओं को परास्त किया—

(i) **रुद्रदेव**—यह कौशाम्बी का राजा था।

(ii) **मतिल**—डॉ. जायसवाल के अनुसार यह अन्तर्वेदी का नागवंशी शासक था जिसकी राजधानी इन्द्रपुर (बुलन्दशहर के समीप) थी।

(iii) **नागदत्त**—इस राजा के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। इस राजा की मथुरा के समीप अनेक मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं।

(iv) **चन्द्रवर्मा**—इस राजा के विषय में अनेक मत हैं। भण्डारकर, राय चौधरी व सरकार इसे पूर्वी बंगाल के पोखरण का शासक मानते हैं जबकि हरप्रसाद शास्त्री इसे मारवाड़ का शासक बताते हैं।

(v) **गणपतिनाग**—यह विदिशा अथवा पद्मावती का शासक था।

(vi) **नागसेन**—यह मथुरा का शासक था।

(vii) **अच्युत**—यह अहिच्छत्र का शासक था।

(viii) **नन्दि**—डॉ. दुब्रिया नन्दि को विदिशा का राजा मानते हैं।

(ix) **बलवर्मा**—कुछ विद्वानों का मत है कि यह कामरूप का शासक था, परन्तु कामरूप आर्यावर्त में स्थित नहीं है, अत: किसी अन्य स्थान पर ही शासन करता होगा।

रैप्सन का विचार है कि आर्यावर्त के जिन नौ शासकों को समुद्रगुप्त ने परास्त किया, वे सम्भवत: पुराणों में उल्लिखित नवनाग हैं, किन्तु इस बात का कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के इन राजाओं से कुपित होकर उन्हें परास्त ही नहीं किया वरन् शक्ति के द्वारा उनका विनाश भी किया तथा उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस बात की पुष्टि प्रयाग-प्रशस्ति के 'आर्यावर्त राजनसभोद्धरण' शब्दों से होती है। समुद्रगुप्त की आर्यावर्त के राजाओं के प्रति उक्त नीति समयानुकूल थी व उसकी गहरी राजनीतिक सूझ-बूझ की द्योतक है। उत्तर-भारत पर एकछत्र शासन स्थापित करने के लिए आर्यावर्त के छोटे-छोटे राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाना समुद्रगुप्त के लिए आवश्यक था।

4. **आटविक राज्यों पर विजय**—प्रयाग-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने आटविक राज्यों के शासकों को अपना दास बना लिया था। इससे ऐसा आभास होता है कि समुद्रगुप्त ने आटविक राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। फ्लीट का विचार है कि ये आटविक राज्य उत्तर में गाजीपुर से लेकर जबलपुर तक फैले हुए थे। इस निष्कर्ष की पुष्टि एरण अभिलेख से भी होती है जिसके अनुसार ऐरिकेण-प्रदेश (सागर जिला) उसके अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत था, किन्तु कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि आटविक राज्य आर्यावर्त और पूर्वी सीमान्त प्रदेशों के बीच में स्थित थे।
5. **सीमावर्ती राज्यों द्वारा अधीनता**—प्रयाग-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त की उपरोक्त विजयों से प्रभावित होकर सीमावर्ती राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस प्रशस्ति की 23वीं व 24वीं पंक्तियों में पूर्वी व पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है, जिनका वर्णन निम्नलिखित है—

(i) **पूर्वी सीमान्त प्रदेश**—हरिषेण ने पाँच पूर्वी सीमान्त प्रदेशों का उल्लेख किया है, किन्तु पाँचों के नाम के अन्त में 'आदि' शब्द का प्रयोग किया है जिससे ऐसा आभास होता है कि इन प्रमुख पाँच राज्यों के अतिरिक्त भी कुछ छोटे-छोटे राज्य रहे होंगे। हरिषेण द्वारा उल्लिखित प्रमुख पाँच राज्य निम्नवत् थे—

(a) **समतट**—राय चौधरी के अनुसार समतट से तात्पर्य पूर्वी समुद्र-तट से है, इसकी राजधानी कर्मान्त थी।
(b) **डवाक**—फ्लीट का विचार है कि आधुनिक ढाका व चटगांव के स्थान पर यह स्थित था।
(c) **कामरूप**—इससे तात्पर्य आसाम से है। प्रो. राय का विचार है कि समुद्रगुप्त का समकालीन कामरूप शासक पुष्यवर्मा था जो हर्षकालीन भास्करवर्मा का पूर्वज था।
(d) **नेपाल**—समुद्रगुप्त के समय में नेपाल में लिच्छवि-वंश शासन कर रहा था। यह राज्य वैशाली के लिच्छवि राज्य से भिन्न था।
(e) **कर्तृपुर**—स्मिथ व रायचौधरी ने इसका समीकरण कुमाऊँ, गढ़वाल व रुहेलखण्ड से किया है।

(ii) **पश्चिमी सीमान्त प्रदेश**—हरिषेण द्वारा वर्णित पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में 9 गणराज्य थे, जिनका वर्णन निम्नलिखित है—

(a) **मालवा**—यह एक प्राचीन गणराज्य था। कालान्तर में मालव जाति राजस्थान में बस गई थी जिससे यह प्रदेश मालवा कहलाने लगा।
(b) **अर्जुनायन**—वह राज्य मध्य भारत व पूर्वी-पंजाब के मध्य स्थित था।
(c) **यौधेय**—यह राज्य वर्तमान रोहतक जिले के समीप स्थित था।
(d) **मद्रक**—मद्रक राज्य पंजाब में था।
(e) **आभीर**—यह भी एक प्राचीन गणराज्य था। यह पश्चिमी राजपूताना में था।
(f) **प्रार्जुन**—यह मध्यप्रदेश में ही था।
(g) **सनकानिक**—यह भी मध्यप्रदेश में ही था।
(h) **काक**—भिलसा के समीप यह राज्य स्थित था।
(i) **खरपरिक**—यह दमोह जिले में था।

प्रयाग-प्रशस्ति में प्रत्यन्त राज्यों की सूची विजित राज्यों की सूची से पृथक् दी गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त का इन राज्यों से युद्ध नहीं हुआ था। समुद्रगुप्त से भयभीत होकर स्वयं ही इन राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। प्रयाग-प्रशस्ति की 22वीं व 23वीं पंक्तियों से समुद्रगुप्त की इन राज्यों के प्रति नीति के विषय में भी पता चलता है। इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि सीमान्त प्रदेशों के शासकों ने निम्नलिखित तरीकों से समुद्रगुप्त को तुष्ट किया—

(a) **आज्ञाकरण**—आज्ञा मानकर।
(b) **सर्वकरदान**—सभी प्रकार के करों को देकर।
(c) **प्रणामागमन**—विनीत भाव धारण कर विशिष्ट अवसरों पर समुद्रगुप्त की सभा में उपस्थित होकर।

6. **विदेशी राज्य**—हरिषेण ने प्रयाग-प्रशस्ति में कुछ विदेशी शक्तियों का उल्लेख किया है जिन्होंने समुद्रगुप्त को आत्मसमर्पण करना (आत्म निवेदन), कन्याओं का उपहार देना तथा गरुड़-मुद्रा (गुप्तों की राजकीय मुद्रा) से अंकित

उसके आदेश को अपने-अपने शासन-क्षेत्रों में प्रचलित करना स्वीकार किया। अत: स्पष्ट है कि उपर्युक्त विदेशी राज्यों ने समुद्रगुप्त के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया था। यद्यपि प्रो. चट्टोपाध्याय, आदि का मत है कि यह वर्णन विश्वसनीय नहीं है, किन्तु अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे इस वर्णन की यथार्थता पर विश्वास किया जा सकता है। समुद्रगुप्त से मैत्री स्थापित करने वाले विदेशी राज्य निम्नलिखित थे—

(i) **देवपुत्र-षाहि-षाहानुषाहि**—यद्यपि इनके विषय में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है किन्तु इनका तात्पर्य उत्तरी कुषाणों से प्रतीत होता है जो उत्तर-पश्चिम भारत में शासन कर रहे थे।

(ii) **शक**—एलन का विचार है कि ये उत्तरी भारत के शक थे क्योंकि पश्चिम भारत के शकों का विनाश चन्द्रगुप्त द्वितीय ने किया था, न कि समुद्रगुप्त ने।

(iii) **मुरुण्ड**—हेमचन्द्र के 'अभिधानचिंतामणि' नामक ग्रन्थ के अनुसार मुरुण्ड लम्पाक (अफगानिस्तान) में शासन करते थे।

(iv) **सैंहल**—सैंहल द्वीप का अर्थ लंका से था। चीनी लेखों के अनुसार समुद्रगुप्त व लंका के तत्कालीन शासक मेघवर्ण के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। वांग-हुएन-त्से नामक एक चीनी लेखक के अनुसार मेघवर्ण ने अपना दूत भेजकर समुद्रगुप्त को बहुमूल्य उपहार भेंट किए थे तथा बोधगया में एक मठ का निर्माण कराया था, जिसमें महात्मा बुद्ध की रत्नजड़ित मूर्ति स्थापित की गई थी।

(v) **सर्वद्वीपवासी**—प्रयाग-प्रशस्ति के अनुसार सैंहल के अतिरिक्त अन्य सभी द्वीपवासियों ने भी समुद्रगुप्त को उपहार भेंट किए। ये समस्त द्वीप सम्भवत: दक्षिण-पूर्वी एशिया के थे।

अश्वमेध यज्ञ—दिग्विजय के पश्चात समुद्रगुप्त ने एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था। इस अवसर पर उसने एक विशेष प्रकार की स्वर्ण-मुद्राओं को प्रचलित किया जिनके एक ओर घोड़े की आकृति उत्कीर्ण है तथा उसके नीचे 'अश्वमेध पराक्रम' (अश्वमेध के योग्य पराक्रम वाला) लिखा है तथा मुद्रा के दूसरी ओर "**राजाधिराज: पृथिवीमवजित्य दिवं जयति अप्रतिवार्य-वीर्य:**" (राजाधिराज पृथ्वी को जीतकर अब स्वर्ग की जय कर रहा है, उसकी शक्ति और तेज अप्रतिम है) अंकित है।

साम्राज्य-विस्तार—समुद्रगुप्त ने अपनी अनेकानेक विजयों से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। समुद्रगुप्त ने उत्तराधिकार में एक छोटा-सा राज्य अपने पिता से प्राप्त किया था, किन्तु अपने पुत्र के लिए उसने एक विशाल साम्राज्य छोड़ा। समुद्रगुप्त के साम्राज्य में लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत, छत्तीसगढ़ व उड़ीसा के पठार तथा पूर्वी तट के अनेक प्रदेश सम्मिलित थे। इस प्रकार उसका साम्राज्य पूर्व में ब्रह्मपुत्र, दक्षिण में नर्मदा तथा उत्तर में कश्मीर की तलहटी तक विस्तृत था।

उत्तर भारत के एक बड़े भू-भाग पर समुद्रगुप्त स्वयं शासन करता था। स्वशासित प्रदेश के उत्तर व पूर्व में पाँच तथा पश्चिम में नौ गणराज्य उसके करद राज्य थे। दक्षिण के बारह राज्यों की स्थिति भी इन्हीं के समान थी। इन करद राज्यों के अतिरिक्त अनेक विदेशी राज्य भी समुद्रगुप्त के प्रभाव क्षेत्र में थे।

प्र.5. "समुद्रगुप्त गुप्त वंश का महानतम शासक था।" इसका मूल्यांकन कीजिए।
'Samudragupta was the greatest Gupta ruler'. Evaluate the statement.

उत्तर

समुद्रगुप्त का मूल्यांकन
(Evaluation of Samudragupta)

समुद्रगुप्त का राज्यकाल भारतीय इतिहास के पृष्ठों में राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना का मधुमय निदर्शन है। उसकी विलक्षण बहुमुखी प्रतिभा प्रशस्त गुणों से सम्पन्न एक ऐसे सम्राट का प्रतिनिधित्व करती थी, जो कुशल योद्धा, प्रवीण सेनापति, सफल संगठन-कर्ता, काव्यप्रेमी तथा कला एवं संस्कृति का प्रकाण्ड उन्नायक था। ऐसे प्रतिभाशील नरेश के उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में विरल हैं।?

समुद्रगुप्त असाधारण योद्धा, अनेक समर-विजेता एवं अजातशत्रु था। दिग्विजय के अभियानों में वह सैकड़ों समरों में उतरा था। युद्धों के कारण उसके कान्तिपूर्ण शरीर पर शस्त्रों से लगे सैकड़ों घाव शोभा पाते थे। इन विजयों द्वारा प्राप्त अपने विस्तृत साम्राज्य का संगठन समुद्रगुप्त की राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचायक है। प्रयाग-प्रशस्ति से स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त एक अखिल भारतीय साम्राज्य की भावना से प्रेरित था तथा भारत को राजनीतिक एकता प्रदान करना उसका प्रमुख ध्येय था, किन्तु उसने

सम्पूर्ण भारत को स्वशासित बनाने का प्रयास नहीं किया। उसने एक प्रबल केन्द्रीय सत्ता की स्थापना की जो छोटे राज्यों की विच्छेदक प्रवृत्तियों और उनके पारस्परिक वैमनस्य को रोकने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली थी। समीपवर्ती राज्यों को अपने साम्राज्य में विलीन कर दूरस्थ प्रदेशों को करद-राज्य बनाकर उसने स्वयं को कुशल राजनीतिज्ञ प्रमाणित किया। इस प्रकार उसके शासनकाल में एक महान साम्राज्य की दृढ़ व चिरस्थायी नींव रखी गई। **प्रो० आर० डी० बनर्जी** ने समुद्रगुप्त की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "समुद्रगुप्त एक महान् सम्राट था, सम्भवत: वह गुप्त-वंश का सबसे महान् शासक था। उसे अपने पिता से छोटा-सा राज्य प्राप्त हुआ था किन्तु उसने अपने उत्तराधिकारियों के लिए विशाल साम्राज्य छोड़ा। उसने शासन व सरकार की पद्धति में सुधार किया। उसके द्वारा चलाई गई शासन-पद्धति कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ, मुसलमानों के द्वारा उत्तरी भारत की विजय के समय तक चलती रही।" समुद्रगुप्त के विषय में **डॉ० आर० एस० त्रिपाठी** का मत भी उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में, "समुद्रगुप्त की प्रारम्भिक स्थिति चाहे जैसी भी रही हो, वह गुप्त सम्राटों में सबसे योग्य प्रमाणित हुआ और अपनी सफलताओं से उसने अपने पिता द्वारा अपने चयन के औचित्य को प्रमाणित कर दिया।"

समुद्रगुप्त का शासनकाल राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रत्येक दृष्टि से सामरिक महत्व का काल था। इसी कारण **आर० सी० मजूमदार** ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, "इसमें सन्देह नहीं है कि समुद्रगुप्त का व्यक्तित्व महान, प्रभावक व अद्वितीय था तथा उसने भारतीय इतिहास में नवीन युग का प्रादुर्भाव किया।" **डॉ० वी० ए० स्मिथ** ने भी समुद्रगुप्त के विषय में लिखा है, "समुद्रगुप्त अद्वितीय व्यक्तिगत गुणों व विभिन्न असाधारण योग्यताओं से परिपूर्ण व्यक्ति था। वह एक वास्तविक व्यक्ति, एक विद्वान, एक कवि, एक संगीतज्ञ और योद्धा था।" इसी कारण समुद्रगुप्त की तुलना चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक व नेपोलियन से की जाती है।

एरण अभिलेख में भी समुद्रगुप्त की अत्यन्त प्रशंसा की गई है। इस अभिलेख के अनुसार समुद्रगुप्त विशाल समुद्र की तरह अत्यन्त गम्भीर व गहन था। उसके व्यक्तित्व में उदयन की कलाप्रियता, चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रवीरता एवं साहसिकता, अशोक की मृदुता व दयालुता और पृथु व रघु की दानशीलता तथा राजर्षि जनक की विद्याप्रियता के समस्त गुण समवेत रूप से विद्यमान थे।

सम्राट समुद्रगुप्त शस्त्रों में ही नहीं शास्त्रों में भी प्रवीण था। युद्ध में जैसे वह अप्रतिरथ योद्धा था, शास्त्रों में उसी प्रकार विदग्ध, प्रज्ञावान और तत्वार्थदर्शी था। वह भारतीय संस्कृति का रक्षक एवं पोषक था तथा एक धर्म-सहिष्णु सम्राट था। वह वैष्णव धर्मावलम्बी था, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी उदार दृष्टिकोण रखता था। वह धर्म की मर्यादा को स्थापित करने वाला धर्म-प्रवर्तक राजा था।

समुद्रगुप्त साहित्य एवं कला-प्रेमी सम्राट था। प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कला व साहित्य के मर्मज्ञ समुद्रगुप्त पण्डितों व विद्वानों का आश्रयदाता था। वह स्वयं भी एक कवि था जिसने अपनी काव्य-निपुणता के कारण 'कवियों का राजा' की प्रख्याति प्राप्त की थी। समुद्रगुप्त की ललित-प्रवीणता उसके 'वीणा शैली' की मुद्राओं से भी होती है। **प्रयाग प्रशस्ति** के शब्दों में, "पराक्रमांक समुद्रगुप्त का व्यक्तित्व सैकड़ों सुचरितों से अलंकृत था तथा उसके अनेकानेक गुणों से नि:सृत उसकी कीर्ति की ज्योत्स्ना ने अन्य राजाओं की कीर्ति को अपने चरण-तल की युति से म्लान कर दिया था।" प्रयाग-प्रशस्ति में ही एक अन्य स्थान पर कहा गया है, "वह (समुद्रगुप्त) सब राजाओं का नाश करने वाला था, संसार में उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था और उसकी प्रसिद्धि चारों समुद्रों तक विस्तृत थी। वह मनुष्यों में देवता के समान, धन में कुबेर के समान, शक्ति में इन्द्र के समान और विद्वत्ता में बृहस्पति के समान था। वह यम की भाति अजेय, भले पुरुषों की आशा व बुरे पुरुषों का नाश करने वाला था।" अन्त में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि समुद्रगुप्त भारत के महत्तम सम्राटों में से एक था तथा वह अपनी उपलब्धियों के कारण विश्व-इतिहास में अविस्मरणीय है। **डॉ० आर० सी० मजूमदार** के अनुसार, "उसके (समुद्रगुप्त) सिक्कों और अभिलेखों के अध्ययन से हमारे समक्ष एक ऐसे वज्रदेह शक्तिशाली सम्राट की मूर्ति आ खड़ी होती है जिसके शारीरिक ओज के अनुरूप बौद्धिक एवं सांस्कृतिक सम्पन्नता ने उस नवयुग का सूत्रपात किया जिसमें आर्यावर्त ने, नवीन राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय एकात्मता पाँच सदियों के राजनीतिक विघटन और परकीय आधिपत्य के बाद, पुन: उपलब्ध की और नैतिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक और भौतिक समृद्धि की वह उच्चता अधिगत की जिसने इसे भारत का स्वर्णयुग बना दिया। ऐसा स्वर्णयुग जिसकी ओर अगणित भावी पीढ़ियाँ मार्ग-दर्शन और प्रेरणा के लिए सदा देखने वाली थीं।"

प्र.6. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के विषय में आप क्या जानते हैं? शासक के रूप में इसका विस्तृत वर्णन कीजिए।
What do you know about Chandragupta Vikramaditya? Give his detailed description as a ruler.

उत्तर

शासक के रूप में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य
(Chandragupta Vikramaditya as a Ruler)

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का एक अन्य नाम **देव** भी था और उसे **देवगुप्त, देवराज, देवश्री** आदि भी कहा गया है। **विक्रमांक, विक्रमादित्य, परमभागवत** आदि उसकी सुप्रसिद्ध उपाधियाँ थीं। इनसे जहाँ एक ओर उसका अतुल पराक्रम सूचित होता है, वहीं दूसरी ओर उसका धर्मनिष्ठ वैष्णव होना भी सिद्ध होता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने लगभग 40 वर्ष (375 ई० से 415 ई०) तक शासन किया। इस के शासन काल में गुप्तवंश ने राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से अभूतपूर्व प्रगति की तथा उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा। वस्तुत: उसका शासनकाल गुप्त इतिहास के सर्वाधिक गौरवशाली युग का प्रतिनिधित्व करता है।

एक शासक के रूप में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को निम्नलिखित प्रकार जान सकते हैं—

1. **शासन नीति के रूप में वैवाहिक सम्बन्ध**—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए वैवाहिक सम्बन्धों पर जो दिया। उसने तीन प्रमुख राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। नागवंशियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने नाग राजकुमारी कुबेरनागा के साथ अपना विवाह किया। उससे एक कन्या प्रभावतीगुप्ता पैदा हुई। पूना ताम्रपत्र में उसने अपनी माता को 'नागकुलसंभूता' (नागकुल में उत्पन्न) कहा है। नागवंश में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने उसका समर्थन प्राप्त कर लिया। यह गुप्तों की नवस्थापित चक्रवर्ती स्थिति के दृढ़ीकरण में बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हुआ।

   चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने **वाकाटकों** का सहयोग प्राप्त करने के लिए अपनी पुत्री प्रभावतीगुप्ता का विवाह वाकाटक शासक रुद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। विवाह के कुछ ही समय बाद रुद्रसेन की मृत्यु हो गई तथा प्रभावतीगुप्ता वाकाटक राज्य की संरक्षिका बनी, क्योंकि उस समय तक उसके दोनों पुत्र वयस्क नहीं हुए थे। उसके समय में वाकाटक लोग पूर्णतया चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के प्रभाव में आ गए। उनके ही शासन काल में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने गुजरात और काठियावाड़ पर भी विजय प्राप्त की।

   चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का विवाह कदम्ब वंश में किया। भोज के 'शृंगारप्रकाश' तथा क्षेमेन्द्रकृत 'औचित्यविचारचर्चा' से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने कालिदास को अपना दूत बनाकर कुन्तल नरेश के दरबार में भेजा था। वहाँ से वापस आने पर कालिदास ने बताया कि कुन्तल नरेश अपने शासन का भार चन्द्रगुप्त के ऊपर डालकर भोग-विलास में लिप्त हैं। इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त की ख्याति सुदूर दक्षिण में फैल गई।
2. **विजय अभियान**—शक तत्कालीन समय में गुजरात और काठियावाड़ में शासन करते थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिमी भारत में उनकी शक्ति का उन्मूलन किया। यद्यपि उन्होंने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी, तथापि उनका उन्मूलन नहीं किया जा सका था और वे अब भी बहुत शक्तिशाली थे। राजा होने के बाद चन्द्रगुप्त ने उन्हें पूर्णतया नष्ट करने के लिए एक व्यापक सैनिक अभियान किया और शकों का उन्मूलन किया। इस विजय से चन्द्रगुप्त की ख्याति चारों ओर फैल गई। इस विजय की चर्चा अनेक साहित्यिक ग्रन्थों में हुई है। सम्भवत: अपनी इसी उपलब्धि के बाद चन्द्रगुप्त ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। शक राज्य के गुप्त साम्राज्य में मिल जाने से उसका विस्तार पश्चिम में अरब सागर तक हो गया।

   इस विजय ने आर्थिक दृष्टि से भी गुप्त साम्राज्य की समृद्धि में योगदान दिया। इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी समुद्रतट के प्रसिद्ध बंदरगाह भृगुकच्छ (भड़ौच) के ऊपर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने नियन्त्रण कर किया। इसके माध्यम से पाश्चात्य विश्व के साथ साम्राज्य का व्यापार-वाणिज्य घनिष्ठ रूप से होने लगा जो देश की आर्थिक प्रगति में सहायक बना।
3. **चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन**—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एक योग्य एवं कुशल शासक था। उसका 40 वर्षों का दीर्घकालीन शासन शान्ति, सुव्यवस्था एवं समृद्धि का काल था। उसे अनेक योग्य तथा अनुभवी मन्त्रियों की सेवाएँ प्राप्त थीं। उसका प्रधान सचिव वीरसेन 'शैव' था। इसका उल्लेख उदयगिरि गुहाभिलेख में है। आम्रकार्द्दव उसका प्रधान सेनापति था। साँची के लेख में उसके नाम का उल्लेख है जहाँ उसे अनेक युद्धों में यश प्राप्त करने वाला कहा गया है।

सनकानीक महाराज पूर्वी मालवा प्रदेश का राज्यपाल रहा होगा। करमदण्डा लेख के अनुसार शिखरस्वामी उसका एक मन्त्री था। चन्द्रगुप्त द्वितीय का एक पुत्र गोविन्दगुप्त 'तीरभुक्ति' प्रदेश का राज्यपाल था। बसाढ़ मुद्रालेख में इस प्रान्त का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य निपुण प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारी भी थे।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में ही चीनी यात्री **फाह्यान** भारत आया था। उसने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य शासन की वह प्रशंसा की है। वह अपने यात्रा वृत्तान्त में लिखता है, "प्रजा सुखी एवं समृद्ध थी तथा लोग परस्पर सौहार्दपूर्वक रहते थे। उन्हें न तो अपने मकानों की रजिस्ट्री करानी पड़ती थी और न ही न्यायालयों में न्यायाधीशों के सम्मुख पेश होना पड़ता था। वे चाहे जहाँ और जिस स्थान पर जा सकते तथा रह सकते थे। राजा बिना दण्ड के शासन करता था। दण्ड-विधान सरल थे फिर भी अपराध बहुत कम होते थे। मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जाता था। बार-बार राजद्रोह के अपराध में दाहिना हाथ काट लिया जाता था। सड़कों पर आवागमन पूरी तरह सुरक्षित था। राज्य में बहुत कम कर लगते थे। जो लोग राजकीय भूमि पर खेती करते थे उन्हें अपनी उपज का एक भाग कर के रूप में राजा को देना पड़ता था।"

ऐसा प्रतीत होता है कि **महाकवि कालिदास** ने भी इसी शान्ति और व्यवस्था की ओर संकेत करते हुए उल्लेख किया है—"जिस समय वह राजा शासन कर रहा था, उपवनों में मद पीकर सोती हुई सुन्दरियों के वस्त्रों को वायु तक स्पर्श नहीं कर सकता था, तो फिर उनके आभूषणों को चुराने का साहस कौन कर सकता था।" चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में शान्ति और व्यवस्था का वातावरण था। यहाँ तक कि फाह्यान जोकि एक विदेशी था, को कहीं भी किसी प्रकार की असुरक्षा का सामना नहीं करना पड़ा।

4. **धर्मसहिष्णु शासक**—चन्द्रगुप्त एक धर्मनिष्ठ वैष्णव था, लेकिन अन्य धर्मानुयायियों के प्रति भी पर्याप्त सहिष्णु था। उसने बिना किसी भेदभाव के अन्य धर्मावलम्बियों को प्रशासन में उच्च पदों पर नियुक्त किया तथा दूसरे धर्मों के लोगों को दान दिया। उसका सचिव वीरसेन शैव था। उसने भगवान शिव की पूजा के लिए उदयगिरि पहाड़ी पर एक गुफा का निर्माण करवाया। उसका सेनापति आम्रकार्द्दव बौद्ध था। साँची लेख में उल्लेख है कि उसने साँची महाविहार के आर्यसंघ को 25 दीनारें और ईश्वरवासक ग्राम दान में दिया। आम्रकार्द्रदव ने प्रतिदिन पाँच भिक्षुओं को भोजन कराने और रत्नगृह में दीपक जलाने के लिए दान दिया था। इसी प्रकार मथुरा लेख में आर्योदिताचार्य नामक एक शैव का उल्लेख मिलता है, जिसने पुण्य अर्जित करने के लिए दो शिवलिंगों की स्थापना करवायी थीं।
5. **ज्ञान संरक्षक**—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में पाटलिपुत्र एवं उज्जयिनी विद्या के प्रमुख केन्द्र थे। स्वयं विद्वान् व विद्वानों का आश्रयदाता था। उस उसके दरबार में नौ विद्वानों की एक मण्डली निवास करती थी। इन्हें संयुक्त रूप से 'नवरत्न' कहा जाता है। महाकवि कालिदास सम्भवत: इनमें अग्रणी थे। कालिदास के अतिरिक्त इनमें धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, घटकर्पर, वराहमिहिर, शंकु, बेतालभट्ट, वररुचि जैसे विद्वान् सम्मिलित थे। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के अन्य दरबारी भी रहे होंगे। **राजशेखर** ने अपने काव्यमीमांसा में इस बात का वर्णन किया है कि उज्जयिनी में कवियों की परीक्षा लेने के लिए एक विद्वत्परिषद् थी। इस परिषद् ने कालिदास, अमरू, हरिश्चन्द्र, भर्तृमेठ, भारवि, चन्द्रगुप्त आदि कवियों की परीक्षा ली थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ चन्द्रगुप्त से तात्पर्य चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय एक महान् विजेता, कूटनीतिज्ञ, विद्वान्, कुशल शासक और विद्या का उदार संरक्षक था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी तथा उसके काल में गुप्त साम्राज्य का चहुँमुखी विकास हुआ। जिस साम्राज्य को उसके पिता समुद्रगुप्त ने निर्मित किया, वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में पूर्णतया संगठित, सुव्यवस्थित एवं सुशासित होकर उन्नति की चोटी पर पहुँच गया।

प्र.7. फाह्यान द्वारा किए गए भारत-विषयक वर्णन पर प्रकाश डालिए।
Throw light of Fa-Hien's description of India.

उत्तर

फाह्यान का भारत-वर्णन
(Fa-Hien's Description of India)

सम्राट अशोक व कुषाण-शासक कनिष्क के प्रयत्नों से बौद्ध-धर्म का तीव्र गति से प्रसार हुआ था। बौद्ध-धर्म से प्रभावित होकर समय-समय पर अनेक चीनी यात्रियों ने भारत की यात्रा की ताकि बौद्ध-धर्म सम्बन्धी अपनी अनेक जिज्ञासाओं का समाधान कर सकें तथा अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त कर सकें। इन्हीं यात्रियों में से एक फाह्यान था।

प्रारम्भिक जीवन—फाह्यान का जन्म चीन के वु-यंग नामक स्थान पर हुआ था तथा उसका प्रारम्भिक नाम कुङ था। उसका पिता बौद्ध धर्मावलम्बी था तथा कुङ को भी बौद्ध शिक्षा प्रदान करना चाहता था। कुङ एक बार गम्भीर रूप से बीमार पड़ा तथा उसके पुन: स्वस्थ होने की कोई आशा न रही तो उसके पिता ने उसे एक बौद्ध-मठ में भेज दिया जहाँ बौद्ध-भिक्षुओं की सेवा से वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। इससे उसके हृदय में बौद्ध-धर्म के प्रति आस्था और प्रबल हो गई व उसने मठ में ही रहने व श्रमण-जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। इस समय से जबकि उसने प्रव्रज्या ग्रहण की कुङ को फाह्यान कहा जाने लगा क्योंकि चीनी भाषा में 'फा' का अर्थ है धर्म व 'हियान' का अर्थ है आचार्य। इस प्रकार फाह्यान का अर्थ धर्माचार्य हुआ।

फाह्यान जिस समय बौद्ध-धर्म की शिक्षा ग्रहण कर रहा था तब उसे ज्ञात हुआ कि चीन में बौद्ध-धर्म का ज्ञान अधूरा है, अत: उसने बौद्धधर्म के प्रामाणिक ग्रन्थों को प्राप्त करने, बौद्ध-धर्म की जन्म-भूमि भारत के दर्शन करने तथा बौद्ध-तीर्थस्थलों का दर्शन करने के उद्देश्य से भारत यात्रा का कार्यक्रम बनाया।

यात्रा—फाह्यान ने 399 ई० में भारत-यात्रा के लिए प्रस्थान किया व 414 ई० तक भारत में विभिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों का पर्यटन किया। भारत की यात्रा प्रारम्भ करते समय फाह्यान के साथ उसके कुछ साथी हुई-यिंग, हुई-चिंग, हुई-वेई तथा ताओ-तेंग थे। सर्वप्रथम फाह्यान शन-शन पहुँचा। इसके पश्चात् वह कर शहर पहुँचा जहाँ अनेक बौद्ध-मठ थे। कर शहर के पश्चात् वह निरन्तर यात्रा करता हुआ खोतान पहुँचा जहाँ 14 बड़े बौद्ध-मठ थे। खोतान से वह काशगर पहुँचा, तत्पश्चात् अनेक कष्टों को सहते हुए वह पुष्कलावती पहुँचा जहाँ एक स्तूप होने का उल्लेख फाह्यान ने किया है। पुष्कलावती से फाह्यान तक्षशिला पहुँचा। तक्षशिला से फाह्यान पुरुषपुर (पेशावर) गया, जहाँ उसने कनिष्क के द्वारा निर्मित 400 फुट ऊँचा स्तूप देखा । पुरुषपुर से फाह्यान पंजाब, मथुरा, मध्यदेश, कन्नौज, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, राजगृह, कुशीनगर, वैशाली, काशी, सारनाथ, बोधगया, नालन्दा, पाटलिपुत्र, आदि स्थानों से होता हुआ वह ताम्रलिप्ति बन्दरगाह पहुँचा। ताम्रलिप्ति से श्रीलंका होते हुए वह चीन लौट गया। इस प्रकार फाह्यान भारत आया थल-मार्ग से व गया जल-मार्ग से था। फाह्यान ने 405 ई० में भारत में प्रवेश किया था तथा 411 ई० तक वह भारत में रहा। इनमें से तीन वर्ष उसने पाटलिपुत्र में व्यतीत किए थे।

भारत-वर्णन—फाह्यान बौद्ध-पाण्डुलिपियों व अन्य प्राचीन अवशेषों के संग्रह में इतना संलग्न रहा था कि अन्य पार्थिव वस्तुओं के प्रति वह उदासीन बना रहा, यहाँ तक कि उसके जिस सम्राट के शासन में अपनी भारत यात्रा के वर्ष व्यतीत किए उसके (चन्द्रगुप्त द्वितीय) नाम का उल्लेख तक फाह्यान ने अपने वृत्तान्त में नहीं किया है, किन्तु फिर भी उसने भारत के निवासियों के जीवन व देश की तत्कालीन स्थिति के विषय में विस्तृत वृत्तान्त लिखा है जिसका ऐतिहासिक-साक्ष्य के रूप में अत्यन्त महत्व है। फाह्यान का यात्रा-वृत्तान्त 'फो-क्वो-की' (Fo-Kwo-ki) नामक ग्रन्थ के रूप में मिलता है।

1. **सामाजिक स्थिति**—फाह्यान ने भारतीय-समाज की अत्यन्त प्रशंसा की है। उसके अनुसार भारतीय अत्यधिक अतिथि सत्कार की भावना से प्रेरित थे तथा दयालु एवं धार्मिक प्रवृत्ति के थे। जनता साधारणतया शाकाहारी थी तथा अहिंसात्मक नीति का पालन करती थी। लोग प्याज, लहसुन, मांस, मछली तथा मदिरा का प्रयोग नहीं करते थे। केवल चाण्डाल ही मांस का भक्षण करते थे। चाण्डाल अस्पृश्य थे, वह नगर से बाहर रहते थे। जब कभी वे नगर में प्रवेश करते थे तो ढोल बजाते हुए चलते थे ताकि सवर्ण हिन्दू उनके स्पर्श से बच जाएँ। शिकार भी केवल चाण्डाल ही करते थे। फाह्यान ने वैश्यों की अत्यधिक प्रशंसा की है। फाह्यान ने लिखा है कि भारतीय उत्सवों एवं समारोहों को पसन्द करते थे तथा वैशाख की अष्टमी के दिन एक विशेष प्रकार का उत्सव मनाते थे तथा एक जुलूस निकालते थे जो नगर के प्रत्येक भाग से निकलता था।
2. **आर्थिक स्थिति**—फाह्यान के वर्णन से पता चलता है कि भारत का व्यापार उन्नत अवस्था में था। फाह्यान ने अपने साथ सफेद रेशम लेकर भारत आने वाले एक चीनी व्यापारी का उल्लेख किया है जिससे पता चलता है कि भारत व चीन के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध थे व चीन से रेशम आयात की जाती थी। फाह्यान ने लिखा है कि बड़ी वस्तुओं के क्रय-विक्रय में मुद्राओं व छोटी वस्तुओं के क्रय-विक्रय में कौड़ियों का प्रयोग किया जाता था।
3. **राजनीतिक दशा**—फाह्यान ने भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का वर्णन किया है। उसके अनुसार भारत का सम्राट ब्राह्मण-धर्म का अनुयायी था तथा उसका शासन-प्रबन्ध सुव्यवस्थित था। शासन उदार व हल्का था। व्यक्तिगत करों का अभाव था। गृहस्थों को अपने घरों और कुलों का पंजीकरण नहीं कराना पड़ता था। भारतीय दण्ड-व्यवस्था के कानून भी सरल व उदार थे। अपराधियों के साथ भी उदारता का व्यवहार किया जाता था व अपराधों की गुरुता के आधार

पर उनको दण्डित किया जाता था। प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था। देशद्रोहिता करने पर दाहिना हाथ काटा जाता था। शारीरिक यातनाएँ नहीं दी जाती थीं। चोरी-डकैती की घटनाएं भी न के बराबर थीं। राजा व प्रजा के आने-जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। जनता प्रभूत एवं प्रसन्न थी। फाह्यान के वृत्तान्त से ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में जनता सुखी थी व दण्ड विधान साधारण था।

4. **पाटलिपुत्र**—फाह्यान लगभग तीन वर्षों तक पाटलिपुत्र में रहा था, अत: अपने वृत्तान्त में उसने पाटलिपुत्र के विषय में अनेक बातें लिखी हैं। फाह्यान के अनुसार पाटलिपुत्र में दो विशाल और सुन्दर विहार थे जिनमें से एक हीनयान व दूसरा महायान का था। इनमें लगभग 600-700 बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। ये भिक्षु इतने विद्वान थे कि भारत के प्रत्येक क्षेत्र से लोग इनके दर्शन करने के लिए आते थे। फाह्यान ने अशोक के राजभवन का भी उल्लेख किया है। उसके वैभव को देखकर फाह्यान दंग रह गया था तथा उसने लिखा है कि यह राजप्रासाद अमानवीय व दैवीय शक्तियों द्वारा बनाया गया होगा। पाटलिपुत्र में समृद्ध नागरिकों द्वारा एक चिकित्सालय भी चलाया जाता था जिसमें निर्धन रोगियों को भोजन व औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती थीं। बड़े-बड़े नगरों तथा राजमार्गों पर यात्रियों के विश्राम के लिए धर्मशालाएँ बनी हुई थीं।
5. **धार्मिक दशा**—फाह्यान के अनुसार भारत में विभिन्न धर्म विद्यमान थे। फाह्यान भारत में तीर्थाटन व बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का अध्ययन करने के उद्देश्य से आया था; अत: उसने, बौद्ध-धर्म कहाँ सबल तथा कहाँ निर्बल था, का विस्तृत वर्णन किया है। फाह्यान के अनुसार पंजाब व बंगाल में बौद्ध-धर्म उन्नत अवस्था में था, किन्तु मध्यदेश में उसका पतन हो रहा था। मध्यदेश में ब्राह्मण-धर्म उन्नत अवस्था में था तथा राजा स्वयं भी वैष्णव-धर्म का अनुयायी था। ब्राह्मण व बौद्ध धर्मावलम्बियों में पारस्परिक वैमनस्य न था व किसी प्रकार की धार्मिक असहिष्णुता दिखाई नहीं देती थी। परलोक में सब विश्वास करते थे।

फाह्यान के वर्णन से स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में शान्ति विद्यमान थी व जनता सुखी व सम्पन्न थी। उस समय शासन-व्यवस्था उच्चकोटि की थी तथा लोग धार्मिक मनोवृत्ति वाले एवं राज्य धर्म-सहिष्णु था।

प्र.8. गुप्तकाल को प्राचीन भारतीय इतिहास का 'स्वर्णयुग' कहा जाता है? क्यों? तर्क सहित अपने उत्तर का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Why is Gupta period known as the Golden Age of Ancient Indian History? Give a detailed answer.

उत्तर

गुप्तकाल : प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग
(Gupta Period : The Golden Age of Ancient Indian History)

गुप्तवंश में हिन्दू संस्कृति अपने उत्कर्ष के चरम पर पहुँच गई। गुप्तवंश के शासनकाल में सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में जितनी उन्नति हुई वह प्राचीन भारतीय इतिहास में पहले कभी नहीं हुई। गुप्तकाल में हुई चहुँमुखी प्रगति को देखते हुए ही प्रसिद्ध इतिहासकारों ने गुप्त वंश को 'स्वर्ण-युग' कहा है।

गुप्तकाल को भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग कहने के कारण निम्नलिखित हैं—

1. **योग्य व कुशल सम्राट**—गुप्त काल में अनेक महान् एवं यशस्वी सम्राटों का उदय हुआ। इन्होंने अपनी विजयों से एकच्छत्र शासन की स्थापना की। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य आदि इस काल के योग्य और समर्थ सम्राट थे। शक-कुषाण आदि शक्तियों द्वारा उसे अपना सम्राट स्वीकार किया गया। समुद्रगुप्त ने न केवल आर्यावर्त के राजाओं का उन्मूलन किया, अपितु सुदूर दक्षिण तक अपनी विजय का परचम फहराया। समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य भी उसी के समान वीर योद्धा था। उसने गुजरात और काठियावाड़ के शकों की शक्ति को नष्ट करके साम्राज्य का विस्तार किया। गुप्त वंश का अन्तिम प्रतापी शासक स्कन्दगुप्त हुआ। उसने हूण जैसी बर्बर एवं भयानक जाति को हराकर अपनी वीरता का अप्रतिम परिचय दिया। वस्तुत: गुप्तकाल महान् सम्राटों का काल रहा। इतने वीर एवं यशस्वी शासक प्राचीन भारतीय इतिहास के किसी अन्य युग में दिखाई नहीं देते।
2. **वृहद् राजनीतिक एकता**—मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद पहली बार इतने व्यापक रूप से राजनीतिक एकता स्थापित हुई। गुप्त युग में वृहद् राजनीतिक एकता स्थापित हुई। अपने उत्कर्ष काल में गुप्त-साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल से पश्चिम में सुराष्ट्र तक विस्तृत था। यह भाग गुप्त राजाओं के प्रत्यक्ष शासन

के अधीन था जबकि सुदूर दक्षिण तक उनका यश व्याप्त था। दक्षिणापथ के शासक उनकी राजनीतिक प्रभुसत्ता स्वीकार कर चुके थे। गुप्त सम्राट सम्पूर्ण देश में एकच्छत्र शासन स्थापित करना चाहते थे। अपने पराक्रम एवं वीरता के बल पर उन्होंने लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बाँध दिया था। गुप्त युग में देश की भौतिक तथा नैतिक उन्नति उसकी सुदृढ़ राजनीतिक परिस्थितियों का ही परिणाम थी।

3. **समृद्ध आर्थिक स्थिति**—गुप्तकाल आर्थिक दृष्टि से भी समृद्ध था। लोगों की जीविका का प्रमुख स्रोत कृषि-कर्म ही था, लेकिन इस काल के सम्राटों ने कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया। सिंचाई की बहुत ही उत्तम व्यवस्था थी। प्राय: सभी प्रकार के अन्नों एवं फलों का उत्पादन होता था। कालिदास के विवरण के अनुसार इस समय धान एवं ईख की खेती अधिकता में होती थी। कृषि के साथ-साथ व्यापार और व्यवसाय भी उन्नति कर रहे थे। सम्पूर्ण राज्य में अनेक व्यापारिक श्रेणियाँ तथा निगम थे। उज्जयिनी, दशपुर, पाटलिपुत्र, वैशाली, भड़ौच आदि इस काल के प्रसिद्ध व्यापारिक नगर थे। स्थल तथा जल दोनों ही मार्गों से व्यापार होता था। भड़ौच तथा ताम्रलिप्ति प्रमुख बंदरगाह थे।
   गुप्तकाल में भारत का व्यापार मिस्र, रोम, अरब, फारस, चीन व दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ होता था। विदेशों में भारतीय वस्तुओं की बड़ी माँग थी। जलीय व्यापार के लिए इस समय बड़े-बड़े जहाजी बेड़ों का निर्माण किया गया था। जावा के बोरोबुदूर स्तूप के ऊपर जहाज के कई चित्र अंकित हैं। इन चित्रों से इस बात की सूचना मिलती है कि भारतीयों ने बड़े-बड़े जहाजों द्वारा वहाँ प्रवेश किया था। जावा, सुमात्रा, पेगु, कम्बोडिया, बोर्नियो में भारतीयों ने उपनिवेश स्थापित किए तथा चीन, अरब और फारस के साथ उनका व्यापारिक सम्बन्ध था। इस प्रकार गुप्तयुगीन भारत आर्थिक सम्पन्नता का काल रहा।

4. **सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था**—गुप्त काल के शासक प्रतिभासम्पन्न थे। सम्पूर्ण गुप्त साम्राज्य में भौतिक एवं नैतिक समृद्धि का वातावरण विद्यमान था। उनकी शासनव्यवस्था न केवल प्राचीन अपितु आधुनिक युग के लिए भी आदर्श कही जा सकती है। यह व्यवस्था प्रत्येक दृष्टि से उदार एवं लोकोपकारी थी। शान्ति एवं व्यवस्था का राज्य था जहाँ आवागमन पूर्णतया सुरक्षित था। गुप्त नरेशों ने प्राचीन भारतीय दण्ड व्यवस्था के कड़े नियमों को उदार तथा सरल बनाया और मृत्युदण्ड को पूर्णतया समाप्त कर दिया। स्कन्दगुप्तकालीन जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि उस समय कोई भी व्यक्ति दु:खी, व्यसनी, दरिद्र, लोभी या पीड़ित नहीं था।
   इस काल में पुलिस अथवा गुप्तचरों के आचरण से प्रजा दु:खी नहीं थी। सम्राट निरन्तर अपनी प्रजा के जन-जीवन को सुखी एवं सुविधापूर्ण बनाने के लिए प्रयास करते रहते थे। गुप्त शासन के अनेक तत्त्व आधुनिक प्रजातन्त्रात्मक शासन में भी देखे जा सकते हैं।

5. **साहित्य, विज्ञान व कला की उन्नति**—गुप्तकाल में साहित्य, विज्ञान और कला का अत्यधिक विकास हुआ। संस्कृत राजभाषा के रूप में प्रयोग उपयोग की जाती थी। संस्कृत साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। गुप्त सम्राट स्वयं संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। इन सम्राटों ने अपनी राजसभा में उच्चकोटि के विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। महाकवि एवं नाटककार कालिदास भी इसी युग के विद्वान हैं। इनकी रचनाएँ 'मेघदूतम् रघुवंशम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम्' संस्कृत साहित्य में अमूल्य हैं। भारतीय षड्दर्शनों में अधिकतर का पूर्ण विकास इसी युग में हुआ तथा प्रसिद्ध दार्शनिक वसुबन्धु इस काल में थे। संस्कृत के प्रसिद्ध कोशकार अमरसिंह इसी काल में हुए। गुप्तकाल ने ही आर्यभट्ट तथा वाराहमिहिर जैसे विश्वप्रसिद्ध गणितज्ञ एवं ज्योतिषाचार्य उत्पन्न किए जिनकी रचनाएँ आज भी प्राचीन विश्व के विज्ञान को भारत की महानतम देन हैं। सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने ही यह अन्वेषण किया कि पृथ्वी अपनी धुरी की परिक्रमा करती है तथा सूर्य के चारों ओर घूमती है।
   कला के विविध पक्षों—वास्तु, तक्षण, चित्र आदि का सम्यक् विकास गुप्त काल में हुआ था। इस काल की कला में शालीनता, आध्यात्मिकता तथा भारतीयता विद्यमान है। भूमरा तथा नचना के शिव-पार्वती मन्दिर, सारनाथ तथा मथुरा की बुद्ध एवं विष्णु मूर्तियाँ तथा अजन्ता की चित्रकारियाँ निश्चयत: भारतीय कला के इतिहास में उत्कृष्ट हैं। अजन्ता की गुफाओं के कुछ चित्र तो इतने सजीव, करुणोत्पादक तथा हृदय को द्रवीभूत करने वाले हैं कि न केवल भारतीय बल्कि विदेशी कलामर्मज्ञ भी उनकी अत्यधिक प्रशंसा करते हैं। इस काल के तक्षण तथा चित्रकला ने वह मानदण्ड प्रस्तुत किया। यह बाद के युगों के लिए आदर्श बना रहा।

6. **धार्मिक सहिष्णुता**—वस्तुत: गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल रहा, जिसमें ब्राह्मण, बौद्ध, जैन आदि विभिन्न मतानुयायी परस्पर प्रेम एवं सौहार्दपूर्वक रहते थे। गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध है। गुप्त सम्राट 'परमभागवत' की उपाधियाँ धारण करते थे, परन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी वे पूर्णरूपेण उदार एवं सहिष्णु बने रहे। उन्होंने न तो अपने धर्म को बलपूर्वक किसी के ऊपर थोपने का प्रयास किया और न ही अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति किसी प्रकार का अत्याचार या दुर्व्यवहार किया। गुप्त सम्राटों ने बिना किसी भेद-भाव के उच्च प्रशासनिक पदों पर भिन्न-भिन्न धर्म मानने वालों की नियुक्तियाँ की थीं। चन्द्रगुप्त द्वितीय का विदेश मन्त्री वीरसेन शैव था जबकि आम्रकार्द्दव नामक बौद्ध व्यक्ति उसकी सेना का उच्च पद धारण करने वाला व्यक्ति था। साँची लेख से स्पष्ट होता है कि उसने काकनादबोट नामक महाविहार को एक ग्राम तथा 25 दीनारें दान में दिया था। इससे पाँच भिक्षु प्रतिदिन भोजन ग्रहण करते थे तथा रत्नगृह में दीपक जलाया जाता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल प्राचीन भारत के इतिहास का 'स्वर्णयुग' था।

प्र.9. गुप्त-वंश के पतन के लिए उत्तरदायी कारणों का वर्णन कीजिए।
Describe the reasons responsible for the decline of the Gupta dynasty.

उत्तर

गुप्त वंश के पतन के कारण
(Causes for the Decline of Gupta Dynasty)

गुप्त-साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरयी प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. **स्कन्दगुप्त के अयोग्य उत्तराधिकारी**—गुप्त-साम्राज्य में पतन के लिए उत्तरदायी एक प्रमुख कारण स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त-सिंहासन पर किसी शक्तिशाली शासक का आसीन न होना था। गुप्त-साम्राज्य का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था, तथा इस प्रकार की शासन-पद्धति में राज्य का विकास व पतन राजा की योग्यता पर निर्भर करता है। इसी कारण समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त जैसे योग्य व प्रतापी शासक गुप्त-साम्राज्य को इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सफल हुए, किन्तु दुर्भाग्यवश स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी अयोग्य व निर्बल प्रमाणित हुए। वे उत्तराधिकार में प्राप्त गुप्त-साम्राज्य को अक्षुण्ण भी न रख सके। स्कन्दगुप्त के पश्चात् के गुप्त शासकों में कोई भी इतना पराक्रमी न हुआ जो दूरस्थ प्रदेशों के सामन्तों पर नियन्त्रण रख सकता। यद्यपि बुधगुप्त व भानुगुप्त ने गुप्त साम्राज्य के विघटन को रोकने के लिए अथक प्रयत्न किया, किन्तु वे अपने उद्देश्य में सफल न हो सके। इस प्रकार केन्द्रीय शक्ति के निर्बल होते ही गुप्त-साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया।
2. **बाह्य-आक्रमण**—गुप्त-साम्राज्य के पतन का एक अन्य प्रमुख कारण गुप्त-साम्राज्य पर निरन्तर वैदेशिक आक्रमणों का होना था। कुमारगुप्त के शासनकाल में पुष्यमित्रों व स्कन्दगुप्त के समय हूणों के आक्रमणों को यद्यपि योग्य गुप्त-शासकों ने विफल कर दिया, किन्तु हूण उसके पश्चात् भी निरन्तर भारत पर अधिकार करने का प्रयत्न करते रहे। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् हूणों ने गुप्त-साम्राज्य को आघात पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया तथा बढ़ते हुए चित्रकूट तक पहुँच गए। **प्रो० राय** का विचार है कि गुप्तों को निर्बल बनाने में सबसे बड़ा हाथ हूणों का ही था। इन लोगों ने रोम-साम्राज्य के समान गुप्त-साम्राज्य को भी गहरा धक्का पहुँचाया। डॉ० आर० एस० त्रिपाठी भी हूण-आक्रमणों को गुप्तों के पतन के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी मानते हैं। **डॉ० त्रिपाठी** के अनुसार, "बर्बर जाति की अनवरत चोटों ने, जिनसे विश्व के अनेक सभ्य साम्राज्य टूट चुके थे, गुप्त साम्राज्य को भी अन्त में तार-तार कर डाला।" किन्तु **डॉ० मजूमदार** इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार गुप्त-साम्राज्य को वास्तविक आघात हूणों ने नहीं वरन् यशोधर्मा जैसे महत्वाकांक्षी शासकों ने पहुँचाया था। हूण आक्रमण के प्रभाव तो अल्पजीवी थे किन्तु यशोधर्मा जैसे शासकों ने गुप्त-साम्राज्य को पूर्णत: समाप्त कर दिया।

   हूण आक्रमण चाहे गुप्त साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण न रहा हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इसने गुप्त साम्राज्य को गहरा आघात पहुँचाया। इसी कारण **स्मिथ** ने लिखा है कि हूण आक्रमणों ने गुप्त-साम्राज्य के टुकडे-टुकडे कर दिए तथा नवीन राज्यों के उदय के लिए आधार प्रदान कर दिया।
3. **सामन्तों तथा प्रान्तपतियों द्वारा स्वतन्त्र होना**—गुप्तकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में प्रान्तीय शासकों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, तथा ये प्रान्तीय शासक राजवंशीय लोगों के अतिरिक्त योग्य कर्मचारियों में से भी नियुक्त किए

जाते थे। ये नृप, महाराज आदि उपाधियाँ भी धारण करते थे। स्कन्दगुप्त के शासनकाल तक तो केन्द्रीय सत्ता शक्तिशाली होने के कारण ये प्रान्तीय शासक सुचारु रूप से शासन करते रहे, किन्तु स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् शक्तिशाली राजा के अभाव में इन अवसरवादी प्रान्तीय शासकों ने अपनी-अपनी स्वतन्त्रता घोषित करना प्रारम्भ कर दी। सर्वप्रथम सौराष्ट्र प्रान्त गुप्त-साम्राज्य से अलग हो गया। **प्रो० राय** के शब्दों में, "उनकी (प्रान्तपतियों) कुलहित-संरक्षण की भावना एवं विरोधी कृतियाँ गुप्त-साम्राज्य के ढाँचे के लिए ध्वंसात्मक सिद्ध हुईं।"

4. **आन्तरिक कलह**—गुप्तों के पतन के लिए आन्तरिक कलह भी उत्तरदायी थी। **प्रो० राय चौधरी** ने लिखा है कि गुप्त-साम्राज्य के अन्तिम वर्षों में पुष्यमित्रों का विद्रोह, हूणों का आक्रमण तथा प्रान्तीय सामन्तों एवं अधिकारियों की स्वतन्त्र होने की प्रवृत्ति ही पतन के कारण नहीं थे। बाह्य-आक्रमणों तथा प्रान्तीय सामन्तों द्वारा आन्तरिक विद्रोह के साथ-साथ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि स्वयं गुप्त-वंश में फूट और कलह उत्पन्न हो चुकी थी। चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् से ही गुप्त-सिंहासन पर अधिकार करते हुए राजकुमारों में पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न होने लगा था। अन्तिम गुप्त-सम्राटों के वंशज अपने समय में होने वाले युद्धों व संघर्षों में अक्सर एक-दूसरे के विरुद्ध होकर लड़ने लगे थे। वाकाटकों के साथ इनका व्यवहार मैत्रीपूर्ण नहीं था।
   ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त-वंश में उत्तराधिकार सम्बन्धी कोई निश्चित नियम नहीं थे। अत: सिंहासन पर अधिकार करने के प्रश्न पर राजकुमारों में परस्पर संघर्ष होने लगता था। ऐसे कठिन समय में, जबकि हूण आक्रमण व सामन्तों द्वारा स्वतन्त्रता का प्रयास किया जा रहा था, गुप्त-वंश के राजकुमारों ने एकता प्रदर्शित करने के स्थान पर पारस्परिक क्लेश ही उत्पन्न किया, ऐसी स्थिति में गुप्त-साम्राज्य का पतन होना स्वाभाविक ही था।
5. **साम्राज्य की विशालता**—समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रयत्नों से एक विशाल गुप्त-साम्राज्य की स्थापना हुई थी। स्कन्दगुप्त के पश्चात् इतने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा करने में कोई भी गुप्त शासक सफल न हुआ। आवागमन के साधनों के अभाव में वे विशाल गुप्त साम्राज्य को नियन्त्रित न रख सके।
6. **युद्धों का आधिक्य व आर्थिक दुर्बलता**—प्रारम्भिक गुप्त नरेशों ने अपने साम्राज्य के विस्तार हेतु साम्राज्यवादी नीति का पालन किया था। साम्राज्यवादी नीति का पालन करने में स्वाभाविकत: उन्हें निरन्तर युद्धों में रत रहना पड़ा। कुमारगुप्त व उसके अनुगामी शासकों को भी निरन्तर युद्ध लड़ने पड़े क्योंकि तब भारत पर विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे तथा भारत की स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए इन विदेशी आक्रान्ताओं का सामना करना आवश्यक था। इन निरन्तर युद्धों ने गुप्त साम्राज्य को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। इन युद्धों के परिणामस्वरूप एक ओर तो गुप्तों की आन्तरिक संगठन-व्यवस्था में शिथिलता उत्पन्न हो गई तथा दूसरी ओर गुप्त अर्थव्यवस्था पर गहरा आघात पहुँचा।
7. **शासन व्यवस्था के दोष**—गुप्तों की प्रशासनिक-व्यवस्था में भी समय के साथ-साथ अनेक दोष उत्पन्न हो गए थे। प्रान्तीय शासकों व सामन्तों को विशेषाधिकार, राजकर्मचारियों (विशेषकर उच्च अधिकारियों) के पद का आनुवंशिक होना, शासन व्यवस्था के प्रमुख दोष थे। आनुवंशिक पदों के कारण कभी-कभी अयोग्य व्यक्ति उच्च पद पर आसीन हो जाता था जिसका राज्य पर कुप्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त गुप्त-काल में अग्रहार-दान की प्रथा प्रचलित थी जिसे एक बार देने के बाद कोई छीन नहीं सकता था। इससे राजकीय-आय प्रभावित होती थी। प्राचीन भारतीय अग्रहार-दान देने की प्रथा, मध्यकालीन जागीरदारी प्रथा के समान थी, जिसका परिणाम खिलजी एवं तुगलक राजवंशों की आन्तरिक शक्ति के लिए हानिकारक प्रमाणित हुआ।
8. **कूटनीतिक विफलताएँ**—प्रारम्भिक गुप्त शासकों ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा एवं विस्तार हेतु कूटनीति का सहारा लिया था। चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कूटनीति का परिचय देते हुए ही समकालीन शक्तिशाली राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए थे। चन्द्रगुप्त प्रथम लिच्छवियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के कारण ही स्वतन्त्र गुप्त साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ था। किन्तु बाद के गुप्त-शासकों ने अदूरदर्शिता का परिचय दिया तथा वे अपने पूर्वजों के समान कूटनीति तथा वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा गुप्त-साम्राज्य को सशक्त करने में असफल रहे। यही नहीं, वाकाटक-वंश के शासकों से भी वे मित्रता कायम न रख सके। अत: बाद के गुप्त-शासकों ने दूरदर्शिता व कूटनीति के अभाव में गुप्त-साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर कर दिया।

9. **अहिंसात्मक नीति**—प्रारम्भिक गुप्त शासक साम्राज्यवादी नीति के तथा वैष्णव-धर्म के अनुयायी थे, किन्तु स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों ने बौद्ध-धर्म को अपना लिया। अत: उन्होंने युद्ध-नीति को छोड़कर अहिंसात्मक नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। बुधगुप्त, बालादित्य एवं वज्रगुप्त आदि सभी शासक बौद्ध-मतावलम्बी थे। इस स्थिति का गुप्तों की सैनिक-शक्ति पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ा होगा।

प्र.10. गुप्तकालीन सामाजिक दशा का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of social conditions during Gupta Period.

उत्तर

गुप्तकालीन सामाजिक दशा
(Social Condition during Gupta Period)

भारतीय समाज का जो ढाँचा वैदिक युग में बना, वह कतिपय परिवर्तनों के साथ आज तक विद्यमान है। गुप्तकाल के सामाजिक-जीवन का अपना कोई अलग स्वरूप है ऐसा कहना कठिन है। इतना ही कहा जा सकता है कि वैदिक-युग में समाज का प्रमुख रूप से जो ग्रामीण स्वरूप था, वह मौर्यकाल में नागरिकता की ओर उन्मुख हुआ था, गुप्त-काल में ग्रामीण और नागरिक दोनों का ही एक समन्वित विकसित रूप देखने को मिलता है।

वर्ण-व्यवस्था—वैदिक-युग में ही भारतीय समाज चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रों में बँट गया था। गुप्तकाल में भी समाज इन्हीं चार वर्णों में विभक्त था। ब्राह्मणों का समाज में सर्वोच्च स्थान था तथा उनका कार्य अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, आदि था। क्षत्रियों का कर्तव्य देश की रक्षा करना तथा वैश्यों का प्रमुख कार्य वाणिज्य था। शूद्रों का कर्तव्य सेवा करना समझा जाता था। किन्तु गुप्तकाल में यह वर्ण-व्यवस्था पहले के समान कठोर न थी। जाति का व्यवसाय के विषय में बन्धन अब शिथिल हो गया था। इस युग में अनेक ब्राह्मण व्यक्ति राजा हुए व अनेक क्षत्रिय वैश्यों का कार्य करते थे।

इन प्रमख चार जातियों के अतिरिक्त भी समाज में कुछ लोगों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। गुप्तकालीन अभिलेख में ही सर्वप्रथम 'कायस्थ' का उल्लेख मिलता है। गुप्तकाल में कायस्थों की अलग जाति बन गई थी ऐसा मानना तो कठिन है परन्तु उनकी सामूहिक स्थिति ने अलग रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया। इनके अतिरिक्त, चाण्डाल भी एक जाति थी जो अस्पृश्य समझे जाते थे। वे बस्ती के बाहर रहते थे।

आश्रम—प्राचीन आश्रम-व्यवस्था गुप्त-काल में भी विद्यमान थी। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास आश्रमों के रूप में व्यतीत होता था। इस व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य व्यवस्थित व नियमित जीवनयापन करना तथा अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करते हुए समाज की सेवा करना था।

विवाह एवं पारिवारिक जीवन—गुप्तकाल में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता था तथा आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। स्मृतियों में विवाह को अनिवार्य बताया गया है। मनुस्मृति के अनुसर जिस प्रकार वायु को पीकर सम्पूर्ण जन्तु जीते हैं उसी प्रकार गृहस्थाश्रम के द्वारा मनुष्य लोक-यात्रा का निर्वाह करते हैं। विवाह न करना पापतुल्य समझा जाता था। गुप्तकाल में बहुविवाह का भी प्रचलन था। गुप्तकाल में साधारणतया सजातीय विवाह होते थे किन्तु अनुलोम व प्रतिलोम विवाह के उल्लेख भी मिलते हैं। विधवा-विवाह व सती-प्रथा के उल्लेख भी गुप्त-युग में प्राप्य हैं।

गुप्त-समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा थी तथा पारिवारिक जीवन सुखी था। परिवार का मुखिया वयोवृद्ध होता था तथा परिवार के सभी सदस्य उसके आदेशों का पालन करते थे। स्मृतियों में पिता के जीवनकाल में बँटवारे की बात को हेय कहा गया है। पारिवारिक सम्पत्ति का स्वामित्व गृह-प्रमुख में निहित होता था। पारिवारिक सम्पत्ति में सभी पुत्रों का समान भाग होता था। पुत्रियों का पारिवारिक सम्पत्ति में भाग नहीं होता था।

स्त्रियों की दशा—गुप्तकाल में स्त्रियों को वह सम्मान प्राप्त नहीं था जो उन्हें वैदिक-युग में प्राप्त था। कन्याओं का विवाह भी 12-13 वर्ष की आयु में कर दिया जाता था। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि कन्याओं का उपनयन संस्कार नहीं किया जाता था तथा उन्हें वैदिक-शिक्षा भी प्रदान नहीं की जाती थी। कुछ धनी परिवार की कन्याएँ ही शिक्षा ग्रहण कर पाती थीं। पारिवारिक-सम्पत्ति में भी कन्याओं का कोई अधिकार नहीं होता था। गुप्तकाल में पर्दे की प्रथा नहीं थी केवल कुलीन वर्ग की स्त्रियाँ पर्दा करती थीं। विधवाओं की स्थिति कष्टप्रद थी। वे किसी प्रकार का आभूषण, सज्जा आदि नहीं कर सकती थीं। सती-प्रथा के उदाहरण भी गुप्त-युग में मिलते हैं।

वस्त्र व आभूषण—गुप्तकालीन शासक सुन्दर व कामदार वस्त्र पहनते थे। गुप्त-मुद्राओं से ज्ञात होता है कि राजा पगड़ी अथवा टोपी, कोट, चूड़ीदार पजामा अथवा धोती तथा जूते पहनते थे। धनी नागरिक भी अत्यन्त अलंकृत वस्त्र धारण करते थे। ऊनी व सूती दोनों ही प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। विशेष अवसरों पर रेशमी वस्त्र पहने जाते थे। स्त्रियाँ चोली, घाघरा और उत्तरीय तथा पुरुष पगड़ी, अधोवस्त्र तथा उत्तरीय धारण करते थे। ये वस्त्र सफेद, लाल, नीले, काले व केसरिया रंग के होते थे।
स्त्री व पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। स्त्रियाँ कर्णपूर, निश्क, यष्ठि, रसना तथा पुरुष केयूर, वलय, आंगुलीयक आदि पहनते थे। राजपरिवार के सदस्य सिर पर शिखामणि, चूडामणि आदि धारण करते थे। केशों को भी सुसज्जित किया जाता था। गुप्तकाल में सुगन्धित द्रवों का भी प्रयोग किया जाता था। स्त्रियाँ होंठ तथा नेत्रों पर अंगराग भी लगाती थीं।
खान-पान—गुप्तकालीन खान-पान के विषय में फाह्यान के वर्णन से प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार, "सम्पूर्ण देश में पशु-हत्या नहीं की जाती और न ही मनुष्य नशीली मदिरा का सेवन करते हैं और न ही प्याज व लहसुन खाते हैं, केवल चाण्डाल ही इसके अपवाद हैं। इस देश में लोग सूअर और मुर्गी नहीं पालते, जीवित पशुओं को नहीं बेचते हैं। नगर में न तो कसाई की दुकानें हैं और न ही मदिरा बेचने वालों की।" इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लोग प्रमुखतया शाकाहारी थे तथा वे चावल, यव, गेहूं, दाल, फल, दूध, घी तथा मक्खन का प्रयोग करते थे।
मनोरंजन के साधन—गुप्तकाल में पासे, शतरंज, आखेट, भैंसों व मुर्गों की लड़ाई प्रमुख मनोरंजन के साधन थे। इनके अतिरिक्त, नृत्य, संगीत, नाटक, रथ-यात्राएँ, उद्यान-यात्राएँ व जुए का भी मनोरंजन के लिए उपयोग होता था।
शिक्षा—गुप्तकाल में शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। राज्य के सभी प्रमुख नगर शिक्षा के केन्द्र थे। इन केन्द्रों में नालन्दा, उज्जैन, पाटलिपुत्र, कांची, मथुरा, अयोध्या आदि प्रमुख थे। इन केन्द्रों में वेद, पुराण, अस्त्र-शस्त्र, दर्शन, तर्कशास्त्र व औषधि विज्ञान की शिक्षा प्रदान की जाती थी।
गणिकाएँ व दास—गुप्तकाल में गणिकाओं का उल्लेख भी मिलता है। वेश्यागामी को समाज निम्न दृष्टि से देखता था। परिवार में पारिवारिक कार्य व सेवा कार्य के निमित्त दास होते थे। दास को अपने स्वामी की इच्छानुसार अच्छे-बुरे सभी कार्य करने पड़ते थे। गुप्तकाल में दासों की स्थिति शोचनीय थी।

प्र.11. गुप्तकालीन धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए।
Describe the religious conditions during Gupta Period.

उत्तर

गुप्तकालीन धार्मिक दशा
(Religious Conditions during Gupta Period)

गुप्तकाल धर्म और दर्शन के क्षेत्र में एक नवीन युग लेकर उपस्थित हुआ। नए देवता, नए विश्वास, उनके सम्बन्ध का नया जीवन्त रोमांचक-लोमहर्षक साहित्य इस नवयुग की देन थे। इन्द्र, वरुण, सोम, अग्नि, उषा, अदिति आदि अब पुराने हो चुके थे तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी ने उनका अब ब्राह्मण-धर्म में स्थान ले लिया था। इनमें भी विष्णु और शिवजी का अत्यधिक महत्व बढ़ा और वे सर्वत्र पूजे जाने लगे तथा उन्हीं के मन्दिरों व मूर्तियों का निर्माण होने लगा।
वैदिक धर्म—गुप्त-युग वैदिक-धर्म के पुनरुत्थान का काल माना जाता है। यद्यपि वैदिक-धर्म के पुनरुत्थान की प्रक्रिया गुप्त साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही प्रारम्भ हो गई थी परन्तु गुप्तयुग में विकास का यह क्रम चरम सीमा पर पहुँच गया। इसका कारण गुप्त सम्राटों द्वारा वैदिक-धर्म के विविध अनुष्ठानों व क्रिया विधियों को अपनाया जाना था। गुप्त युग में वैदिक-धर्म के तीन महत्वपूर्ण पक्ष विकसित हुए। मूर्ति उपासना का केन्द्र बन गई और यज्ञ का स्थान उपासना ने ले लिया। मूर्ति को बलि चढ़ाने की प्रथा प्रचलित रही। भक्ति के सिद्धान्त को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार गुप्तकालीन हिन्दू-धर्म में प्राचीन वैदिक व नवीन तत्वों का समन्वय था। इस विषय में **डॉ० मजूमदार** ने लिखा है, "वैदिक-धर्म विभिन्न शाखाओं और प्रशाखाओं में विकसित हो गया था। उसमें प्राचीन एवं नवीन, उच्च व निम्न, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विचारों का समन्वय मिलता है। उसने समाज में निरन्तर नवीन तथ्यों के प्रवेश से खोया कुछ नहीं था, वह नवीन तत्वों से कुछ-न-कुछ ग्रहण ही करता रहा।"
गुप्तकाल में हिन्दू-धर्म के दो मुख्य सम्प्रदाय वैष्णव (भागवत) और शैव विकसित हुए।

वैष्णव-धर्म—इस धर्म के अन्तर्गत विष्णु की पूजा की जाती थी। गुप्तकाल में विष्णु के अनेक अवतार माने जाते थे जिनमें मत्स्य, कच्छप, वाराह, वामन, नृसिंह आदि प्रमुख थे। गुप्तकाल में वैष्णव-धर्म उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। अनेक गुप्त शासक वैष्णव धर्म के अनुयायी थे; अत: उन्होंने इस धर्म को राजाश्रय प्रदान किया। गुप्त-वंश के दो सर्वाधिक प्रतापी शासक समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त द्वितीय भी वैष्णव धर्मावलम्बी ही थे। समुद्रगुप्त ने इसी कारण अश्वमेध यज्ञ किया था। समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त द्वितीय की मुद्राओं पर भी विष्णु के वाहन गरुड़ की प्रतिमा उत्कीर्ण है तथा उन्होंने 'परम भागवत' की उपाधि भी धारण की थी। गुप्त-मुद्राओं पर शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी को उत्कीर्ण कराया गया था। गुप्त-काल में अनेक वैष्णव-मन्दिरों का भी निर्माण कराया गया था। गुप्तकाल में वैष्णव-धर्म का प्रसार न केवल भारत वरन् दक्षिणी-पूर्वी एशिया, कम्बोडिया, हिन्द-चीन, मलाया व इण्डोनेशिया तक हुआ। अत: गुप्तकाल को वैष्णव-धर्म की उन्नति की पराकाष्ठा पर मानना तर्कसंगत ही है।

शैव धर्म—गुप्त-शासकों ने धर्म-सहिष्णुता की नीति का पालन किया था, अत: वैष्णव-धर्म के अतिरिक्त भी अनेक धर्मों का गुप्तकाल में विकास हुआ। इनमें प्रमुख शैव धर्म था जिसके अन्तर्गत शिवजी की आराधना की जाती थी। करमदण्डा अभिलेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के मन्त्री पृथ्वीसेन ने शिव-मन्दिर के लिए दान दिया था। गुप्तकाल में अनेक शिव-मन्दिरों का निर्माण किया गया तथा शिवजी से सम्बन्धित साहित्य की रचना की गई। देवगढ़ का शिव-मन्दिर, भूमरा का मन्दिर, उज्जैन का महाकाल मन्दिर आदि का निर्माण गुप्त-काल में ही हुआ था। शिवजी की मूर्तियाँ, गुप्तकाल में, दो प्रकार से बनाई जाती थीं। एक तो मानव आकार में जिसका उल्लेखनीय उदाहरण सारनाथ संग्रहालय में रखी लोकेश्वर शिव का सिर है, तथा दूसरी लिंग के रूप में। इस प्रकार की मूर्तियों में नागोर से प्राप्त एकलिंग मुख मूर्ति है। गुप्त-काल में ही शैव-गुफाओं का भी निर्माण कराया गया था।

अन्य देवी-देवता—विष्णु एवं शिवजी के अतिरिक्त गुप्त-काल में अन्य देवी-देवताओं की भी आराधना की जाती थी, इनमें ब्रह्मा, नाग, सूर्य, लक्ष्मी, दुर्गा व पार्वती प्रमुख हैं। इन्दौर के ताम्रपत्र (स्कन्दगुप्तकालीन) से सूर्य-पूजा की पुष्टि होती है। इसके अतरिक्त, मन्दसौर शिलालेख में भी एक सूर्य मन्दिर के निर्माण किए जाने का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध-धर्म—गुप्तों के पूर्व बौद्ध-धर्म अत्यन्त उन्नत अवस्था में था, किन्तु प्रारम्भिक गुप्त-शासकों के वैष्णव-धर्मावलम्बी होने के कारण उसकी स्थिति पहले के समान न रही, किन्तु फिर गुप्त-सम्राटों की धर्मसहिष्णु नीति के कारण बौद्ध-धर्म विकसित होता रहा। **इत्सिंग** ने लिखा है कि श्रीगुप्त ने मृग शिखावन के समीप एक बौद्ध-मन्दिर का निर्माण कराया था जिससे गुप्तों की धर्मसहिष्णुता प्रमाणित होती है। **फाह्यान** ने भी लिखा है कि गुप्तकाल में काश्मीर, पंजाब और अफगानिस्तान में बौद्ध-धर्म का प्रचार था। अजन्ता, एलोरा, कार्ले, कान्हेरी आदि बौद्धगुहाओं का निर्माण भी गुप्त-युग में ही हुआ।

स्कन्दगुप्त के बाद अनेक गुप्त-शासकों ने बौद्ध-धर्म को ग्रहण किया था, जिससे निश्चय ही उस समय बौद्ध-धर्म को शक्ति प्राप्त हुई होगी। इसके अतिरिक्त, बौद्ध धर्म के दर्शनाचार्यों के प्रयासों से गुप्त-युग में भी विदेशों में बौद्ध-धर्म का प्रसार होता रहा । गुप्त-युग में ही अनेक बौद्ध-ग्रन्थों की रचना भी हुई जिनमें चतुश्शतक, महायान संपरिग्रह, योगाचार, भूमिशास्त्र और महायान सूत्रालंकार प्रमुख हैं।

जैन धर्म—गुप्त-युग में जैन-धर्म की स्थिति पूर्ववत् रही किन्तु इसमें भी मूर्ति निर्माण प्रारम्भ हो गया। 313 ई० में मथुरा में तथा 453 ई० में वल्लभी में जैन-सभाएँ भी हुईं। गुप्तकाल में जैन धर्म मध्यवर्ग व व्यापारियों में अधिक लोकप्रिय था तथा उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में इसका अधिक प्रभाव था। इसका कारण कदम्ब-शासकों द्वारा जैन-धर्म को राजाश्रय प्रदान किया जाना था। पहाड़पुर से प्राप्त अभिलेखों में जैन-मन्दिर में दिए गए दान का उल्लेख मिलता है।

कहवा अभिलेख के अनुसार स्कन्दगुप्त के शासनकाल में भद्र नामक व्यक्ति के द्वारा पाँच तीर्थंकरों की मूर्तियों की स्थापना कराए जाने का उल्लेख मिलता है। फाह्यान के वर्णन से ज्ञात होता है कि जैन-मन्दिर प्रमुख नगरों में थे तथा वे बौद्ध-विहारों के समीप ही स्थित थे। गुप्तकाल में जैन-धर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की भी रचना की गई जिनमें प्रमुख सर्वनन्दी कृत 'लोक विभंग' तथा आचार्य सिद्धसेन द्वारा रचित 'न्यायवार्ता' हैं।

इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से गुप्त-युग को धार्मिक-उत्कर्ष का युग कहा जाता है। हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान के साथ-ही-साथ बौद्ध व जैन धर्मों की भी इस काल में उन्नति हुई। विभिन्न धर्मों का गुप्त-युग में विकास, नि:सन्देह गुप्त शासकों की धर्म-सहिष्णु नीति का परिचायक है।

प्र.12. गुप्तकालीन आर्थिक स्थिति का उल्लेख कीजिए।
Mention the economic conditions during Gupta Period.

उत्तर

गुप्तकालीन आर्थिक स्थिति
(Economic Conditions during Gupta Period)

गुप्तकालीन मुद्राएँ व अभिलेख तत्कालीन आर्थिक-समृद्धि व सम्पन्नता को प्रमाणित करते हैं। गुप्तकाल की इस समृद्धि का कारण समुन्नत कृषि, विकसित उद्योग-धन्धे व उन्नत वैदेशिक व्यापार था।

कृषि—कृषि-प्रधान देश होने के कारण भारत की आर्थिक रीढ़ सदा कृषि पर निर्भर रही है। मौर्यों के समान गुप्त शासकों ने भी कृषि की भरपूर वृद्धि, विकास और सुरक्षा का निरन्तर ध्यान रखा था। सामान्यतया ओलावृष्टि तथा दुर्भिक्ष का भय बना रहता था अत: गुप्तों ने सिंचाई-व्यवस्था की ओर पूरा ध्यान दिया था। सिंचाई के उद्देश्य से राज्य में नदी, तडाग, वापी और कूपों से नहरें निकलवाई गई थीं। गिरनार में मौर्य-युग के बने सुदर्शन तड़ाग से भी नहरें निकाली गई थीं। स्कन्दगुप्त के शासनकाल में इस तड़ाग का बाँध टूटने पर इसे पहले से तीन गुना मजबूत बनाया गया। सिंचाई के भौतिक यन्त्रों के अतिरिक्त कृषि की वृद्धि के लिए दैवीय साधनों का भी प्रयोग किया जाता था। इसके लिए वर्षा के देवता इन्द्र की आराधना की जाती थी। गुप्त-युग में धान, गेहूँ, गन्ना, सन, तिलहन, कपास, ज्वार, बाजरा, मसाले आदि की खेती की जाती थी। कृषि के लिए हल तथा बैलों का प्रयोग किया जाता था। कृषि के अतिरिक्त वनों का भी आर्थिक समृद्धि में योगदान था।

उद्योग—कृषि के अतिरिक्त उद्योग-धन्धों को भी गुप्त शासकों ने प्रोत्साहन दिया।

गुप्तकाल में वस्त्र-उद्योग अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। ऊनी, सूती, रेशमी तथा वल्कल (छाल से बने हुए) आदि सभी प्रकार के वस्त्र बनाए व पहने जाते थे। साहित्यिक स्रोतों से पता चलता है कि गुप्तकाल में वस्त्र बनाने व रंगने का उद्योग दोनों ही उन्नत थे और जनता में वस्त्र धारण करने की अभिरुचि सुन्दर, सभ्य व सुसंस्कृत थी। कालिदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि कुछ वस्त्र विदेशों से भी आयात किए जाते थे।

वस्त्र-उद्योग के अतिरिक्त धातु उद्योग भी उन्नत अवस्था में था। लोहे तथा ताँबे से अनेकानेक वस्तुएँ बनाई जाती थीं। कृषि-उपकरण व हथियार लोहे के बनते थे। मैहरोली स्थित लौह-स्तम्भ गुप्तकाल का अनुपम उदाहरण है। ताँबा तथा काँसे से भी बर्तन व मूर्तियाँ बनाई जाती थीं।

शरीर-सज्जा व सौन्दर्यकरण हेतु अनेक प्रकार की प्रसाधन सामग्री का भी उत्पादन किया जाता था। विभिन्न प्रकार के आभूषण भी बनाए जाते थे। आभूषण सोने, चाँदी व मणियों आदि के बनते थे।

वैदेशिक व्यापार—गुप्तकाल में समृद्धि का सबसे प्रमुख स्रोत व्यापार था। गुप्तकाल में सम्पूर्ण उत्तर भारत के एक सूत्र में बँध जाने तथा देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित होने के कारण उद्योगों के विकास के साथ-साथ अन्तर्देशीय व वैदेशिक व्यापार की भी उन्नति हुई। गुप्तों का एकछत्र राज्य होने के कारण विविध राज्यों की सीमाओं पर लगने वाला शुल्क भी समाप्त हो गया जिससे आन्तरिक-व्यापार को प्रोत्साहन मिला। गुप्तकाल में चोर-डाकुओं का भय न होने के कारण भी व्यापार में प्रगति हुई। देश के अन्दर थल व नदियों द्वारा व्यापार होता था। नगरों में व्यापार करने वाले **श्रेष्ठी** व वैदेशिक-व्यापार करने वालों का मुखिया **सार्थवाह** कहलाता था। विदेशों से जल व थल दोनों मार्गों द्वारा व्यापार होता था। भारत के प्रमुख बन्दरगाह भड़ौंच तथा ताम्रलिप्ति थे तथा प्रमुख व्यापारिक नगर उज्जैन, पेशावर, विदिशा, साकेत, प्रयाग, बनारस व पाटलिपुत्र आदि थे। भारत के तिब्बत, चीन, ईरान, अरब, अफ्रीका तथा पूर्वी एशिया के देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। भारत हीरे, मोती, कीमती पत्थर, वस्त्र, तेल, मसाले व औषधियाँ आदि का निर्यात तथा सोना, चाँदी, ताँबा, रेशम, सीसा, खजूर व अश्व आदि का आयात करता था।

गुप्त-युग में उद्योग व व्यापार की उन्नति का एक प्रमुख कारण उद्योगों के निगम अथवा श्रेणियों में संगठित रहना था। कालिदास ने वास्तुकारों के शिल्पि संघ का उल्लेख किया है। वैशाली में विभिन्न निगमों (संघों) की अनेक मुहरें प्राप्त हुई हैं। गुप्त-अभिलेखों में भी विभिन्न व्यवसायों के अलग-अलग संघों का उल्लेख मिलता है। शिल्पियों के अतिरिक्त जुलाहों, तेलियों, कुम्हारों आदि के भी संघ थे। श्रेणियाँ आधुनिक बैंकों का भी कार्य करती थीं।

कालिदास की रचनाओं से गुप्तों की उन्नत आर्थिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। व्यापार की इस व्यापकता और विस्तार के परिणामस्वरूप गुप्त-युग में भारत स्वर्ण से इस तरह परिपूर्ण और परिप्लावित रहा मानो पृथ्वी के अतिरिक्त स्वर्ण का अतिरिक्त स्वर्ण और कुबेर के कोष का भी स्वर्ण आकाश से गिरकर गुप्तों से शासित भारत-भूमि में एकत्र हो गया था।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्त-युग आर्थिक रूप से अत्यन्त समृद्ध था।

प्र.13. कुमारगुप्त-I की उपलब्धियों का विश्लेषण कीजिए। (2021)
Describe the achievements of Kumaragupta-I.

उत्तर

कुमारगुप्त प्रथम की उपलब्धियाँ
(Achievements of Kumaragupta-I)

कुमारगुप्त-I की उपलब्धियों के विश्लेषण को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है—

1. **कुमारगुप्त-I की विजयें**—उसकी किसी भी सैनिक उपलब्धि की सूचना हमें लेखों अथवा सिक्कों से नहीं मिलती। उसके कुछ सिक्कों के ऊपर 'व्याघ्रबलपराक्रमः' अर्थात् 'व्याघ्र के समान बल एवं पराक्रम वाला' की उपाधि अंकित मिलती है।

   विद्वानों के अनुसार, यह प्रतिपादित किया है कि कुमारगुप्त प्रथम अपने पितामह (समुद्रगुप्त) के समान दक्षिणी अभियान पर गया तथा नर्मदा नदी को पार कर व्याघ्र वाले जंगली क्षेत्रों को अपने अधीन करने का प्रयास किया। महाराष्ट्र के सतारा जिले से उसकी 1395 मुद्राएँ मिलती हैं। उसकी तेरह मुद्राएँ एलिचपुर (बरार) से मिलती हैं।

   किन्तु मात्र सिक्कों के आधार पर ही हम उसकी विजय का निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। राधामुकुन्द मुकर्जी ने इसी प्रकार खंग-निहन्ता प्रकार के सिक्कों (जिनमें कुमारगुप्त को गैंडा मारते हुए दिखाया गया है) के आधार पर उसकी असम विजय का निष्कर्ष निकाला है, क्योंकि गैंडा असम में ही पाये जाते हैं। किन्तु यह मत भी काल्पनिक प्रतीत होता है।

   पुष्यमित्र जाति का आक्रमण—कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से पता चलता है कि उसके शासन के प्रारम्भिक वर्ष नितांत शान्तिपूर्ण रहे और वह व्यवस्थित ढंग से शासन करता रहा। उसके शासन के अन्तिम दिनों में "पुष्यमित्र" नामक जाति ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया।

   कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त के भीतरी लेख में इस आक्रमण का उल्लेख मिलता है। पुष्यमित्रों की सैनिक शक्ति और सम्पत्ति बहुत अधिक थी। इस आक्रमण से गुप्तवंश की राजलक्ष्मी विचलित हो उठीं तथा सकंदगुप्त को पूरी रात पृथ्वी पर ही जागकर बितानी पड़ी थी।

   दुर्भाग्यवश हमें इस आक्रमण का स्पष्ट विवरण अन्यत्र नहीं मिलता। दिवेकर महोदय ने भीतरी लेख में 'पुष्यमित्रांश्च' के स्थान पर 'युद्धमित्रांश्य' पाठ पढ़ा है तथा यह प्रतिपादित किया है कि यहाँ किसी जाति के आक्रमण का उल्लेख न होकर साधारण शत्रुओं का ही वर्णन हुआ है।

   परन्तु इस मत से सहमत होना कठिन है। विभिन्न स्रोतों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में पुष्यमित्र नामक जाति थी। वायुपुराण तथा जैन कल्पसूत्र में इस जाति का उल्लेख मिलता है। वे नर्मदा नदी के मुहाने के समीप मेकल में शासन करते थे। वस्तुस्थिति कुछ भी हो, इतना स्पष्ट है कि आक्रमणकारी बुरी तरह परास्त हुए और उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। परन्तु इस विजय की सूचना मिलने के पहले ही वृद्ध सम्राट कुमारगुप्त दिवंगत हो चुका था।

   अश्वमेध यज्ञ—कुमारगुप्त के सिक्कों से पता चलता है कि उसने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था। अश्वमेध प्रकार के सिक्कों के मुख भाग पर यज्ञयूप में बँधे हुए घोड़े की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर 'श्रीअश्वमेधमहेन्द्रः' मुद्रालेख अंकित है। परन्तु अपनी किस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के उपलक्ष्य में कुमारगुप्त प्रथम ने इस यज्ञ का अनुष्ठान किया, यह हमें ज्ञात नहीं है।

   प्रान्तीय पदाधिकारी—कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से उसके अनेक पदाधिकारियों के नाम ज्ञात होते हैं। प्रान्त को 'भुक्ति' कहा गया है।

   कुमारगुप्त के लेखों से निम्नलिखित प्रान्तीय शासकों के नाम ज्ञात होते हैं—

   (i) **चिरादत्त**—उसके नाम का उल्लेख दामोदर के ताम्रपत्र में हुआ है। वह पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल) का राज्यपाल था।

   (ii) **घटोत्कचगुप्त**—वह एरण प्रदेश (पूर्वी मालवा) का शासक था। इसके अन्तर्गत तुम्बवन भी सम्मिलित था। तुमैन (मध्य प्रदेश के गुना जिले में स्थित) के लेख से उसके विषय में सूचना मिलती है।

   (iii) **बन्धुवर्मा**—मन्दसोर के लेख से उसके विषय में सूचना मिलती है। वह पश्चिमी मालवा क्षेत्र में स्थित दशपुर का राज्यपाल था।

(iv) **पृथिवीषेण**—उसके नाम का उल्लेख करमदण्डा लेख में हुआ है। वह सचिव, कुमारामात्य तथा महाबलाधिकृत के पदों पर कार्य कर चुका था। उसका कार्य-स्थल अवध का प्रदेश था। प्रान्तीय शासक को 'उपरिक महाराज' कहा जाता था।

2. **कुमारगुप्त प्रथम का धर्म तथा धार्मिक नीति**—कुमारगुप्त अपने पिता चन्द्रगुप्त के ही समान एक वैष्णव था। गढ़वा के लेख में उसे 'परमभागवत' कहा गया है— 'परमभागवत-महाराजाधिराजे श्रीकुमारगुप्तराज्ये।' परन्तु वह अन्य धर्मों के प्रति पूर्णरूपेण सहिष्णु था।

उसके विविध लेख इस बात के साक्षी हैं कि उसने अपने शासन काल में बुद्ध, शिव, सूर्य आदि देवताओं की उपासना में किसी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ने दिया, बल्कि इसके लिए पर्याप्त सहायता एवं प्रोत्साहन दिया था।

मनकुँवर अभिलेख से पता चलता है कि बुद्धमित्र नामक एक बौद्ध ने महात्मा बुद्ध की मूर्ति की स्थापना की थी। करमदण्डा लेख से पता चलता है कि उसका राज्यपाल पृथिवीषेण शैव मतानुयायी था। मन्दसोर लेख के अनुसार पश्चिमी मालवा में उसक राज्यपाल बंधुवर्मा ने सूर्य-मन्दिर का निर्माण करवाया था। इन उल्लेखों से कुमारगुप्त की धार्मिक सहिष्णुता प्रकट होती है। उसी के शासन में नालंदा के बौद्ध महाविहार की स्थापना की गयी है।

हुएनसांग के विवरण से पता चलता है कि इसका संस्थापक 'शक्रादित्य' था। इससे तात्पर्य कुमारगुप्त प्रथम से ही है जिसकी एक उपाधि 'महेन्द्रादित्य' थी। ये दोनों शब्द समानार्थी हैं। वह एक उदार शासक था जिसने अनेक संस्थाओं को दान दिया।

3. **कुमारगुप्त प्रथम का मूल्यांकन**—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कुमारगुप्त प्रथम का शासन शान्ति और सुव्यवस्था का काल था। उसके समय में गुप्त साम्राज्य अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर था। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जिस विशाल साम्राज्य का निर्माण किया उसे कुमारगुप्त ने संगठित एवं सुशासित बनाये रखा।

यद्यपि उसने कोई विजय नहीं की तथापि गुप्तों की सैनिक शक्ति क्षीण नहीं होने दिया। यह इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि उसके शासन के अन्तिम दिनों में गुप्त सेना ने पुष्यमित्रों को बुरी तरह परास्त किया।

यह बात कुमारगुप्त के लिये कम गौरव की नहीं है कि उसने इतना विशाल साम्राज्य, जो उत्तर में हिमालय से दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से पश्चिम में अरब सागर तक विस्तृत था, को पूर्णतया सुरक्षित बनाये रखा। उसके स्वर्ण सिक्कों पर उसे 'गुप्तकुलामलचन्द्र' तथा 'गुप्तकुलव्योमशशी' कहा गया है। ये उपाधियाँ सर्वथा सार्थक प्रतीत होती हैं। वह अपने पिता की ही भाँति वीर और यशस्वी शासक था। मुद्राओं पर अंकित लेख उसकी शक्ति एवं वैभव की सूचना देते हैं। निःसन्देह उसके शासन-काल में गुप्त-साम्राज्य की गरिमा सुरक्षित रही तथा कुमारगुप्त ने शान्ति एवं सुखपूर्वक राजलक्ष्मी का उपभोग किया।

❑

UNIT-V

हर्षवर्धन का युग एवं राजपूत राज्यों का उदय
Harshavardhana's Era and the Rise of Rajput Kingdoms

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. गृह वर्मा कौन था?
Who was Grihavarma?

उत्तर गृह वर्मा हर्षवर्धन का बहनोई तथा राज्यश्री का पति था।

प्र.2. 'सी-यू-की' की रचना किसने की?
Who wrote 'Si-Yu-Ki'?

उत्तर 'सी-यू-की' की रचना चीनी यात्री ह्वेनसांग ने की।

प्र.3. पुलकेशिन द्वितीय तथा हर्षवर्धन के मध्य युद्ध कब हुआ था?
When did the war between Pulkesin-II and Harshavardhana take place?

उत्तर फ्लीट महोदय के अनुसार पुलकेशिन द्वितीय तथा हर्षवर्धन के मध्य युद्ध 612 ई० पूर्व हुआ था।

प्र.4. हर्षवर्धन ने ह्वेनसांग को कौन-सी उपाधियाँ प्रदान की?
Which titles were bestowed on Hiuen Tsang by Harshavardhana?

उत्तर हर्षवर्धन ने ह्वेनसांग को 'महायानदेव' तथा 'मोक्षदेव' की उपाधियाँ दी।

प्र.5. प्राचीनकाल के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के नाम लिखिए।
Write the names of famous ancient universities.

उत्तर तक्षशिला विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय व नालन्दा विश्वविद्यालय प्राचीन काल के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे।

प्र.6. बलभी का शासक कौन था?
Who was the ruler of Vallabhi?

उत्तर बलभी का शासक ध्रुवसेन द्वितीय था।

प्र.7. राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया?
Who propounded the theory of the foreign origin of the Rajputs?

उत्तर राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत का प्रतिपादन कर्नन जेम्स टॉड के द्वारा किया गया।

प्र.8. उज्जैन की गुर्जर-प्रतिहार वंश की शाखा की स्थापना किसने व कब की?
By whom and when was the branch of the Gurjara-Pratihara dynasty founded at Ujjain?

उत्तर उज्जैन की गुर्जर-प्रतिहार वंश की शाखा की स्थापना नागभट्ट प्रथम ने 730 ई० में की।

प्र.9. मिहिरभोज ने कौन-सी उपाधियाँ धारण कीं?
Which titles were adopted by Mihirbhoja?

उत्तर मिहिरभोज ने 'आदिवराह' तथा प्रभास की उपाधियाँ धारण कीं।

प्र.10. पालवंश का संस्थापक कौन था?
Who was the founder of the Pala dynasty?
उत्तर पालवंश का संस्थापक गोपाल था।

प्र.11. परमार वंश की स्थापना किसने की?
Who founder the Pramara dynasty?
उत्तर परमार वंश की स्थापना उपेन्द्र या कृष्णराज ने की थी।

प्र.12. चौहानवंशीय राजाओं में कौन-सा शासक सर्वाधिक शक्तिशाली था?
Who was the most powerful Chauhan ruler?
उत्तर चौहानवंशीय राजाओं में विग्रहराज चतुर्थ सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था।

प्र.13. गहड़वाल वंश का संस्थापक कौन था?
Who was the founder of Gahadavalas dynasty?
उत्तर गहड़वाल वंश का संस्थापक यशोविग्रह को कहा जाता है।

प्र.14. 'हिस्ट्री ऑफ द चन्देलाज' के लेखक कौन थे?
Who wrote the 'History of the Chandelas'?
उत्तर 'हिस्ट्री ऑफ द चन्देलाज' के लेखक एन०एस०बोस थे।

प्र.15. 'पृथ्वीराजरासो' के रचयिता कौन थे?
Who wrote Prithivirajraso?
उत्तर 'पृथ्वीराजरासो' के रचयिता चन्दबरदाई थे।

प्र.16. कलचुरियों का आदिपुरुष कौन था?
Who was the originator of the Kalchuris?
उत्तर कलचुरियों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उनका आदिपुरुष सहस्रार्जुन था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हर्षवर्धन के समय आर्थिक जीवन कैसा था? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
Who was the economic life during Harsha's period? Describe in brief.
उत्तर हर्षवर्धन के समय में देश की आर्थिक दशा पर्याप्त उन्नत थी। जनता की जीविका का मुख्य आधार कृषि थी। ह्वेनसांग लिखता है कि अन्न तथा फलों का उत्पादन अत्यधिक मात्रा में होता था। भूमि का अधिकांश भाग सामन्तों के हाथ में था। कुछ भूमि ब्राह्मणों को दान के रूप में दी जाती थी। इस दान को 'ब्रह्मदेय' कहा जाता था। इस प्रकार की भूमि से सम्बन्धित सभी प्रकार के अधिकार दानग्राही को मिल जाते थे। मधुबन तथा बँसखेड़ा के लेखों में दिए गए विवरण में हर्ष द्वारा ग्राम दान में दिए जाने का विवरण प्राप्त होता है। उस समय में कृषि के लिए सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी। हर्षचरित में सिंचाई के साधन के रूप में 'तुलायन्त्र' (जलपम्प) का उल्लेख प्राप्त होता है।

देश में कई प्रमुख व्यापारिक नगर थे। कृषि के अतिरिक्त वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे तथा व्यापार भी उन्नत स्थिति में थे। व्यापार-व्यवसाय का कार्य श्रेणियों द्वारा किया जाता था। विभिन्न व्यवसायियों की अलग-अलग श्रेणियाँ होती थीं। वे अपने सदस्यों को व्यवसाय की भी शिक्षा देते थे ताकि वे उनमें निपुणता प्राप्त कर सकें।

प्र.2. हर्षकालीन धार्मिक जीवन के विषय में आप क्या जानते हैं। संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
What do you know about religious life during Harsha's period? Give a brief description.
उत्तर हर्षवर्धन के पूर्वज भगवान शिव और सूर्य के अनन्य उपासक थे। हर्षचरित से पता चलता है कि शशांक पर आक्रमण करने से पहले उसने शिव की पूजा की थी। अत: प्रारम्भ में हर्ष भी अपने कुल देवता शिव का परम भक्त था। हर्षवर्धन की प्रकृति बचपन से ही बौद्ध धर्म की ओर हो गई थी। उसने विन्ध्यवन में दिवाकरमित्र नामक बौद्ध भिक्षु से साक्षात्कार किया था, जिसका

प्रभाव हर्ष पर बहुत अधिक पड़ा। चीनी यात्री ह्वेनसांग से मिलने के बाद तो उसने बौद्ध धर्म की महायान शाखा को राज्याश्रय प्रदान किया था।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत शैव सम्प्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय था। हर्षचरित के अनुसार थानेश्वर के प्रत्येक घर में भगवान शिव की पूजा होती थी। शिव की उपासना के लिए मूर्तियाँ तथा लिंग स्थापित किए जाते थे। मालवा तथा वाराणसी में शिव के विशाल मन्दिर बने थे जहाँ उनके सहस्रों भक्त निवास करते थे। शिव के अतिरिक्त विष्णु तथा सूर्य की भी उपासना होती थी।

प्र.3. हर्षकालीन सामाजिक जीवन की विवेचना कीजिए।
Discuss the social life during Harsha's period?

उत्तर हर्षचरित से पता चलता है कि हर्षकालीन समाज में ब्राह्मणों का समाज में प्रतिष्ठित स्थान था। स्वयं हर्ष उनका बड़ा सम्मान करता था। इस समय वैश्यों एवं शूद्रों के हाथ में भी राजनीतिक शक्ति आ गई थी। हर्ष स्वयं वैश्य जाति का था। जनसंख्या का एक बड़ा भाग अछूत समझा जाता था। वे नगरों और गाँवों के बाहर रहते थे। सिन्ध देश का शासक शूद्र था। अन्तर्जातीय विवाह होते थे। स्वयं हर्ष की बहन राज्यश्री, जो वैश्य थी, कन्नौज के मौखरिवंश (क्षत्रिय) में ब्याही गई थी। पुनर्विवाह नहीं होते थे तथा सती प्रथा का प्रचलन था। लोग शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजन करते थे। ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार भेड़ तथा हिरण का मांस एवं मछलियाँ खाई जाती थीं। गेहूँ तथा चावल का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था। कुछ लोग मदिरा का भी सेवन करते थे। साधारणत: भारतीयों को श्वेत वस्त्र प्रिय थे। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे।

प्र.4. परमारवंशीय राजा भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियों के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त विवरण दीजिए।
What do you know about the cultural achievements of Parmara king Raja Bhoja? Give a brief description.

उत्तर भोज स्वयं विद्वान् था तथा उसकी उपाधि कविराज की थी। भारतीय इतिहास में भोज की ख्याति उसकी विद्वत्ता तथा विद्या एवं कला के उदार संरक्षक के रूप में अधिक है। उदयपुर लेख में कहा गया है कि उसने सब कुछ साधा, सम्पन्न किया, दिया और जाना, जो अन्य किसी के द्वारा सम्भव नहीं था। उसने ज्योतिष, काव्य शास्त्र, वास्तु आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की तथा धारा के सरस्वती मन्दिर में एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय की स्थापना करवाई। उसकी राजसभा में पण्डितों एवं विद्वानों को संरक्षण दिया गया था। उसकी राजधानी धारा विद्या तथा विद्वानों का प्रमुख केन्द्र थी। भास्करभट्ट, दामोदर मिश्र, धनपाल आदि उसके दरबारी कवियों एवं विद्वानों में प्रमुख थे। वह विद्वानों को उनकी विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर उपाधियाँ भी देता था। उसकी मृत्यु पर पण्डितों को अत्यधिक दु:ख हुआ था।

भोज ने भोपाल के दक्षिण-पूर्व में 250 वर्ग मील लम्बी एक झील का निर्माण करवाया था जो आज भी 'भोजसर' नाम से प्रसिद्ध है। धारा में सरस्वती मन्दिर के समीप उसने एक विजय-स्तम्भ स्थापित किया तथा भोजपुर नामक नगर की स्थापना करवाई। इस प्रकार स्पष्ट है कि भोज अपने वंश का सर्वाधिक यशस्वी शासक था।

प्र.5. राजपूतकालीन सामाजिक जीवन का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
Give a brief description of social life during Rajput Period.

उत्तर राजपूतकाल में भी ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। उन्हें राजपूत शासको के मन्त्री एवं सलाहकार नियुक्त किया जाता था। अधिकांश ब्राह्मण अध्ययन, यज्ञ, तप आदि में अपना जीवन व्यतीत करते थे। उनके पास ज्ञान का अथाह सागर था। उनका जीवन अत्यन्त पवित्र था। वे मांस-मदिरा का सेवन नहीं करते थे। क्षत्रिय लोग युद्ध तथा शासन कार्य करते थे। राजपूत उच्चकोटि के योद्धा होते थे। उनमें साहस, आत्मसम्मान, वीरता एवं स्वदेशभक्ति की भावनाएँ कूट-कूट कर भरी थीं। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक प्रतिज्ञा का पालन करते तथा शरणागत की रक्षा करना-भले ही यह जघन्य अपराधी ही हो-अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

राजपूतकाल में महिलाओं को सम्मानित स्थान प्राप्त था। राजपूत नरेश अपनी पत्नियों से प्रेम करते थे एवं उनकी मान-मर्यादा तथा सतीत्व की रक्षा के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को हर समय तैयार रहते थे। राजपूत कुलों में विवाह स्वयंवर प्रथा द्वारा होते थे। इसमें कन्याएँ अपना वर स्वयं चुनती थीं। कभी-कभी अन्तर्जातीय विवाह (अनुलोम) भी होते थे। पश्चिमी भारत में ब्राह्मण क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह करते थे। विवाह की उम्र क्रमश: कम होती जा रही थी। राजपूत काल में प्राय: बाल-विवाह का भी प्रचलन हो चुका था। कुलीन वर्ग के लोग कई पत्नियाँ रखते थे। समाज में जौहर तथा सती की प्रथाएँ प्रचलित थीं।

राजपूत घुड़सवारी और हाथियों की सवारी में विशेष रुचि लेते थे। वे आखेट में भी रुचि रखते थे। राजपूतों में मदिरापान, द्यूतक्रीड़ा, अफीम सेवन आदि दुर्व्यसन भी अत्यधिक प्रचलित थे।

प्र.6. राजपूतकालीन शासन व्यवस्था के विषय में संक्षेप में बताइए।
Explain briefly the administrative system of Rajput period.

उत्तर राजपूत काल में शासन के क्षेत्र में सामन्तवाद पूर्ण रूप में विकसित हो चुका था। राजपूतों का सम्पूर्ण राज्य अनेक छोटी-छोटी जागीरों में विभाजित था। प्रत्येक जागीर का प्रशासन एक सामन्त के हाथ में होता था जो प्राय: राजा के कुल से ही सम्बन्धित होता था। राजा सर्वोपरि होने के कारण मनमाने ढंग से काम करता तथा प्रत्येक शासक अपने कुल तथा परिवार के व्यक्तियों को ही उच्च पदों पर आसीन करता था। साधारण जनता शासन कार्यों में भाग नहीं ले सकती थी। वह राजनीतिक विषयों के प्रति उदासीन रहती थी। राजा को देवता का प्रतीक समझा जाता था। इस काल के राजतन्त्र आनुवंशिक होते थे। अत: शासन की सफलता सम्राट की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करती थी।

राजपूत काल में मन्त्रिपरिषद् महत्त्वहीन हो गई थी। तत्कालीन ग्रन्थों से पता चलता है कि सम्राट अपने मन्त्रियों के परामर्श की उपेक्षा कर देते थे। 'प्रबन्धचन्द्रोदय' में मन्त्रियों को स्वेच्छाचारी शासकों के सामने असहाय बताया गया है।

भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। यह भूमि की स्थिति के अनुसार तीसरे से लेकर बारहवें भाग तक लिया जाता था। उद्योग तथा वाणिज्य कर राजस्व का तीसरा साधन था। वाणिज्य तथा उत्पादित वस्तुओं पर कर लगाए जाते थे। आपातकाल में राजा प्रजा से अतिरिक्त कर वसूलता था।

प्र.7. राजपूतकालीन आर्थिक जीवन से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
What do you understand by economic life during Rajput period? Explain in brief.

उत्तर राजपूतकाल कृषिप्रधान था। कृषि राज्य की आयकर प्रमुख साधन थी। राजपूत काल में कृषकों को विभिन्न प्रकार के कर देने पड़ते थे। पूर्वमध्यकाल के लेखों में भाग, भोग, बलि, धान्य, हिरण्य, उपरिकर, उद्रंग, उदकभाग आदि करों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें भाग, कृषकों से उपज के अंश के रूप में लिया जाता था। भोग, राजा के उपयोग के लिए समय-समय पर प्रजा द्वारा दिया जाता था। बलि, राजा को उपहार के रूप में मिलता था। धान्य, कुछ विशेष प्रकार के अनाजों पर लगाया जाता था। हिरण्य, नकद वसूल किया जाने वाला कर था। उपरिकर तथा उद्रंग भूमि पर अस्थायी तथा स्वामी रूप से रहने वाले किसानों से लिया जाता था।

राजपूत काल में कृषि के साथ-साथ व्यापार-व्यवसाय भी काफी उन्नति पर थे। यातायात की सुविधा के लिए देश के प्रमुख मार्गों को सड़कों द्वारा जोड़ दिया गया था। तत्कालीन साहित्य तथा लेखों में विभिन्न प्रकार के उद्यमियों; जैसे—ताम्बूलिक, मालाकार, तैलिक, रथकार, बढ़ई, कलाल (सुरा बेचने वाले) आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इस युग के अधिकांश नगरों के निर्माण में विशाल पाषाणखण्डों का प्रयोग हुआ है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पत्थर तराशने का उद्योग भी बहुत विकसित दशा में रहा होगा। लोहे के अस्त्र-शस्त्र एवं धातुओं के बर्तन तथा आभूषण बनाने का व्यवसाय भी प्रगति पर था।

प्र.8. राजपूतकालीन धार्मिक जीवन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
Give a brief description of religious life during Rajput period.

उत्तर राजपूत काल में बौद्ध धर्म का अपेक्षाकृत कम प्रचलन था और वह अपने पतन की अन्तिम अवस्था में पहुँच गया था। हिन्दू (ब्राह्मण) और जैन धर्म बहुत अधिक लोकप्रिय थे। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भक्तिमार्ग और अवतारवाद का व्यापक प्रचलन था। सूर्य, विष्णु, शिव, दुर्गा आदि देवी-देवताओं की उपासना होती थी। इनकी पूजा में मन्दिर तथा मूर्तियाँ बनाई जाती थीं।

हिन्दू धर्म के साथ-साथ राजपूताना, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में जैन धर्म भी उन्नति के शिखर पर था। राजपूताना के गुर्जर-प्रतिहार व दक्षिण-पश्चिमी भारत के चालुक्य नरेशों ने इस धर्म की उन्नति में योगदान दिया। प्रतिहार नरेश भोज के समय में एक जैन मन्दिर का निर्माण करवाया गया था। चन्देल शासकों के समय में खजुराहो में जैन तीर्थंकरों के पाँच मन्दिरों का निर्माण कराया गया। आबू पर्वत पर भी जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ।

राजपूत काल तक आते-आते बौद्ध धर्म का नैतिक स्वरूप लगभग समाप्त हो चुका था एवं उसका स्वरूप तान्त्रिक बन गया। इसके उपासक अनेक प्रकार के मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोने आदि में विश्वास करने लगे।

प्र.9. प्रतिहार वंश के पतन के क्या कारण थे? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
What were the causes for the decline of Pratihara dynasty? Describe in brief.

उत्तर प्रतिहार वंश के राजा महीपाल के पश्चात् प्रतिहार-वंश में कोई ऐसा शासक न हुआ जो कन्नौज के गौरव एवं प्रतिष्ठा को बनाए रखता। यद्यपि महीपाल के पश्चात् इस वंश के अनेक शासकों ने शासन किया, किन्तु उनकी अयोग्यता एवं दुर्बलता के कारण उनका साम्राज्य अक्षुण्ण न रह सका। प्रतिहारों के पतन के निम्नलिखित मुख्य कारण थे—

(i) महीपाल के पश्चात् प्रतिहारों की शक्ति क्षीण हो गयी।

(ii) राष्ट्रकूट दक्षिण का एक शक्तिशाली वंश था, जिसका सामना गुर्जर-प्रतिहार वंशीय शासक न कर सके। इसके शासकों के निरन्तर उत्तरी अभियानों द्वारा भी गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य को अत्यन्त क्षति पहुँचायी।

(iii) प्रतिहार-साम्राज्य की दुर्बलता से लाभान्वित होकर उनके सामन्त चन्देल शासकों ने स्वतन्त्र राज्य बुन्देलखण्ड में स्थापित किया तथा निरन्तर प्रतिहार-साम्राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न किया।

(iv) विजयपाल एवं राज्यपाल ने 995 ई०-1017 ई० के मध्य शासन किया। इनकी दुर्बलता से लाभ उठाकर चालुक्यों ने गुजरात-काठियावाड़ में अपना स्वतन्त्र राज्य को स्थापित कर लिया। इसी समय अनेक अन्य वंशों ने स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर प्रतिहार-साम्राज्य के विघटन में योगदान दिया।

(v) महमूद गजनवी ने राज्यपाल एवं त्रिलोचनपाल के शासनकाल में कन्नौज पर आक्रमण किया। राज्यपाल युद्ध से भयभीत होकर भाग गया, जिससे क्रोधित होकर चन्देल शासक विद्याधर ने उसकी हत्या कर दी तथा त्रिलोचनपाल को अपने अधीन शासक नियुक्त किया। 1020 ई० में महमूद ने पुनः कन्नौज पर आक्रमण किया। यद्यपि त्रिलोचनपाल ने महमूद का वीरता से सामना किया, किन्तु अपने साम्राज्य की सुरक्षा करने में असफल रहा।

इस प्रकार एक शक्तिशाली राजवंश का पतन हो गया।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हर्ष के प्रारम्भिक जीवन के विषय में आप क्या जानते हैं? उसके युद्ध-अभियान का उल्लेख कीजिए।
What do you know about Harsha's early life? Mention his war campaign.

उत्तर

हर्ष का प्रारम्भिक जीवन
(Harsha's Early Life)

हर्षवर्धन एक प्रतापी राजा था। उसकी का जन्म वर्ष 591 ई० के लगभग माना जाता है। हर्ष का बचपन उसके ममेरे भाई भण्डि व मालवराज महासेनगुप्त के दो पुत्रों-कुमारगुप्त और माधवगुप्त-के साथ बीता। उसे राजकुमारों के अनुरूप शिक्षा-दीक्षा प्रदान की गई। वह विविध शस्त्रों को चलाने में कुशल हो गया। हर्ष की सैनिक शिक्षा की ओर संकेत करते हुए **बाण** ने उल्लेख किया है—"दिन-प्रतिदिन शस्त्राभ्यास के चिह्नों से उसके हाथ काले पड़ गए थे। ऐसा लगता था कि वे समस्त राजाओं की प्रताप की अग्नि को शान्त करने में मलिन हो गए हों।" युद्ध-विद्या के अतिरिक्त उसे अन्य विभिन्न विद्याओं; जैसे—शास्त्र विद्या तथा ललित कला आदि की भी शिक्षा प्रदान की गई और निस्सन्देह वह उन सबमें पारंगत हो गया। लगभग सोलह वर्ष की आयु में ही वह शस्त्र एवं शास्त्र में समान रूप से कुशल हो चुका था। 606 ई० में वह थानेश्वर का राजा बना। हर्षचरित से ज्ञात होता है कि पहले वह सिंहासन ग्रहण करने में संकोच कर रहा था, किन्तु सेनापति सिंहनाद ने उसे सिंहासन ग्रहण करने हेतु प्रेरित किया। हर्ष द्वारा सिंहासन ग्रहण करने में अनिच्छा का उल्लेख ह्वेनसांग भी करता है, किन्तु वह कन्नौज के सम्बन्ध में है, थानेश्वर के सम्बन्ध में नहीं। इस प्रकार हर्ष ने राजसिंहासन सँभाल लिया।

सिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद हर्ष वर्धन के सामने दो तात्कालिक समस्याएँ थीं—1. शशांक से बड़े भाई राज्यवर्धन की हत्या का बदला लेना एवं 2. राज्यश्री को कन्नौज के कारागार से मुक्त कराना। इसके अतिरिक्त वह उन सभी राजाओं एवं सामन्तों को दण्डित करना चाहता था जिन्होंने समय का लाभ उठाते हुए अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। अतः उसने शीघ्र ही एक सेना का गठन किया एवं युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

TOUCH 'n' PASS

हर्ष के युद्ध-अभियान
(Harsha's War Campaigns)

हर्षवर्धन के युद्ध-अभियानो को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है—

1. **शशांक के विरुद्ध अभियान**—गौड़ शासक शशांक ने उसके बड़े भाई राज्यवर्धन की हत्या कर दी थी। हर्ष ने शशांक को सबक सिखाने के लिए शीघ्र ही एक सेना का गठन किया और युद्ध के लिए प्रस्थान कर दिया। अन्य स्वाधीन हुए राजाओं तथा सामन्तों को चेतावनी देते हुए अपने युद्ध सचिव अवन्ति के माध्यम से उसने घोषणा करवायी कि या तो वे कर देने के लिए या फिर युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ।

   बाणभट्ट द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्षचरित' के अनुसार हर्ष की सेना प्रतिदिन आठ कोस (16 मील) की दूरी तय कर लेती थी। पहले दिन की यात्रा के बाद हर्ष से कामरूप के राजा भास्करवर्मा का भेजा हुआ हंसबेग नामक दूत मिला जो सन्धि का प्रस्ताव लेकर बहुमूल्य उपहारों के साथ आया था। हर्ष ने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। क्योंकि वह भी शशांक का कट्टर शत्रु था। दोनों के मध्य यह सन्धि शशांक के विरुद्ध की गई थी। इसके बाद सेना आगे बढ़ी। कुछ दूर और जाने पर हर्ष से उसका ममेरा भाई भण्डि मिल गया। भण्डि राज्यवर्धन के साथ युद्ध में गया था और उसकी मृत्यु के बाद सेना के साथ वापस लौट रहा था। उसने हर्ष से राज्यवर्धन के मारे जाने का सम्पूर्ण घटनाक्रम सुनाया और बताया कि गुप्त नामक व्यक्ति ने कान्यकुब्ज पर अपना अधिकार कर लिया है एवं बहन राज्यश्री कारागार से निकलकर विन्ध्याचल के जंगलों में सती होने हेतु चली गई है। ऐसी स्थिति में हर्ष ने अपनी सेना को भण्डि के नेतृत्व में छोड़कर माधवगुप्त तथा कुछ चुने हुए सामन्तों के साथ राज्यश्री की खोज में विन्ध्यवन की ओर प्रस्थान कर दिया। यहाँ पहुँचकर एक बौद्धभिक्षु दिवाकरमित्र की सहायता से हर्ष ने राज्यश्री का पता लगा लिया, उस समय राज्यश्री चिता बनाकर जलने जा रही थी। हर्ष वर्धन ने तुरन्त अपनी बहन के सती होने से बचाया। उसे बचाकर यह पुन: गंगा नदी के तट पर लौट आया जहाँ उसकी सेना भण्डि के नेतृत्व में उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी।

   शशांक से हुए युद्ध के सम्बन्ध में 'हर्षचरित' से कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। 'आर्यमन्जुश्रीमूलकल्प' के एक श्लोक से ज्ञात होता है कि हर्ष नामक एक राजा पूर्वी भारत के पुण्ड्रनगर में जा पहुँचा। दुष्ट कर्म करने वाला शशांक पराजित हुआ और अपने राज्य के अन्दर बन्द पड़े रहने के लिए बाध्य किया गया। गौड़ लोगों द्वारा स्वागत न किए जाने के कारण हर्ष स्वदेश लौट आया। इस विवरण की सत्यता में सन्देह तो है परन्तु फिर भी इससे इतना स्पष्ट है कि शशांक साफ बच निकला। लगता है कि शशांक ने बिना युद्ध के ही कन्नौज खाली कर दिया।

2. **बलभी का अभियान**—ध्रुवसेन द्वितीय बलभी का शासक था। हर्षवर्धन ने ध्रुवसेन को पराजित किया। लेकिन ध्रुवसेन ने भागकर भड़ौच के गुर्जर शासक द्वितीय के दरबार में शरण ली। गुर्जर नरेश ने हर्ष से उसका राज्य वापस दिला दिया। इस घटना का उल्लेख जयभट्ट के नौसारी से प्राप्त दान-पत्र (706 ईसवी) में हुआ है।

   पुलकेशिन के ऐहोल लेख के अनुसार दद्द उसका सामन्त था। अत: नौसारी के दान-पत्र में जो श्रेय दद्द को दिया गया है, वस्तुत: उसका अधिकारी पुलकेशिन ही है। कालान्तर में इसी घटना ने हर्ष-पुलकेशिन के बीच युद्ध कर दिया। बलभी के शासक को अपने पक्ष में करने के लिए हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। नर्मदा के दक्षिण में चालुक्यों का शक्तिशाली राज्य था जो अवसर मिलने पर उत्तर भारत पर आक्रमण कर सकते थे।

   हर्ष को इस संकट पूर्ण रूप से अवगत था। इसलिए उसने जानबूझकर बलभी के शासक को जीत लेने के बाद भी उसे अपनी कन्या प्रदान कर दी और अपने साम्राज्य की पश्चिमी सीमा को सुरक्षित कर लिया। बलभी का शासक चालुक्यों के विस्तार के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा हो गया। हर्ष की यह महान् कूटनीतिक उपलब्धि थी।

3. **सिन्ध अभियान**—ऐसा प्रतीत होता है कि बलभी से युद्ध करने के उपरान्त हर्ष ने सिन्ध पर आक्रमण किया होगा। 'हर्षचरित' में दिए गए विवरण के अनुसार हर्ष ने 'सिन्धुराज' को युद्ध-क्षेत्र में पराजित करके उसकी राजलक्ष्मी को छीन लिया। इससे स्पष्ट होता है कि सिन्धु देश का शासक युद्ध में पराजित तो हुआ, लेकिन उसका राज्य नहीं छीना जा सका। ह्वेनसांग लिखता है कि सिन्ध देश का राजा शूद्र था तथा बौद्ध धर्म में उसकी बहुत आस्था थी। यहाँ हर्ष ने धर्मविजयी

शासक की नीति का अनुसरण किया। हर्ष उससे भेंट-उपहारादि लेकर ही सन्तुष्ट हो गया एवं उसने उसका राज्य वापस लौटा दिया।

4. **हर्ष और पुलकेशिन द्वितीय का युद्ध**—पुलकेशिन द्वितीय चालुक्य वंश का प्रतापी शासक था। हर्ष की विजयों के परिणामस्वरूप उसके राज्य की पश्चिमी सीमा नर्मदा नदी तक पहुँच गई थी। उधर पुलकेशिन भी उत्तर की ओर अपने राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से आगे बढ़ रहा था। ऐसी स्थिति में दोनों शासकों के मध्य युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। फलस्वरूप हर्ष और पुलकेशिन के बीच नर्मदा नदी के तट पर युद्ध हुआ, जिसमें हर्ष को पराजय का मुख देखना पड़ा। इस युद्ध के सम्बन्ध में मतभेद भी है। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि इस युद्ध में जीत हर्ष की हुई, किन्तु अधिकांश प्रमाण पुलकेशिन द्वितीय के पक्ष में हैं। यह युद्ध 630 ई० से 634 ई० के बीच हुआ होगा।
5. **पूर्वी भारत के विजय हेतु दूसरी सैनिक योजना**—पुलकेशिन से मिली पराज्य ने हर्ष का नर्मदा नदी के दक्षिण में अभियान को रोक दिया। इसके उपरान्त हर्ष ने पूर्वी भारत की विजय हेतु एक दूसरी सैनिक योजना बनाई जिसका उद्देश्य शशांक के राज्य को जीतना था। शशांक के राज्य में उड़ीसा, बंगाल तथा मगध के प्रदेश सम्मिलित थे। चीनी साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि 637 ई० में शशांक की मृत्यु के बाद ही हर्ष ने उसके द्वारा शासित राज्यों—मगध, बंगाल तथा उड़ीसा—पर अपना अधिकार किया होगा। शशांक के जीवन-काल में हर्ष उसे किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचा सका।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हर्ष एक महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्य के विस्तार की इच्छा रखने वाला प्रतापी शासक था।

प्र.2. हर्ष के विषय में जानकारी देने वाले प्रमुख स्रोतों का वर्णन कीजिए।

Describe the main sources that provide information about Harsha.

उत्तर हर्ष के शासनकाल पर प्रकाश डालने वाली प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इनमें सर्वप्रमुख हर्ष के दरबार में रहने वाले कवि बाण की कृति 'हर्षचरितम्' है। इस ग्रन्थ में हर्ष व उसके पूर्वजों का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ से हर्ष के प्रारम्भिक जीवन, तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थितियों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें हर्ष की विजयों का भी वर्णन है। यद्यपि इस ग्रन्थ में अनेक कल्पित बातें हैं किन्तु फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का अत्यधिक महत्व है।

'हर्षचरितम्' के अतिरिक्त ह्वेनसांग की कृति 'सी-यू-की' (Si-Yu-Ki) भी हर्ष के विषय में विस्तृत सूचना देती है। ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था, जो हर्ष के शासनकाल में भारत आया था, अत: समकालीन होने के कारण सी-यू-की भी महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस पुस्तक से हर्ष की विजयों, प्रशासन, सहिष्णुता, दानवीरता तथा तत्कालीन सांस्कृतिक स्थिति पर नया प्रकाश पड़ता है। हर्ष ने स्वयं भी अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। उसके द्वारा रचित नाटक रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका से हर्षकालीन घटनाओं व उसकी दानवीरता पर नवीन प्रकाश पड़ता है।

उपर्युक्त साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्विक सामग्री से हर्ष के विषय में जानकारी मिलती है। हर्षकालीन अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनसे तत्कालीन घटनाओं के विषय में जानकारी मिलती है। **631 ई० के मधुबन अभिलेख, 628 ई० का बांसखेड़ा अभिलेख, सोनीपत अभिलेख** आदि इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। अभिलेखों के अतिरिक्त हर्ष के समय के अनेक सिक्के भी मिले हैं, जिनसे हर्ष की तिथि, राज्य-विस्तार, राज्यकाल की अवधि तथा आर्थिक स्थिति पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।

तिथि—चीनी साक्ष्यों के अनुसार 643 ई० में जब ह्वेनसांग हर्ष के दरबार में था तब हर्ष को शासन करते हुए 30 वर्ष हो चुके थे। इस प्रकार चीनी साक्ष्यों के आधार पर हर्ष के अभिषेक का वर्ष 612-13 ई० प्रतीत होता है, किन्तु ऐसा लगता है कि चीनी स्रोतों में उन 6 वर्षों को सम्मिलित नहीं किया गया है जो उसके अभिषेक के पश्चात् युद्धों में व्यतीत हुए थे। वास्तव में, 612 में तो हर्ष ने अपनी स्थिति दृढ़ बना ली थी तथा उसका अभिषेक 6 वर्ष पूर्व ही अर्थात् 606 ई० में हो गया था। 606 ई० में ही उसने हर्ष-संवत् की भी स्थापना की थी।

राज्याभिषेक—606 ई० में राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् हर्ष राजगद्दी पर बैठा, उस समय उस पर विपत्ति के बादल मँडरा रहे थे। उसके पिता व भाई की तभी मृत्यु हुई थी तथा बहिन राज्यश्री कन्नौज के कारागार में बन्द थी। अत: राज्याभिषेक के समय उसके समक्ष दो प्रमुख समस्याएँ थीं—अपनी बहिन राज्यश्री को मुक्त कराना तथा शशांक को दण्डित करना तथा कन्नौज के शासक व हर्ष के बहनोई गृहवर्मा की हत्या के पश्चात् कनौज में शासन की सुव्यवस्था करना।

राज्यश्री को बचाना—सर्वप्रथम उसने अपनी बहिन राज्यश्री को मुक्त कराने का निश्चय किया। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने प्रतिज्ञा की, "मैं आर्य की चरण रज को स्पर्श करके शपथ खाता हूँ कि यदि मैं गौड़-राज्य को उसके अभिभावकों सहित पृथ्वी से न मिटा दूँ तथा समस्त विरोधी राजाओं के पाँवों की जंजीरों की झंकार से पृथ्वी को प्रतिध्वनित न कर दूँ तो मैं स्वयं को पतंगे की भाँति अग्नि को समर्पित कर दूँगा।"

हर्ष ने कामरूप के शासक भास्करवर्मा से मित्रता कर ली। भास्करवर्मा भी शशांक का शत्रु था, अत: शशांक पर विजय प्राप्त करने में हर्ष को सहायता कर सकता था। तत्पश्चात् शक्तिशाली सेना के साथ हर्ष ने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में हर्ष को भाण्डी मिला जो राज्यवर्धन की हत्या के पश्चात् मालवराज की सेना के साथ थानेश्वर लौट रहा था। भाण्डी से हर्ष को पता चला कि कन्नौज पर 'गुप्त' नामक किसी व्यक्ति ने अधिकार कर लिया है तथा राज्यश्री विन्ध्याचल की ओर भाग गई है। हर्ष ने शशांक पर आक्रमण का कार्य भाण्डी को सौंप व स्वयं राज्यश्री को खोजने के लिए विन्ध्याचल की ओर गया। विन्ध्याचल पहुँचकर वह राज्यश्री को ढूँढ़ने में सफल हुआ। राज्यश्री चिता में कूदकर आत्महत्या करने ही वाली थी कि हर्ष पहुँच गया व उसे अपने साथ ले आया।

पहली समस्या के हल हो जाने के पश्चात् कन्नौज की समस्या बची थी। राज्यश्री के कोई पुत्र न होने के कारण कन्नौज का सिंहासन रिक्त था। हर्ष से कन्नौज व थानेश्वर के मन्त्रियों ने अनुरोध किया कि वह स्वयं कन्नौज का भी राजा बन जाए किन्तु हर्ष ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। अन्त में स्वयं राज्यश्री द्वारा अनुरोध किए जाने पर उसने कन्नौज का शासक बनना स्वीकार किया। इस प्रकार कन्नौज व थानेश्वर राज्य एक हो गए। कुछ विद्वानों का विचार है कि कन्नौज में हर्ष ने अपनी बहिन राज्यश्री के साथ संयुक्त रूप से शासन किया था। कालान्तर में हर्ष ने अपनी राजधानी थानेश्वर से हटाकर कन्नौज बना ली।

प्र.3. हर्षवर्धन की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
Describe the cultural achievements of Harsha.

उत्तर

हर्षकालीन सांस्कृतिक उपलब्धियाँ
(Cultural Achievements during Harsha Period)

हर्ष शासक और विजेता के रूप में महान् था परन्तु शान्ति के निर्माता के रूप में वह महत्तर था। शान्ति की उसकी विजय, युद्धों में अर्जित विजयों से कहीं अधिक व्यापक थी। हर्ष ने राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। जितनी कुशलता से वह तलवार पकड़ता था उतनी ही कुशलता से लेखनी भी सँभालता था। इसी कारण उसके शासनकाल में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई।

कन्नौज का सम्मेलन—कन्नौज का सम्मेलन हर्ष के शासन-काल की एक महत्वपूर्ण घटना थी। ह्वेनसांग के महायान सम्बन्धी तर्कों से प्रभावित होकर सम्राट हर्ष ने महायान-सम्प्रदाय के प्रचार के लिए कन्नौज में अनेक धर्म के अनुयायियों की सभा का आयोजन किया। **डा० राधाकुमुद मुकर्जी** ने लिखा है, "भारतीय इतिहास में हर्ष ही एक ऐसा शासक है जिसको धार्मिक एवं सांस्कृतिक उद्देश्यों से थोड़े-थोड़े अन्तराल में विशाल जन-सम्मेलनों को आयोजित करने का गौरव प्राप्त है।" कन्नौज की इस सभा में 18 देशों के राजा, 3,000 ब्राह्मणों व जैनियों, 3,000 बौद्ध भिक्षुओं तथा 1,000 नालन्दा विहार के भिक्षुओं ने भाग लिया था। ह्वेनसांग ने इस सभा का सभापति के पद को सुशोभित किया था। कन्नौज की इस सभा के लिए एक विशेष भवन का निर्माण कराया गया था जिसके दो विशाल कमरों में से प्रत्येक में एक साथ एक-एक हजार व्यक्ति बैठ सकते थे। कन्नौज में धार्मिक-सभा आयोजित करने का आदेश हर्ष ने बंगाल से दिया था। अत: बंगाल से कन्नौज के लिए हर्ष ने धूमधाम से प्रस्थान किया। गंगा के तट के एक ओर हर्ष व दूसरी ओर भास्करवर्मा चल रहे थे। इनके पीछे हजारों सैनिक चल रहे थे।

हर्ष के कन्नौज पहुँचने के पश्चात् इस सभा की कार्यवाही एक जुलूस के रूप में प्रारम्भ हुई। इस जुलूस में सबसे आगे महात्मा बुद्ध की सोने की मूर्ति थी जो तीन फुट ऊँची थी तथा मूर्ति के ऊपर एक छत्र था। मूर्ति के पीछे इन्द्र का वेश धारण करके हर्ष व ब्रह्मा के वेश में भास्करवर्मा चल रहे थे। उनके पीछे ह्वेनसांग, अन्य शासक, मन्त्री, अधिकारी तथा विभिन्न स्थानों से आए विद्वान हाथियों पर सवार थे। रास्ते में अनेक मुद्राएँ बिखेरी गईं तथा सभा भवन पहुँचने पर महात्मा बुद्ध की मूर्ति को एक ऊँचे सिंहासन पर स्थापित किया गया तथा हर्ष के द्वारा उसकी पूजा की गई। इसके पश्चात् ह्वेनसांग ने सभापति का पद ग्रहण किया तथा वाद-विवाद प्रारम्भ हुआ। ह्वेनसांग ने महायान के सिद्धान्तों के विषय में भाषण दिया तथा घोषणा की, "यदि कोई मेरे प्रस्ताव में एक शब्द भी

तर्क-विरुद्ध प्रमाणित कर दे अथवा वाद-विवाद में शंका उत्पन्न कर दे तो मैं अपने प्रतिद्वन्द्वी के कहने पर अपना सिर काट दूँगा।'' किन्तु हर्ष ने ह्वेनसांग की रक्षार्थ घोषणा की, ''यदि कोई व्यक्ति धर्माचार्य (ह्वेनसांग) को स्पर्श करेगा अथवा चोट पहुँचाएगा तो उसको प्राणदण्ड दिया जाएगा और जो कोई उसके विरुद्ध बोलेगा उसकी जीभ काट ली जाएगी।'' कहा जाता है कि कुछ व्यक्तियों ने ह्वेनसांग की हत्या करने का प्रयास किया था किन्तु हर्ष को इस बात का पता चल गया था, इसी कारण हर्ष ने उक्त घोषणा की थी जिसके कारण कोई भी ह्वेनसांग के विरुद्ध न बोला, अत: इस घोषणा का इस सम्मेलन पर दुष्प्रभाव पड़ा। 18 दिनों तक यह सभा चलती रही तथा ह्वेनसांग ने इस सभा में महायान की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया। कन्नौज में यह घोषणा की गई कि ह्वेनसांग ने सभी विरोधी धर्मावलम्बियों को परास्त करके महायान की सत्यता प्रमाणित कर दी है। ह्वेनसांग का अत्यन्त आदर किया गया व उसे 'महायान देव' व 'मोक्षदेव' आदि उपाधियों से अलंकृत किया गया।

प्रयाग-सभा—हर्ष के शासन काल की एक अन्य प्रमुख उपलब्धि प्रत्येक पाँच वर्ष बाद धार्मिक सभा का आयोजन होना था। ह्वेनसांग ने ऐसी ही छठी सभा में भाग लिया था जो प्रयाग में हुई थी। ह्वेनसांग ने इस सभा का विस्तृत विवरण दिया है। इस सभा में भाग लेने के लिए हर्ष के मित्र, राजा व अधीनस्थ शासक एवं पदाधिकारी आए थे तथा पाँच लाख ब्राह्मण, भिक्षु आदि उपस्थित हुए थे।

हर्ष का धर्म—'हर्षचरित' से ज्ञात होता है कि हर्ष के पूर्वज शैव-धर्म के अनुयायी थे। हर्ष भी प्रारम्भ में शैव धर्म का अनुयायी था, जिसकी पुष्टि विभिन्न स्रोतों से होती है। हर्ष ने अपने नाटकों 'रत्नावली' व 'प्रियदर्शिका' में भी शिव-पार्वती व अन्य देवी-देवताओं की स्तुति की है, किन्तु कालान्तर में हर्ष ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। बौद्ध-धर्म के प्रति हर्ष का झुकाव सर्वप्रथम बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र से मिलने के पश्चात् हुआ। दिवाकर मित्र के हर्ष तब सम्पर्क में आया था जब वह राज्यश्री को ढूँढ़ने विन्ध्याचल की ओर गया, किन्तु हर्ष ने दिवाकर मित्र के प्रभाव से तुरन्त बौद्ध-धर्म ग्रहण नहीं किया था, आगामी छह वर्ष तक हर्ष का निरन्तर युद्धों में रत रहना, इस बात का प्रमाण है क्योंकि यदि हर्ष ने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया होता तो वह बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध युद्ध न करता।

शिक्षा एवं साहित्य की उन्नति—प्राचीन भारत के राजा विद्वानों तथा साहित्यकारों को उदारतापूर्वक आश्रय देने के लिए प्रसिद्ध हैं। प्राचीन भारत में कोई ऐसा उल्लेखनीय राजा नहीं हुआ जो कवियों और विद्वानों से घिरा न रहता हो। उन दिनों राजाओं से सम्मान और पुरस्कार प्राप्त करने की आशा साहित्यिक प्रयास को प्रबल प्रोत्साहन प्रदान करती थी। इस प्रकार प्राचीन काल में भारतीय प्रतिभा रूपी पौधे को राजकीय संरक्षक अत्यन्त सावधानी के साथ सींचते और पोषण करते थे तथा वे विद्या और साहित्य की उन्नति करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। राजा हर्ष भी इसका अपवाद न था। वह विद्वानों का महान् आश्रयदाता था। उसके राज-दरबार में अनेक प्रसिद्ध कवि एवं लेखक रहते थे। इन कवियों. में प्रमुख 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' का रचयिता **बाणभट्ट** था। स्वयं बाण ने ही लिखा है कि किस प्रकार हर्ष से उसे सम्मान, धन व स्नेह प्राप्त हुआ। बाण के अतिरिक्त **मातंग दिवाकर** व **मयूर** नामक दो अन्य प्रमुख कवि थे। कहा जाता है कि दिवाकर पहले एक चांडाल था, परन्तु अपनी कवित्व शक्ति के कारण उसे बाण व मयूर की कोटि में गिना जाने लगा। मयूर सम्भवत: बाण का सम्बन्धी था। कुछ विद्वान उसे बाण का बहनोई व कुछ ससुर मानते हैं। मयूर ने '**सूर्यशतक**' की रचना की थी। **शीलभद्र** नामक विद्वान भी हर्ष के काल में ही हुआ था। हर्ष के राजदरबार में एक अन्य प्रसिद्ध विद्वान **जयसेन** था जो शब्द-विद्या, भूगोल, चिकित्साशास्त्र तथा गणित का प्रकाण्ड पंडित था। हर्ष ने जयसेन को उड़ीसा के आठ गाँवों का राजस्व दान में देना चाहा था, किन्तु जयसेन ने अस्वीकार कर दिया था। हर्ष ने बौद्ध-दर्शन के प्रसिद्ध केन्द्र नालन्दा को भी खुले हाथों से दान दिए। उसकी ऊँची अट्टालिकाएँ, असाधारण व्याख्यान, चिन्तन द्वारा ज्ञान-वितरण, सुविस्तृत पाठ्य-पद्धति, आचार्यों एवं छात्रों के उन्नत आचार तथा गम्भीर विद्वत्ता तत्कालीन भारत के लिए गर्व की बात थी तथा नालन्दा विश्वविद्यालय की इस उन्नति में हर्ष ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

हर्षकालीन समाज में शिक्षा व साहित्य उन्नत दशा में थे। अनेक गुरुकुल, आश्रम एवं विहार थे जहाँ विद्यार्थियों को विविध विद्याओं की शिक्षा दी जाती थीं। हर्ष को संस्कृत के तीन नाटक ग्रन्थों-प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द का रचयिता माना जाता है। बाणभट्ट के हर्षचरित में उनके काव्य-चातुर्य की प्रशंसा की गई है। हर्ष के दरबार में अनेक विद्वान् कवि एवं लेखक निवास करते थे।

इनमें बाणभट्ट, मयूर तथा मातंग दिवाकर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हर्ष के समय में नालन्दा महाविहार महायान बौद्धधर्म की शिक्षा का प्रधान केन्द्र था। नालन्दा, बिहार के पटना जिले में राजगृह से आठ मील की दूरी पर है। यह आधुनिक बड़गाँव नामक ग्राम के पास स्थित था।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हर्ष न केवल स्वयं एक प्रकांड पण्डित, उच्चकोटि का ग्रन्थ-कर्ता और सुसंस्कृत था, वरन् अनेक विद्वानों को आश्रय व शिक्षा-संस्थाओं को दान देकर उसने भारत में शिक्षा एवं साहित्य के विकास के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए।

प्र.4. हर्षवर्धन का शासन-प्रबन्ध कैसा था? इस पर प्रकाश डालिए।
How was the administrative system of Harshavardhana? Shine light on it.

उत्तर

हर्षवर्धन का शासन-प्रबन्ध
(Administrative System of Harshavardhana)

हर्ष के समय में प्रचलित शासन प्रणाली गुप्तकाल के समान ही थी। गुप्तकालीन शासन पद्धति में ही कुछ परिवर्तन करके हर्ष द्वारा उसे अपनाया गया था। राजा के अधीन कार्यरत् कर्मचारियों के नाम भी गुप्तकाल के अनुरूप ही थे। **राखाल दास बनर्जी** ने लिखा है कि मौर्यकाल तथा गुप्तकाल की शासन-संस्थाओं तथा कर्मचारियों के नामों में कुछ अन्तर था, किन्तु गुप्त तथा हर्षकाल के नामों में और संस्थाओं में इस प्रकार का कोई अन्तर नहीं था। हर्षचरित, ह्वेनसांग के वृत्तान्त तथा तत्कालीन अभिलेखों से हर्षकालीन शासन-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है।

केन्द्रीय शासन (Central Government)

1. **राजा**—शासन का उच्चतम अधिकारी राजा होता था। राजा को देवता का अवतार माना जाता था। बाण ने हर्ष के लिए लिखा है, **"वे (हर्ष) सब देवताओं के सम्मिलित अवतार थे।"** शासन-प्रबन्ध में राजा सक्रिय भाग लेता था। अपने मन्त्रियों को नियुक्त करना, आज्ञा व घोषणा-पत्र निकालना, न्यायाधीश का कार्य, युद्ध में सेना का नेतृत्व व अनेक प्रकार के जन-कल्याण के कार्य राजा ही करता था। प्रत्येक विभाग का सर्वोच्च अधिकारी भी राजा ही होता था व उसका निर्णय अन्तिम होता था।

   हर्ष ने 'अर्थशास्त्र' के नियमों के अनुसार शासन करने का प्रयत्न किया था तथा प्रजा के दु:खों को दूर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था। हर्ष ने सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् जनता की अधिक-से-अधिक सेवा की। हर्ष जनता के दु:खों को दूर करने के लिए स्वयं अपने राज्य के विभिन्न भागों की यात्रा करता था।

   राजा के समय का विभाजन भी अत्यन्त सावधानी के साथ किया गया था। उसका सारा समय धार्मिक कार्यों तथा शासन सम्बन्धी मामलों में विभक्त था। ह्वेनसांग ने राजा के परिश्रम व दानशीलता का वर्णन करते हुए लिखा है, "राजा का दिन तीन भागों में विभक्त था—दिन का एक भाग तो शासन के मामलों में व्यतीत होता था और शेष दो भाग धार्मिक कृत्यों में व्यतीत होते थे। वे काम से कभी थकने वाले नहीं थे, उनके लिए दिन का समय बहुत कम था। अच्छे कार्यों में वे इतने संलग्न रहते थे कि सोना व खाना तक भूल जाते थे।" हर्ष ने भी अशोक के समान अनेक धर्मशालाएँ बनवाई जहाँ निर्धनों को नि:शुल्क भोजन की सुविधा थी।

   हर्ष ने परमभट्टारक, महाराजाधिराज, एकाधिराज, चक्रवर्ती, सार्वभौम आदि साम्राज्यवादी उपाधियाँ धारण की थीं।

2. **मन्त्रिपरिषद**—हर्ष के काल में मन्त्रि-परिषद का अत्यधिक महत्व था। बाण व ह्वेनसांग दोनों ने ही मन्त्रि-परिषद का उल्लेख किया है। मन्त्रि-परिषद के सदस्य महत्वपूर्ण मामलों में राजा को निरंकुश होने से रोकते थे। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु व गृहवर्मा की हत्या के पश्चात् राज्य-संचालन का प्रश्न मन्त्रियों द्वारा ही सुलझाया गया था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि राज्य के ऊपर शासन एक मन्त्रिमण्डल का होता था। आमात्य और प्रधानामात्य शब्दों का उपयोग भी हर्ष ने मन्त्री और प्रधानमन्त्री के लिए किया है। 'नागानन्द' नामक हर्ष के नाटक में प्रधानामात्य को दैनिक राजकार्य में महत्वपूर्ण स्थान पर दिखाया गया है। राजा के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण पद प्रधानामात्य का ही होता था। प्रधानामात्य का पद युवराज के समकक्ष होता था। प्रधानामात्य के पश्चात् महासन्धिविग्रह का महत्वपूर्ण पद होता था। इनके अतिरिक्त, पुरोहित, सन्धि-विग्रहक (जिसके हाथ में सन्धि और विग्रह करने का अधिकार था तथा वह विदेश विभाग का प्रमुख अधिकारी

होता था), अक्षपटलाधिकृत (सरकारी कागज-पत्र रखने वाला अधिकारी), सेनापति (सेना का प्रमुख अधिकारी) आदि अनेक मन्त्री होते थे।

3. **आय-व्यय**—ह्वेनसांग ने लिखा है, "राजकीय भूमि के चार भाग थे। एक भाग धार्मिक कृत्यों तथा सरकारी कामों में खर्च होता था। दूसरा बड़े-बड़े सार्वजनिक कार्यों व अधिकारियों पर खर्च होता था। तीसरा विद्वानों को पुरस्कार और वृत्ति देने के लिए था तथा चौथा दान-पुण्य आदि में काम आता था।" हर्ष के द्वारा प्रजा से $\frac{1}{6}$ भूमि-कर लिया जाता था। इसके अतिरिक्त, हर्ष के अभिलेखों में अनेक अन्य करों का भी उल्लेख मिलता है जिनमें तुल्यमेय, उपरिकर, करहिरण्यादि कर, भागभोग आदि प्रमुख थे।
4. **न्याय विभाग**—ह्वेनसांग ने लिखा है, "क्योंकि शासन का कार्य ईमानदारी से होता है तथा प्रजा का पारस्परिक सम्बन्ध अच्छा है, इसलिए अपराधी वर्ग बहुत छोटा है।" हर्ष के समय में दण्डविधान अत्यन्त कठोर था। राजद्रोह के लिए आजीवन कारावास, सामाजिक अपराधों के लिए अंग-भंग व देश-निकाला का दण्ड दिया जाता था। गम्भीर अपराधों के लिए मृत्युदण्ड दिया जाता था। बाण ने लिखा है कि विशेष अवसरों पर कैदी बन्दीगृह से छोड़े भी जाते थे। हर्ष के समय में दिव्य-प्रणाली (Ordeal System) का भी न्याय करने में प्रयोग किया जाता था। राज्य में शान्ति और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए पुलिस की व्यवस्था थी, जिसके अधिकारियों को **दण्डिक** व **दण्डपाशिक** कहा जाता था।
5. **सार्वजनिक हित के कार्य**—अशोक के समान हर्ष ने भी अनेक सार्वजनिक हित के कार्य किए। उसने अनेक परोपकारी और धार्मिक संस्थाओं का निर्माण कराया। हर्ष के द्वारा अनेक चैत्य, स्तूप व विहारों का भी निर्माण कराया गया। यात्रियों की सुविधा के लिए मार्ग व धर्मशालाओं का निर्माण कराया गया। नालन्दा विश्वविद्यालय आदि शिक्षा केन्द्रों की उन्नति के लिए भी हर्ष ने महत्वपूर्ण कार्य किए।
6. **शिक्षा एवं रक्षा विमाग**—ह्वेनसांग के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि हर्ष ने एक विशाल सेना संगठित की थी जिसमें 60,000 हाथी तथा 1,00,000 घुड़सवार थे। ह्वेनसांग ने हर्ष की पैदल सेना का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु जब उसकी हस्ति व अश्वसेना इतनी विशाल थी तो पैदल सेना की विशालता का सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है। रथ-सेना का प्रयोग हर्ष के शासनकाल में नहीं होता था, किन्तु नौ-सेना का उल्लेख मिलता है। सेना का सर्वोच्च अधिकारी महासन्धि-विगृहाधिकृत होता था। उसके अतिरिक्त, अन्य अधिकारी बलाधिकृत, सेनापति, बृहदश्ववार (अश्व सेना का अधिकारी), भटाश्वपति, कटुक (गज सेना का अधिकारी) तथा पाति आदि अधिकारी होते थे। युद्ध में प्राय: तलवार, ढाल, भाले, कवच, धनुष-बाण आदि का ही प्रयोग किया जाता था।

   रक्षा-विभाग के भी अनेक अधिकारियों के नाम मिलते हैं। दण्ड-पाशिक, दण्डिक, चौरोद्धरणिक (चोरों का पता लगाने वाला) आदि प्रमुख अधिकारी थे। रात में पहरा देने वाली स्त्री को **याम-चेटि** कहा जाता था। इन अधिकारियों के अतिरिक्त गुप्तचर भी होते थे जो छिपकर अपराधों का पता लगाते थे।

प्रान्तीय शासन (Provincial Government)

हर्ष का विशाल साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था, जिन्हें **भुक्ति** कहा जाता था। भुक्ति पर सामान्यतया राजकुल अथवा राजपरिवार के व्यक्ति शासन करते थे जिन्हें **उपरिक महाराज** कहते थे। भुक्तियों के साधारण शासकों को **स्थानीय** और **राष्ट्रीय** कहा जाता था। हर्षकालीन कुछ भुक्तियों के नाम अहिच्छत्र, श्रावस्ती, कौशाम्बी व पुण्ड्रवर्धन थे। भुक्तियों के शासकों की सहायतार्थ राजा द्वारा नियुक्त एक मन्त्रि-परिषद होती थी।

1. **विषय-प्रशासन**—प्रत्येक भुक्ति अनेक **विषयों** (जिलों) में विभक्त होती थी जिसके प्रधान अधिकारी को '**विषयपति**' कहा जाता था। विषयपति की नियुक्ति प्राय: उपरिक महाराज के द्वारा की जाती थी। विशिष्ट परिस्थितियों में राजा भी विषयपति को नियुक्त करता था। विषयपति विभिन्न जातियों के व्यक्ति होते थे। विषयपति की सहायता के लिए दांडिक, चौरोद्धरणिक व दण्डपाशिक आदि कर्मचारी होते थे। दामोदरपुर के ताम्रलेखों में पाँच विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है। इनमें से चार नगर श्रेष्ठी, सार्थवाह, प्रथम कुलिक तथा प्रथम कायस्थ थे। पाँचवें को **पुस्तपाल** कहते थे।

2. **ग्राम शासन**—प्रत्येक विषय अनेक '**पठकों**' (तहसील) में विभक्त होता था। प्रत्येक पठंक अनेक **ग्रामों** में विभक्त होता था जो प्रशासन की न्यूनतम इकाई थी। ग्रामीण-शासन सरकारी तौर पर बहुत अच्छी तरह से संगठित था तथा ग्राम-प्रशासन में गैर-सरकारी स्थानीय लोगों का भी प्रमुख सहयोग था। प्रथम तो गाँव के ही प्रतिष्ठित लोग थे जिन्हें '**महत्तर**' कहते थे जो गाँव के समस्त मामलों की देख-रेख करते थे। इनके अतिरिक्त, **ग्रामिक** नामक अधिकारी ग्राम का सर्वोच्च अधिकारी होता था। इसके अतिरिक्त, अष्टकुलाधिकरण, शौल्किक (शुल्क वसूल करने वाला), गौल्मिक (वन-निरीक्षक), अग्रहारिक, ध्रुवाधिकरण, पुस्तपाल, कर्त्री आदि अन्य अधिकारी होते थे जिनकी सहायता से ग्राम का प्रशासन किया जाता था।

प्र.5. कश्मीर, नेपाल, कामरूप और दक्षिण भारत में हर्षवर्धन की स्थिति कैसी थी? समीक्षा कीजिए।
How was Harshavardhana's condition in Kashmir, Nepal, Kamrup and South India? Provide a review.

उत्तर नेपाल, कश्मीर, कामरूप और दक्षिण भारत में हर्षवर्धन की स्थिति का क्रमशः विवरण निम्न प्रकार है—

1. **कश्मीर के सम्बन्ध में हर्षवर्धन की स्थिति**—ऐसा माना जाता है कि कश्मीर में भगवान बुद्ध का एक दाँत संरक्षित थी। हर्षवर्धन उस दाँत के दर्शन करना चाहता था। इसी उद्देश्य से वह स्वयं कश्मीर की सीमा पर आया तथा उसने दाँत के दर्शन व पूजा हेतु कश्मीरनरेश से आज्ञा माँगी। परन्तु बौद्ध संघ ने इस बात पर स्पष्ट इनकार कर दिया। इस पर कश्मीरनरेश ने स्वयं मध्यस्थता करके दाँत को हर्ष के सम्मुख कर दिया। उसे देखते ही हर्ष श्रद्धा-विह्वल हो उठा तथा बल-प्रयोग करके दाँत को अपने साथ उठा ले आया, परन्तु इस कथन से हर्ष की कश्मीर विजय का निष्कर्ष निकालना असंगत लगता है। कश्मीर का राजा भी बौद्ध था। सम्भव है कि वह हर्ष के प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत ही रहा हो।
2. **नेपाल के सम्बन्ध में हर्षवर्धन की स्थिति—प्रसिद्ध इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी** के अनुसार नेपाल में हर्ष संवत् का प्रचलन था। इसे वहाँ पर हर्षवर्धन के आधिपत्य का सूचक माना जाता है। किन्तु केवल संवत् के प्रचलन के कारण नेपाल को उसके अधीन नहीं माना जा सकता। संवत् का प्रचलन सांस्कृतिक सम्पर्क का परिणाम भी हो सकता है। इस प्रसंग में यह तथ्य भी उल्लिखित है कि दक्षिणी भारत में हमें शक संवत् का प्रचलन नौवीं शताब्दी में दिखाई देता है, पर हमें ज्ञात है कि किसी भी शक शासक ने दक्षिण की विजय नहीं की थी। सम्भव है हर्ष ने हिमालय की तराई में स्थित किसी प्रदेश को जीता हो। **लेवी** ने इसे तुर्क प्रदेश बताया है जबकि **आर०एस० त्रिपाठी** के अनुसार यहाँ बाण ने किसी शक्तिशाली पहाड़ी राजकुल की कन्या के साथ हर्ष के विवाह का संकेत किया है। अतः इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
3. **कामरूप के सम्बन्ध में हर्ष की स्थिति**—भास्करवर्मा कामरूप का शासक था। वह हर्ष का समकालीन था एवं उसने हर्ष के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया था। वह हर्ष के जीवन काल तक वह उसका मित्र तथा सहायक बना रहा। ऐसा माना जाता है कि एक बार चीनी यात्री ह्वेनसांग भास्करवर्मा के दरबार में ठहरा हुआ था। उसी समय हर्ष ने उसे बुलाने के लिए अपना दूत भेजा। भास्करवर्मा ने यह सन्देश भेजा कि यह 'चीनी यात्री' के बदले अपना सिर देना पसन्द करेगा। इस पर हर्ष अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा उसने उसका सिर तुरन्त भेजने को कहा। इसे सुनकर भास्करवर्मा अत्यन्त भयभीत हो उठा तथा चीनी यात्री के साथ हर्ष के सम्मुख स्वतः उपस्थित हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि वह हर्ष की शक्ति से भयभीत था।
4. **दक्षिण भारत के सम्बन्ध में हर्षवर्धन की स्थिति**—इस सम्बन्ध में भी कुछ प्रमाण मिले हैं। उनके अनुसार हर्ष ने नर्मदा नदी के दक्षिण में सैनिक अभियान प्रारंभ किया और कुन्तल, चोल व काँची पर विजय प्राप्त की। हर्ष का यह अभियान पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु (643 ई० के लगभग) के उपरान्त किया गया होगा, जिसमें चोल तथा पल्लव नरेशों ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली होगी। हर्ष ने सुदूर दक्षिण के राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाया नहीं होगा, बल्कि उसका उद्देश्य मात्र उनसे अपनी अधीनता स्वीकार करवाना रहा होगा। जहाँ तक कुन्तल का प्रश्न है, हर्ष इस प्रदेश में सुदूर दक्षिण की विजय के कुछ समय बाद गया होगा। कुन्तल पुलकेशिन द्वितीय के साम्राज्य में था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु के बाद चालुक्य राज्य में जो अराजकता फैली, उसी का लाभ उठाते हुए हर्ष ने कुन्तल सहित चालुक्य राज्य के कुछ पश्चिमी भागों को जीत लिया होगा।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हर्ष का राज्य-क्षेत्र काफी विशाल था।

प्र.6. हर्षवर्धन के साम्राज्य-विस्तार के विषय में आप क्या जानते हैं? इससे सम्बन्धित विभिन्न मतों का विवरण दीजिए।
What do you know about expansion of Harshavardhana's empire? Express different regarding the same.

उत्तर

हर्षवर्धन के साम्राज्य-विस्तार के सम्बन्ध में विभिन्न मत
(Various Views Regarding the Expansion of Harshavardhana's Empire)

हर्षवर्धन के साम्राज्य-विस्तार के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत प्रचलित हैं—

1. **विभिन्न लेखों के तथ्य**—हर्ष का पैतृक राज्य थानेश्वर था। इसमें दक्षिण पंजाब और पूर्वी राजपूताना भी सम्मिलित थे। गृहवर्मा की मृत्यु के पश्चात् उसने कन्नौज के मौखरि राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया, जिसमें समस्त उत्तर प्रदेश तथा मगध का भी कुछ भाग सम्मिलित था। बंसखेड़ा व मधुबन के लेखों के अनुसार अहिच्छत्र और श्रावस्ती के प्रदेश भी हर्ष के अधिपत्य में थे। प्रयाग में उसने महामोक्षपरिषद का आयोजन करवाया था जो वहाँ उसके अधिकार की सूचना देता है।
2. **विभिन्न इतिहासकारों का मत**—कुछ प्रसिद्ध इतिहासकार हर्ष वर्धन को उत्तर भारत के चक्रवर्ती शासक के रूप में देखते हैं। इसके साम्राज्य में उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक तथा पूर्व में कामरूप से पश्चिम में सुराष्ट्र तक का विशाल भू-भाग शामिल था। **रमाशंकर त्रिपाठी** की दृष्टि में वे सभी प्रदेश हर्ष के अधीन थे जिनकी राजनीतिक स्थिति या राज्य के विषय में ह्वेनसांग मौन धारण किए हुए है। **मजूमदार** हर्ष के साम्राज्य में उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा के बाहर का कोई भी हिस्सा मानने को तैयार नहीं है। इसके विपरीत वह जिन राज्यों के शासकों का उल्लेख करता है, वे सभी हर्ष के साम्राज्य के बाहर थे। ऐसी स्थिति में हर्ष की वास्तविक साम्राज्य-सीमा का निर्धारण करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है।
3. **हर्ष के साम्राज्य में विभिन्न प्रकार के राज्य**—हर्ष वर्धन के विस्तृत साम्राज्य में तीन प्रकार के राज्य—प्रत्यक्ष शासित राज्य, अर्द्धस्वतन्त्र राज्य तथा मित्र राज्य-सम्मिलित थे। जिन राज्यों की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख ह्वेनसांग नहीं करता। प्रथम श्रेणी में सामान्य रूप से उन राज्यों को रखा जा सकता है। दूसरी श्रेणी में बलभी, पश्चिमी मालवा, सिन्धु आदि राज्य थे जबकि तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत कश्मीर तथा कामरूप के राज्य सम्मिलित थे। हर्ष का प्रभाव-क्षेत्र उसके प्रत्यक्ष शासन से अधिक विस्तृत था। बाह्य देशों के साथ भी उसने मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए।
4. **चीनी स्रोतों और मुहरों के साक्ष्य**—चीनी स्रोतों से मगध पर हर्ष के अधिकार की पुष्टि होती है जहाँ उसे 'मगधराज' कहा गया है। शशांक की मृत्यु के बाद हर्ष ने बंगाल व उड़ीसा पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक का भाग हर्ष वर्धन के अधीन था। पश्चिमोत्तर में सिन्ध का राज्य उसके प्रभाव-क्षेत्र में था। ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार जालन्धर, कुलूट, शतद्रु आदि भी हर्ष के अधीन थे। यमुना के पश्चिम में सोनपत से प्राप्त मुहर में हर्ष के नाम का उल्लेख मिलता है जिससे वहाँ पर हर्ष का अधिकार प्रकट होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम में पश्चिमी मालवा, उज्जैन, जेजाकभुक्ति, माहेश्वरपुर, बैराट आदि के राज्य भी हर्ष के साम्राज्य में सम्मिलित थे। पूर्वी मालवा तथा बलभी के राज्य भी हर्ष की अधीनता स्वीकार करते थे। इस प्रकार पश्चिम में यमुना तथा नर्मदा के बीच का सभी भाग हर्ष वर्धन के साम्राज्य में सम्मिलित हो चुका था। उत्तर में हर्ष का साम्राज्य नेपाल की सीमा तक फैला हुआ था।
5. **हर्ष का अन्त**—हर्ष ने सम्भवत: 647 ई० तक राज्य किया। उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। अत: उसकी मृत्यु के बाद उत्तर भारत में पुन: अराजकता व्याप्त हो गई तथा कन्नौज पर अर्जुन नामक किसी स्थानीय शासक ने अधिकार कर लिया।

इस प्रकार हर्ष का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत रूप धारण किए हुए था।

प्र.7. हर्ष का एक शासक के रूप में मूल्यांकन कीजिए।
Evaluate Harsha as a ruler.

उत्तर

हर्ष का मूल्यांकन
(Evaluation of Harsha)

हर्ष, निस्सन्देह प्राचीन भारत के महानतम् सम्राटों में से एक था। हर्ष जिस समय सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय उसकी आयु मात्र 16 वर्ष थी तथा उसके समक्ष अनेक कठिनाइयाँ थीं, परन्तु हर्ष ने अत्यन्त साहस व कुशलता से समस्त समस्याओं का सामना

किया व उन पर विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। उसने न केवल अपने पैतृक साम्राज्य को ही अक्षुण्ण रखा वरन् निरन्तर विजयों से अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करते हुए गुप्तकाल के पश्चात् समाप्त हुई राजनीतिक एकता को भी प्रतिस्थापित किया। भारत, जो हर्ष से पूर्व बहुसंख्यक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, हर्ष के शासनकाल में एकता के सूत्र में आबद्ध हो गया। इस समय भारत की राजनीतिक एकता का अत्यन्त महत्व था क्योंकि भारत को हूणों से खतरा बना हुआ था और भारत में यदि राजनीतिक एकता हर्ष ने स्थापित न की होती तो हूणों द्वारा भारत पर विजय प्राप्त करने के निश्चित रूप से प्रयास किए जाते, किन्तु हर्ष के शासक होने के कारण हूणों का भारत पर आक्रमण करने का साहस न हुआ।

हर्ष ने जिस प्रकार अपने साम्राज्य का निर्माण किया उससे उसकी युद्ध-कला का ही नहीं अपितु उसकी नीति-निपुणता का भी परिचय मिलता है। हर्ष ने न केवल अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की वरन् उसकी शक्ति से भयभीत होकर अनेक राज्यों ने उसकी अधीनता भी स्वीकार कर ली। हर्ष ने अपने कूटनीतिक कौशल का परिचय देते हुए कामरूप के शासक भास्करवर्मा व बलभी के राजा ध्रुवभट्ट से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए। भास्करवर्मा शशांक के विरुद्ध व ध्रुवभट्ट पुलकेशिन द्वितीय से युद्ध के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण शासक थे। इसी कारण बाण व ह्वेनसांग ने हर्ष को उत्तर भारत का महान सम्राट माना है। **डॉ० आर० सी० मजूमदार** ने भी हर्ष को एक महान तथा शक्तिशाली शासक माना है।

हर्ष वर्धन महान दानी था। इसी कारण उसकी तुलना कर्ण से की जाती है। बौद्ध धर्म के प्रचारक के रूप में हर्ष की तुलना विद्वानों ने अशोक व कनिष्क के साथ की है। कुछ विद्वानों ने उसकी तुलना उसकी विजयों के कारण समुद्रगुप्त से भी की है। वास्तव में, उसमें अशोक व समुद्रगुप्त दोनों के ही गुण विद्यमान थे। उसने अशोक के समान ही बौद्ध-धर्म का प्रचार व जनकल्याण के कार्य किए तथा समुद्रगुप्त के समान विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। कुछ मामलों में तो हर्ष इन शासकों से भी महान था। उदाहरण के लिए—हर्ष स्वयं भी साहित्यकर्ता था तथा उसने तीन नाटकों की रचना की थी, जबकि अशोक व समुद्रगुप्त कृत कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

हर्ष की एक शक्तिशाली शासक होने के साथ ही सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उपलब्धियाँ कम नहीं हैं। वह स्वयं भी उच्चकोटि का विद्वान था तथा विद्वानों का आश्रयदाता भी था। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति उस समय अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी। विद्या, कला तथा विज्ञान की जो अपूर्व धारा गुप्तकाल में प्रवाहित हुई थी, वह हर्ष के काल में भी अविरल बहती रही। हर्ष के शासनकाल के दौरान भारत की उन्मेषशालिनी प्रतिभा नित्य नवीन सौन्दर्य सृष्टि में रत थी।

'प्रियदर्शिका' के अंग्रेजी अनुवादकों तथा सम्पादकों के शब्दों में, "कन्नौज के हर्षवर्धन को जो राजा, सम्राट, प्रतिभाशाली सैनिक संगठनकर्ता, विद्वानों का आश्रयदाता तथा सभी कुछ थे, भारत के महापुरुषों में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है।" कुछ विद्वानों का विचार है कि हर्ष उत्तर भारत का अन्तिम महान सम्राट था। **पन्निकर** ने लिखा है, "यह हर्ष का गौरव था कि वह चन्द्रगुप्त मौर्य से प्रारम्भ होने वाली उन हिन्दू शासकों की लम्बी पंक्ति का अन्तिम शासक था जिनके समय में संसार ने भारत को एक प्राचीन तथा महान सभ्यता ही नहीं अपितु मानवता की उन्नति के लिए कार्यशील एवं सुव्यवस्थित और शक्तिशाली राज्य के रूप में देखा। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शासक, कवि और धार्मिक उत्साही के रूप में हर्ष का भारतीय इतिहास में सदैव उच्च स्थान रहेगा।" **किन्तु डॉ० आर० सी० मजूमदार** इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। उन्होंने इस मत की आलोचना करते हुए लिखा है कि यह कल्पना करना असंगत है कि हिन्दू काल में हर्ष अन्तिम साम्राज्य-निर्माता था और उसकी मृत्यु से ही उत्तर भारत की राजनीतिक एकता की पुन: स्थापना के लिए प्रयत्न समाप्त हो गए। उसके साम्राज्य के समान अनेक राज्य आगामी पाँच शताब्दियों में उदित हुए तथा उनमें से कुछ तो, जैसे प्रतीहार-साम्राज्य, उसके साम्राज्य से अधिक विशाल व स्थायी थे। फिर भी एक महान् शासक, वीर सेनानी, कला के संरक्षण और श्रेष्ठ आदर्शों तथा प्रतिभावान व्यक्तित्व वाले एक व्यक्ति के रूप में उसकी प्रशंसा और सराहना अनिवार्य है।

647 ई० में हर्ष का देहान्त हो गया। हर्ष का कोई पुत्र न था। अत: उसकी मृत्यु के उपरान्त योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में शीघ्र ही उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

प्र.8. ह्वेनसांग कौन था? उसकी भारत यात्रा का वर्णन कीजिए।
Who was Hiuen Tsang? Describe his India visit.

उत्तर

ह्वेनसांग की भारत यात्रा
(Hiuen Tsang's Visit to India)

ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था।वह सम्राट हर्ष वर्धन के समय भारत आया था। वस्तुत: ह्वेनसांग 622 ई० में 20 वर्ष की आयु में प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु बन गया। उसने अनुभव किया कि चीन में बौद्ध धर्म का पूर्ण अध्ययन सम्भव नहीं है। इसलिए वह बौद्ध धर्म के पूर्ण ज्ञान की अभिलाषा से भारत आया था। उसकी भारत यात्रा को हम निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं—

1. **यात्रा का प्रारम्भ**—चीनी यात्री ह्वेनसांग ने 629 ई० में अपनी भारत यात्रा चीन के तांग शासकों की राजधानी चंगन से प्रांरभ थी। वह उत्तरी मध्य एशिया के मार्ग से होता हुआ ताशकन्द, समरकन्द, काबुल तथा पेशावर के मार्ग से भारत आया। हिन्दूकुश की पहाड़ियों को पार करने के बाद सर्वप्रथम वह भारतीय राज्य कपिशा पहुँचा। भारत तक पहुँचने में उसे लगभग एक वर्ष का समय लगा। ह्वेनसांग यहाँ से गन्धार, कश्मीर, जालन्धर, कुलूट तथा मथुरा होता हुआ थानेश्वर पहुँच गया। थानेश्वर में कुछ दिन तक रुककर जयगुप्त नामक बौद्ध गुरू से उसने शिक्षा प्राप्त की। थानेश्वर से मतिपुर, अहिच्छत्र और सांकाश्य होते हुए 636 ई० के मध्य उसने हर्ष की राजधानी कन्नौज में प्रवेश किया। कन्नौज से ह्वेनसांग ने अयोध्या, प्रयाग, वाराणसी, वैशाली, कौशाम्बी, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पाटलिपुत्र आदि स्थानों का भी भ्रमण किया। पाटलिपुत्र में प्रसिद्ध विहारों एवं स्तूपों के उसने दर्शन किए थे। पाटलिपुत्र से चलकर वह बोधगया पहुँचा। वहाँ पर उसने बोधिवृक्ष की पूजा-अर्चना की।
2. **भारत में विभिन्न स्थलों का भ्रमण**—सन् 637 ई० में ह्वेनसांग नालन्दा विश्वविद्यालय पहुँचा। नालन्दा में लगभग डेढ़ वर्ष तक एक साथ वहाँ पर उसने योगशास्त्र का अध्ययन किया। तत्पश्चात् वह बंगाल, उड़ीसा, धान्यकटक (कृष्णानदी के तट पर) होता हुआ पल्लवों की राजधानी काँची पहुँचा। काँची से वह आगे नहीं जा सका और वह उत्तर की ओर लौट गया। यहाँ से वह मो-हो-ल-च-अ अर्थात् महाराष्ट्र में चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय के राज्य में आया। ह्वेनसांग पुलकेशिन की शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहता है कि उसने हर्ष की अधीनता स्वीकार नहीं की। महाराष्ट्र से वह भड़ौच, मालवा तथा बलभी आया। ह्वेनसांग के अनुसार बलभी का शासक ध्रुवसेन हर्ष का दामाद था। तत्पश्चात् आनन्दपुर, सुराष्ट्र, माहेश्वरपुर आदि नगरों से होकर वह सिन्ध पहुँच गया। ह्वेनसांग के अनुसार सिन्ध देश का राजा शूद्र था तथा बौद्ध धर्म में उसकी आस्था थी। सिन्ध देश के बाद ह्वेनसांग मूलस्थानपुर पहुँचा जहाँ उसने प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर को देखा। अपनी यात्रा के दूसरे दौर में ह्वेनसांग पुन: नालन्दा आया जहाँ उसने व्याख्यान दिया। इस समय उसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी थी।
3. **भास्करवर्मा का आमन्त्रण व धर्मसभा में उपस्थिति**—ह्वेनसांग विद्धत्ता से प्रभावित होकर कामरूप के शासक भास्करवर्मा ने उसे सादर आमन्त्रित किया। जिस समय ह्वेनसांग काम रूप जा रहा था। उस समय उसने हर्ष को बंगाल के कजंगल नामक स्थान पर सैनिक शिविर डालकर विश्राम करते देखा। कामरूप में उसका अत्यधिक अतिथि-सत्कार हुआ। वहाँ से हर्ष के आग्रह पर वह पुन: उसकी राजधानी वापस लौट आया।

   ह्वेनसांग द्वारा कन्नौज की धर्मसभा व प्रयाग के छठे महामोक्षपरिषद् में भी हिस्सा लिया गया। इन दोनों समारोहों का उसने अपने लेख में अच्छा वर्णन किया है। प्रयाग में ही उसने हर्ष से विदाई ली। अपनी वापसी में भी उसने मध्य एशिया के ही मार्ग का अनुसरण किया। प्रयाग से चलकर वह जालन्धर पहुँचा। वहाँ पर वह लगभग एक माह तक रहा। यहाँ से नये रक्षक-दल के साथ नमक के पहाड़ी दर्रे तथा सिन्ध नदी को कठिनाई से पार करता हुआ पामीर और खोतान के मार्ग से वह 645 ई० तक विभिन्न बौद्ध ग्रन्थों के चीनी भाषा के अनुवाद में व्यस्त रहा। इसके चार वर्ष उपरान्त सन् 665 ई० के लगभग ह्वेनसांग की मृत्यु हो गई।

4. **ह्वेनसांग का यात्रा-वृत्तान्त**—'सि-यू-की' ह्वेनसांग का यात्रा-वृत्तान्त था। ह्वेनसांग के वृत्तान्त से हर्षकालीन भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक दशा के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो जाती है। ह्वेनसांग ने हर्ष की राजधानी कन्नौज का वर्णन किया है। उसके अनुसार यह नगर तीन मील लम्बा तथा डेढ़ मील चौड़ा था। यहाँ के लोग सभ्य, समृद्ध एवं नैतिक दृष्टि से उन्नत थे। ह्वेनसांग हर्ष के शासन की प्रशंसा करते हुए लिखता है कि हर्ष का शासन उदार था। वह व्यक्तिगत रूप से शासन की विभिन्न समस्याओं में रुचि लेता था। प्रजा सुखी एवं समृद्ध थी। बेगार नहीं लिया जाता था। दण्ड की व्यवस्था साधारण थी। सामाजिक नैतिकता एवं सदाचार के विरुद्ध आचरण करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। यद्यपि आवागमन के मार्ग पूर्णतया सुरक्षित नहीं थे। वह कई बार चोर-डाकुओं के चंगुल में फँस चुका था। फिर भी लोग नैतिक दृष्टि से उन्नत थे। वे पारलौकिक जीवन के दु:खों से डरते थे और इस कारण पाप बहुत कम होते थे। ह्वेनसांग ने हर्ष के परिश्रम और दानशीलता की भी अत्यधिक प्रशंसा की है।

   ह्वेनसांग के विवरण से स्पष्ट है कि हर्षकालीन समाज में चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र-के अतिरिक्त कई जातियाँ एवं उपजातियाँ भी थीं। वह अनेक मिश्रित जातियों का भी उल्लेख करता है। कुछ जाति के लोगों को अछूत समझा जाता था। वे गाँवों और नगरों के बाहर ही निवास करते थे। उनके मकानों पर पहचान-चिह्न लगे हुए थे। विभिन्न वर्गों और जातियों का अन्तर बढ़ता जा रहा था। ह्वेनसांग ब्राह्मणों की प्रशंसा करता है एवं उन्हें 'सर्वाधिक पवित्र और सम्मानित जाति' कहता है। ह्वेनसांग ने क्षत्रियों की वीरता की अत्यधिक प्रशंसा की है तथा उन्हें 'राजाओं की जाति' कहा है। उसके अनुसार वैश्य देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ थे।

5. **ह्वेनसांग की दृष्टि में तत्कालीन समाज**—ह्वेनसांग की दृष्टि में भारतीय अधिकतर सफेद वस्त्र धारण करते थे। समाज में अन्तर्जातीय विवाह होते थे। तत्कालीन समाज में अनेक धर्म एवं सम्प्रदाय प्रचलित थे। शिव, सूर्य, विष्णु, दुर्गा आदि देवी-देवताओं की उपासना का व्यापक प्रचलन था। लोग मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों प्रकार के भोजन करते थे। गंगाजल को लोग 'पुण्यजल' समझते थे। लोगों का ऐसा विश्वास था कि जो लोग नदी के जल में डूबकर मर जाते हैं उनका स्वर्ग में सुखपूर्वक जन्म होता है। अत: अनेक लोग प्रतिवर्ष प्रयाग के संगम के जल में डूबकर मरने के लिए आते थे। ह्वेनसांग कन्नौज तथा प्रयाग के छठे समारोहों में सम्मिलित हुआ था। कन्नौज की धर्मसभा का वह अध्यक्ष रहा था। इससे ह्वेनसांग का उद्देश्य महायान बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करना था।

6. **ह्वेनसांग की दृष्टि में नालन्दा विश्वविद्यालय**—चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णन से नालन्दा विश्वविद्यालय के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। ह्वेनसांग ने लिखा कि यहाँ अनेक बौद्ध-विहार अत्यन्त विशाल थे। इन विहारों में अनेक जलाशय भी थे। इन विहारों में अनेक विशाल भवन भी थे। विश्वविद्यालय भवन में 7 विशालकाय कक्ष और लगभग तीन सौ अन्य कमरे थे। विद्यार्थियों के लिए छात्रावासों की सुविधा थी जिनमें जल का कुओं द्वारा समुचित प्रबन्ध किया गया था। उल्लेखनीय है कि विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए संरक्षक शासकों द्वारा 200 गाँव निर्धारित थे, जिनकी आय से विश्वविद्यालय का खर्चा चलता था। विश्वविद्यालय में प्रवेश के अत्यन्त कड़े नियम थे।

   नालन्दा विश्वविद्यालय में अनेक अध्यापक थे जो एक समय में 10 विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। एक दिन में सभी विषय के मिलाकर लगभग 100 व्याख्यान दिए जाते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय भी था जिसका नाम 'धर्म यज्ञ' था। इस पुस्तकालय की विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यह तीन भवनों—रत्नसागर, रत्नोदधि व रत्नरंजक से मिलकर बना था। इस पुस्तकालय में सदैव अत्यन्त भीड़ रहती थी।

   इत्सिंग ने यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार बताई है जो कि ह्वेनसांग के समय में दस हजार थी। ह्वेनसांग के समय में इस विश्वविद्यालय का कुलपति शीलभद्र था जो स्वयं एक विद्वान था। ह्वेनसांग ने भी यहाँ शिक्षक के रूप में कार्य किया था। इस विश्वविद्यालय में भारत के प्रत्येक क्षेत्र के विद्वान शिक्षण के रूप में कार्यरत थे। कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध शिक्षक धर्मपाल, गणमति, प्रभामित्र, आर्यदेव, चन्द्रपाल आदि थे। नालन्दा विश्वविद्यालय में अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती थी, किन्तु महायान शाखा का अध्ययन विशेष रूप से कराया जाता था। पालि भाषा की शिक्षा भी यहाँ अनिवार्य रूप से दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय में दूर-दूर से विद्यार्थी अध्ययन करने के लिए आते थे। उल्लेखनीय है कि चीन, तिब्बत, कोरिया आदि अन्य देशों के विद्यार्थी भी इस विश्वविद्यालय में अध्ययन करने आते थे।

प्र.9. राजपूतों के उदय के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिए।
Give a detailed description about different views regarding the rise of the Rajputs.
***अथवा* राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।** **(2021)**
***Or* Throw light on the theory of foreign origin of the Rajputs.**

उत्तर

राजपूतों के उदय के सम्बन्ध में विभिन्न मत
(Various views Regarding the Rise of Rajputs)

'राजपूत' शब्द संस्कृत भाषा के 'राजपुत्र' शब्द का तद्भव रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ है राज का पुत्र अर्थात् राजकुमार 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग, जो पहले राजकुमार के अर्थ में किया जाता था, पूर्व मध्यकाल में सैनिक वर्गों और छोटे-छोटे जमींदारों के लिए प्रयुक्त होने लगा। वस्तुतः आठवीं सदी के उपरान्त 'राजपूत' शब्द शासक वर्ग का पर्याय बन गया।
राजपूतों की उत्पत्ति का प्रश्न विवादास्पद है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत निम्न प्रकार है—

1. **विदेशी उत्पत्ति का मत**—राजपूतों के सम्बन्ध में विदेशी उत्पत्ति का मत निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है—
   (i) **कर्नल जेम्स टाड** द्वारा राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत का प्रतिपादन सबसे पहले किया गया। उनके अनुसार राजपूत विदेशी सीथियन जाति की सन्तान थे। इस मत का आधार सीथियन और राजपूत जातियों की कुछ सामाजिक तथा धार्मिक प्रथाओं में समानता है। ये टाड के अनुसार निम्नलिखित हैं—
   (a) रहन-सहन तथा वेश-भूषा
   (b) मांसाहार का सेवन
   (c) रथों द्वारा युद्ध करना
   (d) यज्ञों का प्रचलन।
   उपर्युक्त प्रथाओं का प्रचलन सीथियन व राजपूत दोनों ही समाजों में था, अतः इस आधार पर कर्नल टाड ने राजपूतों को सीथियन जाति का वंशज बताया।
   (ii) **भण्डारकर** के अनुसार अग्निकुण्ड के चार राजपूत वंश-प्रतिहार, परमार, चौहान तथा सोलंकी—गुर्जर नामक विदेशी जाति से उत्पन्न हुए थे। चौहान तथा गुहिलोत जैसे कुछ वंश विदेशी जातियों के पुरोहित थे। भण्डारकर की दृष्टि में गुर्जर प्रतिहार वंश के लोग निश्चयतः 'खजर' नामक जाति की सन्तान थे, जो हूणों के साथ भारत में आई थीं। पुराणों में हैहय नामक राजपूत जाति का उल्लेख शक, यवन आदि विदेशी जातियों के साथ किया गया है। इससे भी राजपूतों का विदेशी होना सिद्ध होता है।
   (iii) प्रसिद्ध इतिहासकर स्मिथ की दृष्टि में शक, कुषाण आदि विदेशी जातियों ने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। वे कालान्तर में भारतीय समाज में पूर्णतया घुल-मिल गईं। उन्होंने यहाँ की संस्कृति को अपना लिया। **स्मिथ** की मान्यता के अनुसार उत्तर-पश्चिम की राजपूत जातियाँ—प्रतिहार, चौहान, परमार, चालुक्य आदि की उत्पत्ति शकों और हूणों से हुई। इसी प्रकार गहड़वाल, चन्देल, राष्ट्रकूट आदि मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्र की जातियाँ गोंड, भर जैसी देशी आदिम जातियों की सन्तान थीं।
   (iv) **विलियम क्रुक** के अनुसार तत्कालीन समाज कई विदेशी जातियों से युक्त का ब्राह्मण बौद्ध आदि नास्तिक सम्प्रदायों से द्वेष रखते थे। अतः उन्होंने कुछ विदेशी जातियों को शुद्धि-संस्कार द्वारा पवित्र करके भारतीय वर्ण व्यवस्था में सम्मिलित करा दिया। कालान्तर में इन्हीं को 'राजपूत' कहा जाने लगा।
   (v) 'पृथ्वीराजरासो' में अग्निकुण्ड द्वारा राजपूतों की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। इस कथा के अनुसार जब परशुराम ने क्षत्रियों का विनाश कर दिया तो शासकों का अभाव हो गया। म्लेच्छों और राक्षसों के अत्याचार बढ़ गए। पृथ्वी त्रस्त हो उठी। अतः पृथ्वी के त्रास का हरण करने के लिए वशिष्ठ ने आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया जहाँ यज्ञ के अग्निकुण्ड से चार राजपूत कुलों—परमार, प्रतिहार, चौहान तथा चालुक्य का उद्भव हुआ। इस कथा से यह

TOUCH 'n PASS

स्पष्ट संकेत मिलता है कि भारतीय वर्णव्यवस्थाकारों ने विदेशी जातियों को शुद्धि द्वारा भारतीय वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत स्थान प्रदान किया।

2. **भारतीय उत्पत्ति का मत**—कुछ विद्वानों ने राजपूतों के सम्बन्ध में विदेशी उत्पत्ति के मत का विरोध **किया, जिनमें गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा व सी०वी० वैद्य** जैसे विद्वान् सम्मिलित हैं। इनकी दृष्टि में राजपूत विशुद्ध भारतीय क्षत्रियों की ही सन्तान थे। इन्होंने विदेशी उत्पत्ति के मत का निम्न प्रकार खण्डन किया—
   (i) **पृथ्वीराजरासो** में वर्णित अग्निकुण्ड की कथा ऐतिहासिक नहीं प्रतीत होती। इस कथा का उल्लेख रासो की प्राचीन पाण्डुलिपियों में नहीं मिलता है।
   (ii) **टाड** ने राजपूत व सीथियन जातियों में जिन समान प्रथाओं का उल्लेख किया है वह कल्पना पर आधारित है। ये सभी प्रथाएँ भारत की प्राचीन क्षत्रिय जाति में देखी जा सकती हैं।
   (iii) **क्रुक** के मत की पुष्टि किसी भी ऐतिहासिक साक्ष्य से नहीं होती है। उनका विचार केवल कल्पना की उपज है।
   (iv) इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि 'खजर' नामक किसी जाति ने भारत के ऊपर आक्रमण किया हो। भारतीय अथवा विदेशी किसी भी साक्ष्य में इस जाति का उल्लेख नहीं मिलता है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग 'राजन्य' या रक्षक के रूप में हुआ है। महाभारत में विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने वाले को 'राजपूत' कहा गया है। आठवीं शताब्दी के लेखक **भवभूति** ने कौशल्या को 'राजपुत्री' कहा है। उत्तरमध्यकालीन साहित्य में भी 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग क्षत्रिय जाति के लिए ही किया गया है। कल्हण की राजतरंगिणी में शाही परिवारों के उत्तराधिकारी को 'राजपुत्र' की संज्ञा प्रदान की गई है। इस प्रकार वास्तविक रूप में विदेशी उत्पत्ति का मत कल्पना पर अधिक आधारित है। राजपूत शब्द वस्तुतः 'राजपुत्र' का ही अपभ्रंश है जिसका प्रयोग भारतीय ग्रन्थों में क्षत्रिय जाति के लिए हुआ है।

प्र.10. गुर्जर-प्रतिहार वंश का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of Gurjara-Pratihara dynasty.

उत्तर

गुर्जर-प्रतिहार वंश
(The Gurjar-Pratihara Dynasty)

प्रतिहार वंश भी राजपूतों की एक शाखा थी। इस वंश ने प्रारम्भ में उज्जैन तथा बाद में कन्नौज में शासन किया था। यह वंश गुर्जरों से सम्बन्धित होने के कारण गुर्जर-प्रतिहार वंश भी कहलाता है। इस वंश के इतिहास के प्रामाणिक साधन इससे सम्बद्ध बहुसंख्यक अभिलेख हैं। इन अभिलेखों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख है। यह प्रतिहार वंश के शासकों की राजनीतिक उपलब्धियों और उनकी वंशावली को ज्ञात करने का प्रमुख स्रोत है। प्रतिहार वंश को जानने के महत्त्वपूर्ण साधन निम्नलिखित हैं—

1. **समकालीन लेख**—पाल तथा राष्ट्रकूटवंशों के लेखों से प्रतिहार शासकों का उनके साथ सम्बन्धों का बोध होता है। उनके सामन्तों के लेख भी मिलते हैं जो उनके साम्राज्य विस्तार तथा शासन-सम्बन्धी घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं।
2. **साहित्यिक कृतियाँ**—गुर्जर-प्रतिहार काल की साहित्यिक कृतियों के अध्ययन करने से भी तत्कालीन राजनीति तथा संस्कृति का ज्ञान होता है। जयानक कवि द्वारा रचित 'पृथ्वीराजविजय' से पता चलता है कि चाहमान शासक दुर्लभराज प्रतिहार वत्सराज का सामन्त था तथा उसकी ओर से पालों के विरुद्ध संघर्ष किया था। संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् राजशेखर प्रतिहार राजाओं-महेन्द्रपाल प्रथम व उसके पुत्र महीपाल प्रथम के दरबार में रहा था। उसने काव्यमीमांसा, कर्पूरमन्जरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण, भुवनकोश आदि ग्रन्थों की रचना की थी। इनके अध्ययन से तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का बोध होता है। जैन लेखक **चन्द्रप्रभसूरि** के ग्रन्थ 'प्रभावकप्रशस्ति' से नागभट्ट द्वितीय के विषय में कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। कश्मीरी कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' से मिहिरभोज की उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त होता है।
3. **विदेशी लेखकों का विवरण**—लेखक **अलमसूदी** दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंजाब आया था। उसके विवरण से महीपाल प्रथम के विषय में कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। अरब लेखकों के विवरण भी प्रतिहार वंश के इतिहास की

जानकारी प्रदान करते हैं। इनमें सुलेमान का विवरण उल्लेखनीय है। वह मिहिरभोज की शक्ति एवं उसके राज्य की समृद्धि की प्रशंसा करता है।

गुर्जर-प्रतिहारों की उत्पत्ति (Origin of Gurjar-Pratiharas)

गुर्जर-प्रतिहारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं। राजपूतों की उत्पत्ति के विदेशी मत के समर्थन में विद्वानों ने उसे 'खजर' नामक जाति की सन्तान कहा है जो हूणों के साथ भारत में आई थी। इस मत का समर्थन सबसे पहले **कैम्पबेल** तथा **जैक्सन** ने किया और बाद में **भण्डारकर** तथा **त्रिपाठी** आदि भारतीय विद्वानों ने भी इस मत को माना, किन्तु यह मत केवल कल्पना पर आधारित है, क्योंकि विदेशी आक्रमणकारियों में खजर नामक किसी भी जाति के विषय में हमें भारतीय अथवा विदेशी साक्ष्य से कोई भी सूचना नहीं मिलती।

के०एम०मुंशी० के अनुसार प्राचीन भारत में गुजरात तथा राजस्थान के कुछ भागों को मिलाकर 'गुर्जर देश' कहते थे तथा यहाँ के निवासी गुर्जर कहलाते थे। अत: ये भारतीय ही थे, विदेशी नहीं। **सी०वी० वैद्य, जी०एस० ओझा**, डा० सी० गांगुली तथा दशरथ शर्मा जैसे विद्वान् प्रतिहारों को भारतीय मानते हैं। साहित्य अथवा इतिहास में कहीं भी उन्हें विदेशियों से नहीं जोड़ा गया है। उनके लेखों से जो संकेत मिलते हैं उनके आधार पर हम उन्हें ब्राह्मण मूल का स्वीकार कर सकते हैं जिन्होंने कालान्तर में क्षात्र-धर्म ग्रहण कर लिया था।

प्रमुख शासक (Prominent Rulers)

प्रतिहारों ने आठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक शासन किया। इस वंश के प्रमुख शासक निम्नलिखित हैं—

1. **नागभट्ट प्रथम**—उज्जैन की गुर्जर-प्रतिहार शाखा का संस्थापक नागभट्ट प्रथम (730-756 ई०) था। वह एक पराक्रमी शासक था। ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि उसने एक शक्तिशाली म्लेच्छ शासक की विशाल सेना को नष्ट कर दिया। यह म्लेच्छ सम्भवत: सिन्ध का अरब शासक था। इस प्रकार नागभट्ट ने अरबों के आक्रमण से पश्चिमी भारत की रक्षा की तथा उनके द्वारा रौंदे हुए अनेक प्रदेशों को पुन: जीत लिया।
2. **वत्सराज**—वत्सराज (775-800 ई०) देवराज का उत्तराधिकारी था। यह एक शक्तिशाली शासक था। इसे प्रतिहार साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जा सकता है। उसने कन्नौज पर आक्रमण कर वहाँ के शासक इन्द्रायुध को हराया तथा उसे अपने अधीन कर लिया। ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि उसने प्रसिद्ध भण्डीवंश को पराजित कर उसका राज्य अपने अधीन कर लिया।
3. **नागभट्ट द्वितीय**—वत्सरज के पश्चात् उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (800-833 ई०) शासक बना। ग्वालियर लेख में उसकी उपलब्धियों का वर्णन मिलता है। उसके अनुसार उसने कन्नौज पर आक्रमण कर चक्रायुध को वहाँ से भगा दिया तथा कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। नागभट्ट ने आन्ध्र, सिन्ध, विदर्भ और कलिंग को भी जीता। मुंगेर के समीप एक युद्ध में उसने धर्मपाल के नेतृत्व में पालसेना को भी पराजित कर दिया। इस प्रकार वह उत्तरी भारत का शक्तिशाली शासक बन बैठा।
4. **मिहिरभोज प्रथम**—मिहिरभोज प्रथम (836-885 ई०) प्रतिहार वंश का सर्वाधिक प्रतापी शासक था। उसने मध्य भारत तथा राजपूताना में पुन: अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। उसने कलचुरिचेदि तथा गुहिलोत वंशों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। इन वंशों के राजाओं ने उसके अभियानों में सहायता दी, परन्तु भोज को अपने समय की दो प्रबल शक्तियों—पालनरेश देवपाल व राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव-से पराजित होना पड़ा। इस प्रकार थोड़े समय के लिए, उसके सफलताओं के मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो गए। परन्तु देवपाल की मृत्यु तथा राष्ट्रकूटों की आन्तरिक उलझन ने उसे पुन: अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए सुनहरा अवसर प्रदान कर दिया।

   अरब यात्री सुलेमान भोज के शासनकाल का वर्णन करते हुए कहता है कि इस राजा के पास अत्यधिक सैनिक शक्ति एवं सम्पत्ति थी। वह मुसलमानों का घोर शत्रु था। सुलेमान के विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि भोज ने पश्चिम में अरबों के प्रसार को रोक दिया था। अपने इस वीर कृत्य द्वारा उसने भारत-भूमि की महान् सेवा की थी।
5. **महेन्द्रपाल प्रथम**—महेन्द्रपाल प्रथम मिहिर मोज का पुत्र उत्तराधिकारी था। उसने अपने पिता की मृत्यु के बाद (885 से 910 ई०) तक शासन किया। उससे सम्बन्धित दक्षिणी बिहार तथा बंगाल से प्राप्त लेखों से स्पष्ट है कि महेन्द्रपाल ने

अपने समकालीन पालशासक को पराजित कर उत्तरी बंगाल को जीत लिया था। काठियावाड़, पूर्वी पंजाब, झाँसी तथा अवध से भी उसके लेख प्राप्त होते हैं जिनसे उसके साम्राज्य-विस्तार की सूचना प्राप्त होती है। मालवा का परमार शासक वाक्पति भी सम्भवत: उसकी अधीनता स्वीकार करता था। काठियावाड़ के चालुक्य शासक भी उसके सामन्त थे जैसा कि ऊणा लेख से ध्वनित होता है। इस प्रकार महेन्द्रपाल ने एक अत्यन्त विस्तृत साम्राज्य पर शासन किया। उसने जीवनपर्यन्त अपने शत्रुओं को दबाकर रखा। 912 ई० से 944 ई० तक शासन किया।

6. **महीपाल**—महेन्द्रपाल प्रथम लेकिन महेन्द्र पाल प्रथम के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में मतभेद हैं। महेन्द्रपाल प्रथम की दो पत्नियाँ थीं जिनसे दो पुत्र—भोज द्वितीय और महीपाल थे। महेन्द्रपाल के बाद सम्भवत: कुछ समय के लिए भोज द्वितीय ने शासन किया, लेकिन शीघ्र ही उसका सौतेला भाई महीपाल शासक बना। उसका शासनकाल शान्ति एवं समृद्धि का काल रहा। उसने अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा तथा उसका कुछ विस्तार भी किया।
7. **महेन्द्रपाल द्वितीय**—महीपाल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। इसने 945-46 ई० तक शासन किया। इसके बाद 960 ई० तक प्रतिहार वंश में चार शासक हुए—देवपाल (948-49 ई०), विनायकपाल द्वितीय (953-54 ई०), महीपाल द्वितीय (955 ई०) और विजयपाल (960 ई०)। इन शासकों के समय में प्रतिहार-साम्राज्य की निरन्तर अवनति होती गई। विजयपाल के समय तक आते-आते प्रतिहार साम्राज्य कई भागों में बँट गया तथा प्रत्येक भाग में स्वतन्त्र राजवंश शासन करने लगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तर भारत के इतिहास में प्रतिहारों के शासन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। हर्ष वर्धन की मृत्यु के बाद प्रतिहारों ने प्रथम बार उत्तरी भारत में एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की तथा लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक वे इस साम्राज्य के संरक्षक बने रहे। उन्होंने अरब आक्रमणकारियों से सफलतापूर्वक देश की रक्षा की।

प्र.11. प्रतिहार नरेश वत्सराज के राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए। (2021)
Describe the main events of the reign of Pratihara king Vatsaraja.

उत्तर देवराज की मृत्यु के बाद उसका पुत्र वत्सराज सिंहासन पर बैठा था। इसने सम्भवत: 783 ई. से 795 ई. तक शासन किया था। यह अपने समय का शक्तिशाली राजा सिद्ध हुआ था। अपने अनेक युद्धों के परिणामस्वरूप इसने अपने वंश को अभूतपूर्व गौरव प्रदन किया था। इसने अपने पराक्रम से गौड़ व बंगाल के पाल शासकों को पराजित किया था।

पाल शासकों से युद्ध—जिस समय प्रतिहार वंश उत्तरी भारत में अपनी सार्वभौमता की नींव रख रहा था, उस समय बंगाल के पाल वंश के शासक भी चक्रवृत्ति बनने के सपने देख रहे थे। इन दोनों साम्राज्यवादी वंशों के बीच कान्यकुब्ज का निर्बल आयुध वंश था। प्रतिहार व पाल दोनों इस वंश को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेना चाहते थे। त्रिकोणात्मक संघर्ष की शुरुआत गुर्जर-प्रतिहार नरेश वत्सराज ने की थी। वत्सराज ने पाल नरेश धर्मपाल को पराजित किया था। इसने कन्नौज के शासक इन्द्रायुध को पराजित कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। इसलिए वत्सराज को प्रतिहार वंश का वास्तविक संस्थापक कहा जाता है।

मध्य राजपुताना पर अधिकार—ग्वालियर अभिलेख के अनुसार वत्सराज ने भंडी जाति को पराजित करके उसका राज्य छीन लिया था। यह नीति अपनी शक्तिशाली गजसेना के कारण दुर्जेय समझी जाती है। भंडी जाति का समीकरण भट्टी जाति से किया जाना चाहिए। इस जाति का उल्लेख जोधपुर अभिलेख में हुआ है। यह मध्य राजपुताना के मध्य में रहती थी। अत: उसे पराजित करके वत्सराज ने उस स्थान पर अपना अधिकार कर लिया था।

राष्ट्रकूटों के युद्ध—इस समय दक्षिणी भारत के एक बड़े भूखंड पर राष्ट्रकूट वंश का शासन था। इसका समकालीन राष्ट्रकूट राजा ध्रुव बड़ा महत्त्वकांक्षी था। इसने अवन्ती नरेश वत्सराज पर आक्रमण किया था। राधनपुन व वनी-डिंडोरी अभिलेखों से पता चलता है की इस युद्ध में वत्सराज की पराज्य हुई व उसे मरुस्थल में शरण लेनी पड़ी थी। इसके साथ ही ध्रुव ने पाल नरेश धर्मपाल पर आक्रमण किया तथा उसे भी पराजित कर दिया था।

संजन व सूरत अभिलेखों का कथन है कि यह युद्ध गंगा व यमुना के दोआब में हुआ था व इस युद्ध में ध्रुव की विजय हुई थी, यही तथ्य बड़ौदा अभिलेख से भी प्रकट होता है। इस विजय के उपलक्ष्य में राष्ट्रकूट शासक ध्रुव ने राष्ट्रकूट कुलचिंह में गंगा व यमुना के चिन्हों को शामिल किया था। ध्रुव के चले जाने की बाद धर्मपाल ने इन्द्रायुद्ध को हटाकर उसके स्थान पर चक्रायुद्ध को कन्नौज का शासक बनाया था।

वत्सराज की रानी सुन्दरदेवी से नागभट्ट द्वितीय का जन्म हुआ था। इसे भी "नागवलोक" कहते हैं। यह एक महत्त्वकांक्षी शासक सिद्ध हुआ था।

प्र.12. चालुक्य वंश की उत्पत्ति एवं इस वंश के प्रमुख शासकों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of the origin of Chalukya dynasty and its main rulers.

उत्तर

चालुक्य वंश
(Chalukya Dynasty)

चालुक्य वंश की राजधानी अन्हिलवाड़ थी। इस वंश के राजपूतों ने गुजरात में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक शासन किया। इस वंश की उत्पत्ति एवं इनको जानने के साधन के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण दिए गए हैं—

1. **उत्पत्ति**—चालुक्यों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। वाडनगर के लेख में इस वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के कमण्डलु से बताई गई है।
2. **स्रोत**—(i) चालुक्य वंश का इतिहास मुख्यत: जैन लेखकों के ग्रन्थों से ज्ञात होता है। ये लेखक चालुक्य शासकों की राजसभा में निवास करते थे। इन ग्रन्थों में हेमचन्द्र का 'द्वाश्रयकाव्य', मेरूतुंगकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि', सोमेश्वरकृत 'कीर्तिकौमुदी', जयसिंहसूरि का 'कुमारभूपालचरित' आदि महत्त्वपूर्ण हैं इनके अध्ययन से हमें इस वंश के शासकों की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों का विवरण प्राप्त हो जाता है।
   (ii) भारतीय साहित्य के साथ-साथ मुसलमान लेखकों; जैसे—अलगर्दीजी, इब्न-उल-अतहर, हसन निजामी आदि के विवरणों से तुर्कों तथा चालुक्यों के संघर्ष का विवरण प्राप्त होता है।
3. **लेख**—चालुक्य राजाओं के लेखों में सबसे महत्त्वपूर्ण लेख कुमारपाल की वाडनगर प्रशस्ति (971 ई०) है। इसकी रचना श्रीपाल ने की थी। इसके अतिरिक्त तलवाड़ा उदयपुर (भिलसा), कादि आदि के लेखों से जयसिंह, कुमारपाल, भीम द्वितीय आदि चालुक्य शासकों की उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है।

प्रमुख शासक (Prominent Rulers)

चालुक्य वंश के प्रमुख शासक निम्नलिखित हैं—

1. **मूलराज प्रथम**—चालुक्य वंश की गुजरात शाखा का संस्थापक मूलराज प्रथम था। इसने 941 से 995 ई० तक शासन किया था। कादि लेख से पता चलता है कि उसने सारस्वत मण्डल को अपने बाहुबल से जीता था। हेमचन्द के द्वाश्रयकाव्य से पता चलता है कि मूलराज ने सुराष्ट्र तथा कच्छ को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था।
2. **चामुण्डराज**—चामुण्डराज मूलराज प्रथम का पुत्र था। यह इस वंश का बहुत दुर्बल शासक था। चामुण्डराज 945 ई० में शासक बना। उसने धारा के परमार शासक सिन्धुराज के विरुद्ध सफलता प्राप्त की, परन्तु कलचुरि नरेश कोक्कल द्वितीय ने उसे पराजित कर दिया। चामुण्डराज के दो पुत्र थे-बल्लभराज तथा दुर्लभराज। बल्लभराज की मृत्यु अपने पिता के काल में ही हो गई। अत: चामुण्डराज के बाद दुर्लभराज शासक बना। उसने लाट प्रदेश पर विजय प्राप्त की। इस समय लाट प्रदेश का शासक कीर्तिपाल था। वाडनगर लेख तथा जयसिंहसूरि के ग्रन्थ 'कुमारपालभूपालचरित' इस विजय की सूचना प्रदान करते हैं।
3. **भीमदेव प्रथम**—भीमदेव प्रथम चालुक्य वंश का सबसे शक्तिशाली राजा था। यह एक कुशल सेनापति ही नहीं वरन् महान निर्माता भी था। इसने धारा के परमार नरेश भोज के विरुद्ध कलचुरि नरेश कर्ण के साथ मिलकर एक संघ तैयार किया। इस संघ ने मालवा के ऊपर आक्रमण कर धारा नगर को लूटा। इसी बीच परमार भोज की मृत्यु हो गई, जिससे भीम तथा कर्ण के परस्पर सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे। इसका मुख्य कारण धारा से लूटी गई सम्पत्ति का बँटवारा था। जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि भीम ने कर्ण को भी पराजित किया था। हेमचन्द के अनुसार भीमदेव ने सिन्ध के राजा हम्मुक को पराजित कर उसे अपने अधीन कर लिया। आबू पर्वत का क्षेत्र मूलराज के समय चालुक्यों के नियन्त्रण में था, किन्तु बाद में वहाँ के शासक धन्धुक ने भीम की सत्ता को चुनौती दी। परिणामस्वरूप भीमदेव ने वहाँ आक्रमण कर पुन: अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया।

भीमदेव प्रथम के शासनकाल में ही महमूद गजनवी ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया एवं सोमनाथ का मन्दिर लूटा, किन्तु भीमदेव ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ उससे अपनी रक्षा की। इसका उसके शासन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। महमूद गजनवी के सोमनाथ मन्दिर को ध्वस्त करके चले जाने के बाद भीमदेव ने मन्दिर का पुन: निर्माण करवाया। उसने 1064 ई० तक शासन किया।

4. **जयसिंह सिद्धराज**—जयसिंह सिद्धराज चालुक्य वंश का एवं महाप्रतापी शासक था। इसके 1094 से 1143 ई० तक कुशलता पूर्वक शासन किया। इसने धारा के परमार शासक यशोवर्धन को युद्ध में पराजित कर उसे बन्दी बना लिया। इस विजय से उसका परमार राज्य के बड़े भाग पर अधिकार हो गया। यशोवर्मन् को कुछ समय के लिए उसकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उज्जैन लेख से पता चलता है कि जयसिंह ने अपनी ओर से महादेव नामक ब्राह्मण को मालवा का शासक बनाया। जयसिंह ने अपने समकालीन शाकम्भरी के चौहान तथा बुन्देलखण्ड के चन्देल शासकों के विरुद्ध युद्ध में भी सफलता प्राप्त की। चौहान शासक अर्णोराज को पहले तो उसने युद्ध में पराजित किया किन्तु बाद में उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर मित्रता स्थापित कर ली। जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि उसके द्वारा पराजित चन्देल शासक मदनवर्मा था। जयसिंह ने सिन्ध की भी विजय की थी।
5. **कुमारपाल**—जयसिंह सिद्धराज का कोई पुत्र नहीं था। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुमारपाल शासक बना। यह 50 वर्ष की आयु में शासक बना था। यह एक महत्त्वाकांक्षी शासक था। इसने शाकम्भरी के चौहान शासक अर्णोराज को युद्ध में परास्त किया। अर्णोराज ने अपनी पुत्री जल्हणादेवी का उसके साथ विवाह कर मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया, तत्पश्चात् उसका विग्रहराज चतुर्थ के साथ भी संघर्ष हुआ। विग्रहराज ने उसके द्वारा विजित कुछ प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया, लेकिन बाद में दोनों के बीच सन्धि हो गई। जैन ग्रन्थों के अनुसार कुमारपाल ने मालवा के शासक बल्लाल के ऊपर आक्रमण कर उसे मार डाला तथा कोंकण के शिलाहारवंशी शासक मल्लिकार्जुन को युद्ध में जीता। आबू पर्वत तथा विराट के परमारों के विद्रोह को दबाकर उन्हें अपने नियन्त्रण में रखा। इस प्रकार कुमारपाल अपने युग का एक महान शक्तिशाली राजा सिद्ध हुआ।
6. **भीमदेव द्वितीय**—मूलराज के दो वर्षीय शासन के पश्चात् भीमदेव द्वितीय शासक बना। इसने सन् 1278 से 1241 ई० तक शासन किया। यह भी चालुक्यवंश का महत्त्वपूर्ण शासक था। 1178 ई० में उसके राज्य पर मुसलमानों के आक्रमण हुए जिनका भीमदेव ने सफलतापूर्वक सामना किया। 1195 ई० में उसने कुतुबुद्दीन को हराकर उसे अजमेर तक खदेड़ दिया, लेकिन दूसरे वर्ष (1197 ई०) वह पराजित हुआ। मुसलमानों ने उसकी राजधानी अन्हिलवाड़ को लूटा तथा उसपर अधिकार किया, किन्तु मुसलमानों का अधिकार अधिक समय तक न रहा तथा 1201 ई० तकं भीमदेव ने पुन: अपना राज्य प्राप्त कर लिया। उसकी उलझनों का लाभ उठाकर उसके राज्य पर परमारों तथा यादवों ने भी धावा बोला। यद्यपि भीमदेव के वीर सामन्त लवणप्रसाद ने आक्रमणकारियों को शीघ्र ही पीछे धकेल दिया, किन्तु फिर भी उसकी आन्तरिक स्थिति निर्बल पड़ गयी, जिससे अधीनस्थ सामन्तों को स्वाधीन होने का सुनहरा अवसर मिल गया। भीमदेव द्वितीय गुजरात के चालुक्य (सोलंकी) राजपूतों का अन्तिम शासक था। इसके पश्चात् उसके एक मन्त्री लवणप्रसाद ने गुजरात में बघेलवंश की स्थापना की।

इस प्रकार चालुक्य वंश का भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्र.13. परमार वंश का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of Paramara dynasty.

उत्तर

परमार-वंश
(Parmar Dynasty)

1. **उत्पत्ति**—परमारों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। इस विषय में विभिन्न इतिहासकारों ने निम्नलिखित मत प्रतिपादित किये हैं—
   (i) **अग्निकुण्ड का सिद्धान्त**—जो विद्वान राजपूतों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से मानते हैं वे परमारों को अग्निवंशीय ही मानते हैं।

(ii) **राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति**—डॉ० डी०सी० गांगुली सीअक द्वितीय के हर्सोल अभिलेख के आधार पर परमारों को राष्ट्रकूट मानते हैं।

(iii) **परमार ब्रह्मक्षत्रकुलीन थे**—हलायुध की 'पिंगल सूत्रवृत्ति' से परमारों की उत्पत्ति के विषय पर प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ के अनुसार परमार ब्रह्मक्षत्रकुलीन थे अर्थात् उनके मूल पूर्वज ब्राह्मण थे किन्तु बाद में किन्हीं कारणोंवश उन्होंने क्षत्रिय कर्तव्य अपना लिया। **डॉ० विशुद्धानन्द पाठक** के अनुसार, "क्षत्र के प्रतीक विश्वामित्र से लड़ने के लिए ब्रह्मा के प्रतीक वशिष्ठ की परमार रूपी जो शक्ति तैयार हुई वही ब्रह्मक्षत्र थी जो आगे चलकर राजत्व ग्रहण कर क्षत्रिय बन गयी। परमार अपने गोत्रोच्चार में स्वयं को वशिष्ठगोत्री मानते हैं जो वशिष्ठ से उनके मूल सम्बन्धों का द्योतक है। अत: परमारों को मूलत: वशिष्ठ ब्राह्मण और बाद में वशिष्ठगोत्री क्षत्रिय स्वीकार करना चाहिए।" किन्तु जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है अधिकांश विद्वान राजपूतों को वैदिककालीन क्षत्रियों की ही सन्तात मानते हैं, अत: परमारों की उत्पत्ति भी उन्हीं से मानी जानी चाहिए।

2. **मूल-स्थान**—प्रारम्भ में परमार-वंश अवन्ति में शासन करता था किन्तु बाद में अन्हिलवाड़ के चालुक्यों से बचने के लिए उन्होंने नवीन राजधानी धारा बनायी।

3. **परमार-वंशीय शासक—उपेन्द्रराज** (790-817 ई०)—उपेन्द्रराज परमार-वंश का संस्थापक था। **डॉ० गांगुली** के अनुसार वह राष्ट्रकूटों का सामन्त था, क्योंकि प्रतिहार-वंश के अनेक अभिलेखों से यह प्रमाणित होता है कि मालवा प्रतिहारों के अधीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि उपेन्द्रराज ने कुछ समय पश्चात् अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी।

परमार-वंश (817-972 ई०)—उपेन्द्रराज के पश्चात् परमार-वंश में मुंज से पूर्व कोई शक्तिशाली शासक न हुआ। उपेन्द्रराज के पश्चात् क्रमश: वैरिसिंह प्रथम (817 ई०-842 ई०), सीअक प्रथम (844 ई०-893 ई०), वाक्पति प्रथम (894 ई0-920 ई०), वैरिसिंह द्वितीय (921 ई०-945 ई०) व सीअक द्वितीय (945 ई०-972 ई०) ने राज्य किया, किन्तु इनमें से कोई भी विशेष शक्तिशाली सम्राट प्रमाणित न हुआ।

वाक्पति द्वितीय अथवा मुंजराज (973-996 ई०)—सीअक द्वितीय का पुत्र एवं उत्तराधिकारी वाक्पति द्वितीय था, जिसे **मुंज** अथवा **उत्पल** भी कहा जाता है। मुंज परमार-वंश का प्रथम शक्तिशाली सम्राट था। **मेरुतुंग** के अनुसार सीअक द्वितीय ने मुंज को घास (मुंज नामक घास पर) पड़ा हुआ पाया था (इसी कारण उसका नाम मुंज पड़ा)। अर्थात् वह उसका वास्तविक पुत्र न था। तब तक सीअक द्वितीय के अपना कोई पुत्र न था, परन्तु बाद में उसे पुत्र प्राप्ति हो गयी थी। सीअक को मुंज से तब तक इतना स्नेह हो चुका था कि उसने अपना उत्तराधिकारी मुंज को ही घोषित किया तथा यह भी निश्चित किया कि मुंज के पश्चात् सीअक का वास्तविक पुत्र सिन्धुराज शासक बनेगा।? मेरुतुंग का यह वर्णन कितना प्रामाणिक है यह कहना कठिन है।

(i) **मुंज के सैनिक अभियान**—मुंज एक शक्तिशाली शासक था। उसने अनेक सैनिक अभियानों के द्वारा अपने साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयत्न किया।

(a) **गुहिलों से युद्ध**—मुंज ने सर्वप्रथम गुहिल नरेश शक्तिकुमार पर आक्रमण किया तथा मेवाड़ की राजधानी अघाट को लूटा। इस युद्ध में शक्तिकुमार की सहायता किसी गुर्जर शासक ने की थी। यह गुर्जर शासक कौन था, इस विषय में मतभेद है। **डॉ० दशरथ शर्मा** के अनुसार यह चालुक्य शासक मूलराज था, किन्तु **डॉ० पाठक** उसे गुर्जर-प्रतिहार शासक विजयपाल मानते हैं।

(b) **चाहमानों से युद्ध**—गुहिल-विजय से उत्साहित हो मुंज ने नाड्डुल्य के चाहमान शासक बलिराज पर आक्रमण किया व आबू पर्वत तथा किरादू के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इसकी पुष्टि कौथेम अभिलेख से होती है।

(c) **चेदि-शासक से संघर्ष**—मुंज का समकालीन चेदि-शासक युवराज द्वितीय था, जो अत्यन्त दुर्बल नरेश था। उसकी दुर्बलता से लाभ उठाते हुए, मुंज ने चेदि साम्राज्य पर आक्रमण किया व उसे परास्त कर राजधानी त्रिपुरी पर अधिकार कर लिया। इसकी पुष्टि उदयपुर प्रशस्ति से होती है। **डॉ० मीराशी** के अनुसार कलचुरि राजधानी पर वाक्पति का कुछ समय के लिए अधिकार रहा, बाद में सन्धि हो जाने पर वाक्पति ने चेदि नरेश को उसका साम्राज्य लौटा दिया।

(d) **हूणों से युद्ध**—मुंज ने हूणों से भी युद्ध किया व उन्हें परास्त किया। मुंज की हूणों पर विजय की पुष्टि कौथेम अभिलेख से होती है।

(e) **अन्हिलवाड़ के चालुक्यों से युद्ध**—बीजापुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि मुंज ने चालुक्य शासक मूलराज को परास्त किया। इसकी पुष्टि मुंज के दरबारी कवि पद्मगुप्त के वर्णन से भी होती है।

(f) **चोल एवं केरलों पर विजय**—उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार, "लाट, कर्णाट, चोल एवं केरल के राजे वाक्पति के पदकमल अपने शिरोरत्नों से सुशोभित करते थे।" इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मुंज ने चोल एवं केरलों पर विजय प्राप्त की थी, किन्तु **ब्यूहलर** के अनुसार, "यह समझना कठिन है कि वह (मुंज) उनके (चोल, केरल) सम्पर्क में किस प्रकार आये होंगे, जिनके देश मालवा से बहुत दूर स्थित थे।"

(g) **कर्णाट के चालुक्यों से युद्ध**—मुंज का समकालीन चालुक्य शासक तैलप द्वितीय था। मेरुतुंग ने 'मुंज प्रबन्ध' में इस युद्ध का विस्तृत विवरण किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार मुंज ने छह बार तैलप द्वितीय को परास्त किया। अत: सातवीं बार मुंज ने उसे पूर्णत: पराजित करने के उद्देश्य से, अपने मन्त्री रुद्रादित्य के परामर्श के विरुद्ध, तैलप पर आक्रमण किया। मुंज ने गोदावरी पार करके तैलप द्वितीय के राज्य में प्रवेश किया, जहाँ घमासान युद्ध के पश्चात् तैलप की छलपूर्ण नीति के कारण वह परास्त हुआ और बन्दी बना लिया गया। कारागार में तैलप की बहिन मृणालवती से उसे प्रेम हो गया। इसी मध्य मुंज के मन्त्रियों ने उसे मुक्त कराने की योजना बनाई, जिसे मुंज ने मृणालवती को बता दिया। मृणालवती ने मुंज के साथ विश्वासघात किया, परिणामस्वरूप शोचनीय स्थिति में उसे मौत के घाट उतार दिया गया।

डॉ० गांगुली के अनुसार, "इस प्रकार एक महान् शासक का दु:खद अन्त हुआ, जो एक महान् सेनानायक और महान कवि ही नहीं, अपितु कला और साहित्य का एक महान संरक्षक भी था।??

(ii) **सांस्कृतिक उपलब्धियाँ**—मुंज एक कुशल सेनानायक के अतिरिक्त सांस्कृतिक कार्य-कलापों में रुचि रखने वाला शासक था। मुंज स्वयं भी विद्वान था तथा उसके राजदरबार में अनेक विद्वान रहते थे जिनमें पद्मगुप्त उल्लेखनीय है। मुंज ने अनेक तड़ागों का भी निर्माण कराया जिसमें धारा का 'मुंज सागर' प्रसिद्ध है।

सिन्धुराज (996-1010 ई०)—मुंज के पश्चात् उसका भाई सिन्धुराज राजगद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल की उल्लेखनीय घटना चालुक्य शासक सत्याग्रह (तैलप द्वितीय का पुत्र) को सिन्धुराज द्वारा परास्त किया जाना था।

भोज (1010-1055 ई०)—सिन्धुराज के पश्चात् उसका पुत्र भोज राजसिंहासन पर आसीन हुआ। भोज इस वंश का सबसे पराक्रमी एवं कीर्तिवान सम्राट था। उसने अपने कार्यों से परमार-वंश का तत्कालीन राजनीति में महत्व अत्यधिक बढ़ा दिया। **डॉ० डी०सी० गांगुली** के शब्दों में, "मुंज एवं सिन्धुराज के शासन काल में परमारों ने अपने साम्राज्य को संगठित किया तथा सिन्धुराज के पुत्र भोज के शासनकाल में इसे श्रेष्ठ श्रेणी प्राप्त हुई।" भोज के शासनकाल के आठ अभिलेख विभिन्न स्थानों, बांसवारा, बेतमा, उज्जैन, कल्वन, तिलकवाड़ा आदि स्थानों से प्राप्त होते हैं। साहित्य साक्ष्यों में गुजरात के जैन-ग्रन्थ, सुभाषितों, अलबरूनी व अबुलफजल के लेखों में उसके विषय में वर्णन मिलता है।

भोज की सैनिक विजयों के विषय में उदयुपर प्रशस्ति से प्रकाश पड़ता है।

(i) **कर्णाट के चालुक्यों से युद्ध**—भोज ने सर्वप्रथम कर्णाट के चालुक्यों से युद्ध किया । मेरुतुंग के अनुसार भोज ने तैलप को अपमानित करने के पश्चात् मौत के घाट उतार दिया व मुंज की हत्या का प्रतिशोध लिया। मेरुतुंग का उपर्युक्त वर्णन उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि तैलप भोज का समकालीन शासक नहीं था। तैलप की 997 ई० में मृत्यु हो गयी थी जबकि भोज 1010 ई० में राजा बना था। अत: सम्भवत: भोज ने कर्णाट प्रदेशों से होते हुए कोंकण पर विजय प्राप्त की होगी, जिससे गोदावरी के समीपवर्ती चालुक्य क्षेत्रों पर उसका अधिकार हो गया होगा। उस समय कल्याणी का शासक जयसिंह था, अत: भोज ने जयसिंह को ही परास्त किया होगा। कुछ वर्ष पश्चात् भोज पर जयसिंह के पुत्र एवं उत्तराधिकारी सोमेश्वर प्रथम ने आक्रमण किया। सोमेश्वर प्रथम ने 1044 ई० से 1067 ई० तक शासन किया था, अत: यह आक्रमण 1044 ई० व 1055 ई० के मध्य हुआ होगा। भोज की शक्ति इस समय

तक दुर्बल हो गयी थी, अत: उसे धारा से भागना पड़ा। सोमेश्वर ने धारा को लूटा व 'अभिमानी मालवेश को अपने ही नगर धारा में झुकना पड़ा।' सोमेश्वर के लौटने के पश्चात् भोज ने पुन: मालवा पर अधिकार कर लिया।

(ii) **लाट एवं कोंकण से युद्ध**—उदयपुर प्रशस्ति एवं कल्वन अभिलेख से ज्ञात होता है कि भोज ने लाट के शासक कीर्तिराज को परास्त किया।

तत्पश्चात् भोज ने कोंकण के शासक शीलाहार-वंशीय केशिदेव पर आक्रमण कर कोंकण पर अधिकार कर लिया। यह विजय उसे सम्भवत: 1020 ई० में प्राप्त हुई।

(iii) **इन्द्ररथ से युद्ध**—भोज ने उड़ीसा के सोमवंशी राजा इन्द्ररथ को परास्त किया। इस विजय का उल्लेख उदयपुर प्रशस्ति में किया गया है।

(iv) **तोग्गल विजय**—भोज को अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए सम्भवत: कभी युद्ध नहीं करना पड़ा था, परन्तु उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि भोज ने तोग्गल को परास्त किया था। **प्रतिपाल भाटिया** का विचार है कि तोग्गल महमूद गजनवी की सेना का कोई सिपहसालार था। इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है।

(v) **कलचुरियों से युद्ध**—भोज का समकालीन कलचुरि शासक गांगेयदेव था। उदयपुर प्रशस्ति व कल्वन से ज्ञात होता है कि भोज ने गांगेयदेव को परास्त किया था।

(vi) **चन्देल व कछवाहों से संघर्ष**—भोज का समकालीन चन्देल शासक अत्यन्त शक्तिशाली विद्याधर था। महोबा अभिलेख से ज्ञात होता है, "कलचुरियों के चन्द्रमा के साथ भोजदेव इस युद्ध विद्या के गुरु (विद्याधर) की शिष्य की भाँति पूजा करता था।" इससे विद्याधर द्वारा भोज का परास्त किया जाना प्रतीत होता है। इस विषय में **डॉ० विशुद्धानन्द पाठक** का विचार है कि विद्याधर व भोज के मध्य संघर्ष अप्रत्यक्ष रूप से हुआ, क्योंकि यदि विद्याधर ने भोज पर पूर्ण विजय प्राप्त की होती तो चन्देल अभिलेख इसका स्पष्ट वर्णन अवश्य करते। मालव राजकुमारों का एक असफल आक्रमण ग्वालियर पर हुआ था। सम्भवत: इसी समय विद्याधर ने अपने सामन्त कछवाहों को सहायता दी व भोज पर अप्रत्यक्ष विजय प्राप्त की होगी। विद्याधर की मृत्यु के पश्चात् कछवाहों ने भोज की प्रभुता स्वीकार कर ली थी।

(vii) **चाहमानों पर विजय**—भोज का समकालीन सपादलक्ष की चाहमान शाखा का शासक वीर्यराम था। भोज ने वीर्यराम पर विजय प्राप्त की।

(viii) **गुजरात के चालुक्यों से संघर्ष**—भोज का समकालीन चालुक्य शासक भीम था। दोनों ही अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहते थे, अत: भीम जब सिन्ध पर आक्रमण करने गया हुआ था तब भोज ने अपने सेनापति कुलचन्द्र को अन्हिलवाड़ पर आक्रमण करने भेजा। कुलचन्द्र ने भीम की अनुपस्थिति में उसकी राजधानी को लूटा। शीघ्र ही भीम ने भोज के विरुद्ध एक संघ तैयार किया जिसमें उसके अतिरिक्त चेदि-शासक लक्ष्मीकर्ण, चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम व लाट-नरेश त्रिलोचन सम्मिलित थे। इस संघ द्वारा मालवा पर आक्रमण किया गया। यद्यपि भोज ने सुरक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया किन्तु युद्धकाल के दौरान ही उसकी 1055 ई० में मृत्यु हो गयी।

(ix) **साम्राज्य-विस्तार**—भोज ने अपनी विजयों के द्वारा एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उदयपुर प्रशस्ति के अनुसार, "पृथु की तुलना करने वाले उस भोज ने कैलाश पर्वत से लेकर मलयगिरि तक, उदयाचल से अस्ताचल तक समस्त पृथ्वी का भोग किया तथा अपने धनुष-बाणों से पृथ्वी के सभी राजाओं को उखाड़ते हुए उन्हें विभिन्न दिशाओं में बिखेरकर पृथ्वी का परम प्रीतिदाता बना।" संक्षेप में, भोज का साम्राज्य पूरब में कलिंग, उत्तर व पूर्वोत्तर में सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश व बिहार के कुछ भाग, पश्चिम में लाट तथा उत्तर-पश्चिम में मेवाड़ व मारवाड़ के विस्तृत भू-भाग पर था।

प्र.14. चाहमान (चौहान) वंश का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of Chahamana (Chauhan) dynasty.

***अथवा* चाहमान (चौहान) वंश का विस्तृत वर्णन करते हुए तराइन के प्रथम एवं द्वितीय युद्ध की व्याख्या कीजिए।**

***Or* Giving a detailed description of Chahamana (Chauhan) dynasty, review the first and second battle of Tarain.**

उत्तर

चाहमान (चौहान) वंश—उत्पत्ति एवं प्रमुख युद्ध
(Chahaman Dynasty : Origin and Main Wars)

1. **उत्पत्ति**—चाहमानों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। चाहमानों से सम्बन्धित निम्नलिखित मत प्रचलित हैं—
   (i) **अग्निकुण्ड का सिद्धान्त**—पृथ्वीराजरासो के अनुसार चाहमानों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई।
   (ii) **विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त**—टॉड, क्रुक, भण्झरकर आदि चाहमानों को विदेशी मानते हैं।
   (iii) **भारतीय उत्पत्ति का सिद्धान्त**—अनेक विद्वान चाहमानों को वैदिककालीन क्षत्रियों से सम्बन्धित मानते हैं। ऐसे विद्वानों में गौरीशंकर ओझा व डॉ० दशरथ शर्मा आदि प्रमुख हैं।

   जैसा कि राजपूतों की उत्पत्ति वाले अध्याय में प्रमाणित किया जा चुका है कि राजपूत वैदिककालीन क्षत्रियों की ही सन्तान थे, अत: चाहमान-वंश को भी क्षत्रिय ही मानना चाहिए।
2. **मूल निवास-स्थान**—चाहमानों का मूल निवास-स्थान शाकम्भरी क्षेत्र था व उनकी राजधानी अहिछत्रपुर थी। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चाहमानों की अनेक शाखाएँ विकसित हुईं जो गुर्जर-प्रतिहारों के सामन्तों के रूप में राज्य करती थीं। इन शाखाओं में भृगुकच्छ, प्रतापगढ़ व धवलपुरी की शाखाएँ उल्लेखनीय हैं किन्तु सर्वाधिक शक्तिशाली शाकम्भरी के चाहमान थे।
3. **चाहमान-वंशीय शासक—वासुदेव** (551 ई०)—यह चाहमान-वंश का संस्थापक था व 551 ई० में राजगद्दी पर बैठा।

   सामन्तराज से अजयराज तक—वासुदेव के पश्चात् अजयराज के शासन-काल (1105-1130 ई०) तक यद्यपि चाहमान-वंश में अनेक शासकों ने शासन किया, किन्तु वे दुर्बल शासक थे अथवा प्रतिहारों के सामन्तों के रूप में शासन कर रहे थे।

   अर्णोराज (1130-1150 ई०)—अजयराज का पुत्र एवं उत्तराधिकारी अर्णोराज था जिसे अनलदेव, आनाक व आणा आदि भी कहा जाता है। अर्णोराज चाहमान-वंश का एक प्रतापी शासक था। उसने अनेक विजयों के द्वारा चाहमान-साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया।
   (i) **तुर्क-विजय**—अर्णोराज ने तुर्कों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया व उन पर विजय प्राप्त की। अजमेर-संग्रहालय से प्राप्त खण्डित चौहान प्रशस्ति के अनुसार, "मारे हुए तुर्कों के रक्त से लाल अजमेर की भूमि ने अपने स्वामी का विजयोत्सव मनाने के लिए मानों कुसुम्भरक्त (गहरा लाल) रंग के वस्त्र पहन लिए।"
   (ii) **परमार शासक पर विजय**—अर्णोराज का समकालीन मालवा का शासक नरवर्मा था। चाहमान प्रशस्ति से अर्णोराज की नरवर्मा पर विजय के विषय में ज्ञात होता है।
   (iii) **सिन्धु व सरस्वती का अभियान**—इस अभियान के अन्तर्गत अर्णोराज ने मद्र व वाहीक देश पर आक्रमण किया। **डॉ० दशरथ शर्मा** के अनुसार उसने सम्भवत: पूर्वी पंजाब के कुछ भागों पर अधिकार किया।
   (iv) **चालुक्यों से युद्ध**—अर्णोराज के समकालीन चालुक्य-शासक जयसिंह सिद्धराज तथा कुमारपाल थे। इन दोनों शासकों से क्रमश: अर्णोराज के युद्ध हुए, किन्तु दोनों ही बार उसे परास्त होना पड़ा।

   जगद्देव—अर्णोराज की हत्या उसके बड़े पुत्र जगदेव ने की व स्वयं शासक बना, किन्तु शीघ्र ही उसके छोटे भाई ने उसकी हत्या कर दी व स्वयं शासक बना।

   विग्रहराज चतुर्थ (1150-1164 ई०)—विग्रहराज चतुर्थ चाहमान-वंश का एक शक्तिशाली शासक था। उसके 11 अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनसे उसके विषय में जानकारी प्राप्त होती है।
   (i) **चालुक्य से संघर्ष**—विग्रहराज ने अपने पिता की चालुक्यों द्वारा पराजय का प्रतिशोध लेने का प्रयत्न किया। यह तो निश्चित रूप से कहना कठिन है कि उसने कुमारपाल को परास्त किया अथवा नहीं, किन्तु यह सत्य है कि उसने नड्डुल, जालोर व पाली के शासकों को परास्त किया क्योंकि इन्होंने अर्णोराज के विरुद्ध कुमारपाल की ओर से युद्ध लड़ा था।

(ii) **भादानकों पर विजय**—विग्रहराज चतुर्थ ने भादानकों पर भी विजय प्राप्त की। **डॉ० दशरथ शर्मा** के अनुसार गुड़गाँव जिला, अलवर राज्य का कुछ भाग तथा हिसार जिले की भिवानी तहसील को सम्मिलित रूप से भादानक कहते थे। इस प्रदेश को अहीरवटी भी कहते थे।

(iii) **तोमरों पर विजय**—बिजोलिया अभिलेख से ज्ञात होता है कि विग्रहराज ने दिल्ली के तोमर राजाओं पर विजय प्राप्त की व उन्हें अपने सामन्त शासक के रूप में नियुक्त किया।

(iv) **तुर्कों से संघर्ष**—विग्रहराज चतुर्थ ने तुर्कों का भी वीरतापूर्वक सामना किया। प्रारम्भ में विग्रहराज ने तुर्कों के विरुद्ध रक्षात्मक नीति का पालन किया, अत: हम्मीर जयपुर के समीप वेबर तक पहुँच गया व विग्रहराज से आत्मसमर्पण करने को कहा, किन्तु विग्रहराज ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा का व्रत लिया, अत: हम्मीर (अमीर खुसरो शाह) को वापस लौटना पड़ा।

बाद में विग्रहराज ने तुर्क आक्रान्ताओं पर विजय प्राप्त की व पंजाब के अतिरिक्त समस्त हिन्दू प्रदेशों को तुर्कों से छीन लिया।

शिवालिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि विग्रहराज ने हिमालय से विन्ध्याचल के मध्य सभी क्षेत्रों को अपना करद बना लिया था। इससे ज्ञात होता है कि विग्रहराज ने कुछ पर्वतीय दुर्गों पर भी अधिकार किया था।

(v) **सांस्कृतिक कार्यकलाप**—विग्रहराज मात्र शक्तिशाली शासक ही नहीं स्वयं विद्वान एवं विद्वानों का आश्रयदाता भी था। उसने 'हरकेलि' नामक नाटिका की भी रचना की थी जिसकी कीलहार्न ने अत्यधिक प्रशंसा की है। उसका दरबारी कवि सोमदेव था, जिसने 'ललित विग्रहराज' नामक नाटक की रचना की। विग्रहराज ने उच्चकोटि के भवनों का भी निर्माण कराया जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण अजमेर में उसके द्वारा निर्माण कराया गया विद्यालय का भवन है जिसे कुतुबुद्दीन ने मस्जिद में परिवर्तित कर दिया। इसकी प्रशंसा करते हुए **टॉड** ने लिखा है, "यह हिन्दू शिल्पकला का प्राचीनतम एवं पूर्ण परिष्कृत स्मारक है।" **कनिंघम** ने भी इसकी अत्यन्त प्रशंसा की है। विग्रहराज ने अनेक नगरों का भी निर्माण कराया व एक विशाल झील बनवायी।

विग्रहराज शैव धर्मावलम्बी था।

डॉ० दशरथ शर्मा ने विग्रहराज की अत्यन्त प्रशंसा की है। उनके शब्दों में, "विग्रहराज के शासन को सपादलक्ष-साम्राज्य का स्वर्ण युग समझा जाना चाहिए।"

चाहमान-वंश (1164-1177 ई०)—विग्रहराज के पश्चात् उसके पुत्र अपरगांगेय ने कुछ समय शासन किया किन्तु शीघ्र ही जगदेव के पुत्र पृथ्वीराज द्वितीय (1164-1169 ई०) ने उसकी हत्या कर दी व स्वयं शासक बन गया। उसने 1169 ई० तक शासन किया। तत्पश्चात् पृथ्वीराज द्वितीय के चाचा सोमेश्वर ने शासन किया। उसने 1169 ई० से 1177 ई० तक शासन किया।

पृथ्वीराज तृतीय (1178-1192 ई०)—सोमेश्वर के पश्चात् उसका पुत्र पृथ्वीराज चाहमान-साम्राज्य के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। पृथ्वीराज इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी राजा प्रमाणित हुआ। सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के समय उसकी आयु ग्यारह वर्ष की थी, अत: पृथ्वीराज के शासक बनने पर उसकी माता कर्पूरीदेवी ने संरक्षिका के रूप में कार्य किया। कर्पूरीदेवी को संरक्षिका के रूप में शासन करने में मुख्यमन्त्री कदम्बवास ने उसकी सहायता की। कदम्बवास अत्यन्त योग्य, वीर व स्वामिभक्त था। भुवनैक मल्ल नामक एक अन्य मन्त्री ने भी उसकी पर्याप्त सहायता की। पृथ्वीराज को उसके प्रारम्भिक युद्धों में सफलता दिलाने का श्रेय कदम्बवास व भुवनैकमल्ल को ही है। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार, इन दोनों ने पृथ्वीराज की वैसे ही सेवा की जैसे गरुड़ व हनुमान ने श्रीराम की की थी।

(i) **पृथ्वीराज की नीति**—पृथ्वीराज ने 1180 ई० के लगभग शासन की बागडोर अपने हाथों में ली। शीघ्र ही उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। अनेक शक्तिशाली राजा उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे, अत: इसके लिए आक्रामक नीति अपनाना अत्यन्त आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, युवा पृथ्वीराज अत्यन्त महत्वाकांक्षी था, अत: उसने शासक बनते ही आक्रामक नीति का पालन किया व अपनी मृत्यु तक इसी नीति पर चलता रहा।

(ii) **नागार्जुन के विद्रोह का दमन**—विग्रहराज चतुर्थ के पुत्र नागार्जुन ने पृथ्वीराज के विरुद्ध 1180 ई० में विद्रोह किया व गुड़पुर पर अधिकार कर लिया। नागार्जुन को प्रारम्भ में सफलता प्राप्त हुई व उसने कुछ दिन अजमेर पर शासन भी किया। शीघ्र ही पृथ्वीराज ने कदम्बवास के नेतृत्व में विशाल सेना इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजी। नागार्जुन ने स्वयं को दुर्ग में सुरक्षित रखना चाहा किन्तु शीघ्र ही उसे अपने प्राणों की रक्षा के लिए भागना पड़ा। नागार्जुन के सम्बन्धी बन्दी बनाये गये। नागार्जुन के सैनिक यद्यपि देवभट्ट के नेतृत्व में युद्ध करते रहे किन्तु शीघ्र ही उन सबको मौत के घाट उतार दिया गया।

(iii) **भण्डानक-विजय**—1182 ई० में भण्डानकों ने विद्रोह किया। इनके राज्य में भिवानी तहसील, रिवाडी तहसील व अलवर के कुछ भाग आते थे। पृथ्वीराज ने इन पर विजय प्राप्त कर इस विद्रोह को दबाया।

(iv) **चन्देलों से युद्ध**—पृथ्वीराज तृतीय का समकालीन चन्देल शासक परमर्दी था। 'पृथ्वीराजरासो' से ज्ञात होता है कि चाहमान शासक ने चन्देलों की राजधानी पर विजय प्राप्त की, जिसमें चन्देल शासक की ओर से आल्हा व ऊदल ने भी युद्ध में भाग लिया था। पृथ्वीराज ने चन्देलों पर विजय प्राप्त की इसकी पुष्टि मदनपुर अभिलेखों से होती है। पृथ्वीराज चन्देल-साम्राज्य पर अधिक समय तक अधिकार न रख सका व परमर्दी ने कुछ समय पश्चात् पुनः अधिकार कर लिया।

(v) **गुजरात पर आक्रमण**—पृथ्वीराजरासो से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर व चालुक्य शासक भीम के मध्य संघर्ष हुआ था जिसमें भीम द्वितीय ने सोमेश्वर की हत्या कर दी थी व नागौर पर अधिकार कर लिया था। पृथ्वीराज ने शासक बनने पर अपने पिता की पराजय का प्रतिशोध भीम की हत्या करके लिया। 'पृथ्वीराजरासो' का यह वर्णन प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता क्योंकि भीम के शासक बनने से पूर्व ही सोमेश्वर की मृत्यु हो चुकी थी। चालुक्य विवरणों से ज्ञात होता है कि चालुक्यों व चाहमानों के मध्य संघर्ष 1184 ई० के पश्चात् हुआ।

(vi) **गहड़वालों से सम्बन्ध**—पृथ्वीराज चौहान का समकालीन गहड़वाल शासक जयचन्द्र था। इनके पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में 'पृथ्वीराजरासो' से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ में पृथ्वीराज के द्वारा जयचन्द्र को परास्त किए जाने का उल्लेख मिलता है। जयचन्द्र भी एक शक्तिशाली शासक था, उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर राजसूय यज्ञ का आयोजन किया व इसी अवसर पर अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयंवर की भी व्यवस्था की। चाहमान शासक पृथ्वीराज को इसमें आमन्त्रित नहीं किया गया था, किन्तु पृथ्वीराज ने संयोगिता का अपहरण कर लिया। फलतः दोनों में वैमनस्य और भी बढ़ गया। **डॉ० दशरथ शर्मा** ने स्वयंवर की घटना की ऐतिहासिकता में सन्देह व्यक्त किया है। जयचन्द्र व पृथ्वीराज के मध्य किसी युद्ध होने का निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। जयचन्द्र व पृथ्वीराज के मध्य इस शत्रुता का लाभ मुहम्मद गोरी को हुआ।

(vii) **तुर्कों से संघर्ष**—मुहम्मद गोरी 1173 ई० में गजनी का गवर्नर नियुक्त हुआ था। 1175 ई० में उसने भारत का प्रथम अभियान किया तथा गुजरात पर आक्रमण कर वहाँ लूट-पाट की। 1181 ई० में गोरी ने सियालकोट में एक दुर्ग का निर्माण कराया तथा 1186 ई० में उसने पंजाब पर अधिकार कर लिया। यद्यपि 'हम्मीर महाकाव्य' व 'पृथ्वीराज विजय' में उल्लेख है कि पृथ्वीराज ने लगभग सात बार गोरी को परास्त किया था, किन्तु इस वर्णन को प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(a) **तराइन का प्रथम युद्ध** (1191 ई०)—गोरी व पृथ्वीराज की सेनाओं के मध्य प्रथम युद्ध 1191 ई० में तराइन के मैदान (थानेश्वर से 14 मील दूर) में हुआ था। गोरी सरहिन्द पर अधिकार कर लेने के पश्चात् आगे बढ़ा तो पृथ्वीराज ने तराइन के मैदान में उसका सामना करने का निर्णय किया। गोरी के आक्रमण की विभीषिता एवं अत्याचार का वर्णन चन्द्रराज (दिल्ली के गवर्नर गोविन्दाराज का पुत्र) ने इस प्रकार किया "गोरी ने उसको लूटा एवं जला दिया, नारियों का अपमान किया व उन सबकी दुर्दशा कर दी है। अनेक राजपूत घराने उनके सामने नष्ट हो गये हैं या भाग गये हैं।" इस वर्णन को सुनकर दुःखी पृथ्वीराज ने तुरन्त गोरी का तराइन के मैदान में सामना किया। पृथ्वीराज की सेना के भीषण आक्रमण व विशाल संख्या के समक्ष गोरी के सैनिक टिक न सके। शीघ्र ही गोरी की सेना पराजित होकर भागने पर विवश हुई। गोरी भी घायल हुआ किन्तु किसी प्रकार युद्ध क्षेत्र से भागने में सफल हो

गया। पृथ्वीराज ने भागती हुई तुर्क सेना का राजपूती आन के कारण पीछा न किया, किन्तु यह उसकी बहुत बड़ी भूल थी। उसे गोरी की सेना का पीछा करके उसे पूर्णत: नष्ट कर देना चाहिए था। पृथ्वीराज को इस गलती का परिणाम शीघ्र ही भुगतना पड़ा।

(b) **तराइन का द्वितीय युद्ध** (1192 ई०)—गोरी अपनी इस अपमानजनक पराजय को भूल न सका। उसने पुन: युद्ध की तैयारी की व गजनी से एक लाख तीस हजार चुने हुए घुड़सवारों के साथ भारत की ओर प्रस्थान किया व पुन: तराइन के मैदान तक पहुँचकर पृथ्वीराज को सन्देश भिजवाया कि वह इस्लाम-धर्म को स्वीकार कर ले, किन्तु पृथ्वीराज प्रत्युत्तर में सेना सहित उसके सम्मुख जा पहुँचा। पृथ्वीराज ने गोरी को पत्र लिखकर सूचित किया कि 'यदि वह वापस लौट जाये तो वह गोरी को हानि नहीं पहुँचायेगा।' गोरी ने धूर्तता से काम लिया। उसने पृथ्वीराज को कहलवाया कि "वह अपने भाई की आज्ञा से भारत पर आक्रमण करने आया है, अत: उससे आज्ञा लेना आवश्यक है तथा मैं अपने भाई के पास सन्देश भेज रहा हूँ।"

इस पत्र के प्राप्त होने पर पृथ्वीराज की सेना विश्राम करने लगी तब गोरी ने अचानक उस पर आक्रमण कर दिया। पृथ्वीराज की सेना में अचानक हुए इस आक्रमण से भगदड़ मच गयी, किन्तु पृथ्वीराज ने स्थिति को नियन्त्रण में कर गोरी को पीछे हटने पर विवश किया। गोरी ने पुन: कूटनीति से कार्य किया व अपनी सेना कई भागों में विभाजित कर दिन निकलने से पूर्व ही आक्रमण कर दिया। यद्यपि राजपूत सेना ने भयंकर युद्ध किया किन्तु उन्हें परास्त होना पड़ा। पृथ्वीराज को बन्दी बनाया गया, तथा एक लाख भारतीय सैनिक मारे गये। पृथ्वीराज की भी बाद में हत्या कर दी गयी।

इस प्रकार शक्तिशाली शासक पृथ्वीराज का दु:खद अन्त हुआ। तराइन के द्वितीय युद्ध में उसके पराजित होने के प्रमुख कारणों में, गोरी द्वारा छल की नीति, जयचन्द्र से पृथ्वीराज को सहायता प्राप्त न होना व पृथ्वीराज का तराइन के प्रथम युद्ध के पश्चात् विलासी हो जाना था। पृथ्वीराज नि:सन्देह एक योग्य सेनापति था, किन्तु उसमें राजनीतिक दूरदर्शिता की कमी थी। यही कारण था कि वह अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी पराजित हो गया। तराइन के द्वितीय युद्ध के विषय में विभिन्न विद्वानों की प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार हैं : **डॉ० डी० सी० गांगुली** के अनुसार, "तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय ने न केवल चाहमानों की राजशक्ति को समाप्त कर दिया वरन् भारत के लिए भी दुर्दशा का कारण बनी।" **प्रो० हेमचन्द्र राय** के शब्दों में, "इस युद्ध ने शाकम्भरी के चाहमानों के प्रभुत्व को यथार्थ में समाप्त कर दिया। **हेग** के अनुसार, "इस विजय द्वारा मुहम्मद (गोरी) को दिल्ली के द्वारा लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत प्राप्त हो गया।"

(viii) **विद्वानों का आश्रयदाता**—पृथ्वीराज के राज दरबार में अनेक विद्वान रहते थे, जिनमें 'पृथ्वीराजरासो' का रचयिता चन्दबरदाई, जयानक, जनार्दन, विद्यापति आदि उल्लेखनीय हैं।

हरिराज—पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् चाहमान-वंश का अन्त निकट आ गया था, यद्यपि उसके भाई हरिराज के 1198 ई० तक जीवित होने के प्रमाण मिलते हैं। उसने अजमेर पर पुन: अधिकार करके कुछ समय तक शासन किया, किन्तु उसने जब दिल्ली पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, तो मुसलमानों से हुए युद्ध में वह मारा गया।

इस प्रकार चाहमान-वंश का अन्त हो गया।

❑

UNIT-VI

भारत में सामन्तवाद का उदय
Rise of Feudalism in India

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामन्तवाद की उत्पत्ति कब हुई?
When did feudalism originate?

उत्तर सामन्तवाद की उत्पत्ति शक-कुषाण काल में हुई।

प्र.2. उत्तराधिकारी के ललाट पर 'टीका' लगाने की प्रथा किसने आरम्भ की?
Who began the custom of applying a mark on the forehead of the heir apparent?

उत्तर उत्तराधिकारी के ललाट पर टीका लगाने की प्रथा मुगल बादशाह अकबर ने की।

प्र.3. उदयपुर राज्य में सामन्त राज्य की सेवा किस प्रकार करनी होती थी?
What kind of service did the feudal had to provide to the state in Udaipur state?

उत्तर उदयपुर राज्य में प्रत्येक सामन्त को एक हजार की आय पर दो सवार एवं चार पैदल सैनिकों से वर्ष में तीन माह राज्य को सेवा देनी होती थी।

प्र.4. 'सामन्त' शब्द का प्रयोग 'स्वतन्त्र पड़ोसी' के अर्थ में किस ग्रन्थ में किया गया है?
In which book has the word 'independent neighbour' been used for the word 'Samant'?

उत्तर 'सामन्त' शब्द का प्रयोग 'स्वतन्त्र पड़ोसी' के अर्थ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में किया गया है।

प्र.5. उत्तर भारत में सामन्त कुलों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई?
How did feudal dynasties originate in north India?

उत्तर गुप्त सम्राटों की धर्मविजयी नीति के फलस्वरूप उत्तर भारत में विभिन्न सामन्त कुलों; जैसे—मौखरि, परिव्राजक, सनकानीक, वर्मन् और मैत्रक आदि की उत्पत्ति हुई।

प्र.6. किस राजा के समय में जागीरों को 'कोटड़ी' कहा जाने लगा?
During the time of which king did the Jagir came to be called as 'Kotdi'?

उत्तर राजा भारमल के समय से जागीरों के 'कोटड़ी' कहा जाने लगा।

प्र.7. राजपूत काल में सामन्तवाद किस सीमा पर पहुँच गया था?
What limit did feudalism reach during of the Rajput Period?

उत्तर राजपूतकाल में सामन्तवाद अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामन्तवाद के विकास में प्राचीन भारतीय 'धर्मविजय' की अवधारणा का क्या योगदान था? संक्षेप में समझाइए।
What was the contribution of the ancient Indian concept of 'Dharm Vijay' in the growth of feudalism? Explain in brief.

उत्तर सामन्तवाद के विकास में प्राचीन भारतीय 'धर्मविजय' की अवधारणा का उल्लेखनीय योगदान रहा। इसके अन्तर्गत विजेता सम्राट विजित राजा के राज्य को जीत तो लेता था लेकिन उसके पश्चात् उसपर अपना अधिपत्य नहीं करता, बल्कि उससे भेंट-उपहारादि प्राप्त कर उसे अपनी अधीनता में राज्य करने का अधिकार दे देता था। इस नीति को 'ग्रहणमोक्षानुग्रह' कहा गया

है। विजित राजाओं को अपने सम्राट को सभी कर देना पड़ता था, उसकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था एवं उसके प्रति निष्ठा प्रकट करने के लिए राज्यसभा में उपस्थित होना पड़ता था।

गुप्त सम्राटों की धर्मविजयी नीति के परिणामस्वरूप उत्तर भारत में विभिन्न सामन्त कुलों—मौखरि, परिव्राजक, सनकानीक, वर्मन्, मैत्रक आदि का उदय हुआ। इन वंशों के शासक 'महाराज' की उपाधि धारण करते थे जबकि गुप्त सम्राट 'महाराजाधिराज' कहलाता था।

प्र.2. सामन्तवाद की आर्थिक स्थिति कैसी थी? अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।
How was the economic condition of feudalism? Clarify in your words.

उत्तर सामन्तवाद के विकास में आर्थिक कारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इसके सामाजिक-आर्थिक कारक शक-कुषाण काल में दृष्टिगोचर होने लगे थे। इस समय ग्रामों में ग्रामपतियों का एक सम्पन्न वर्ग तैयार हुआ जिसकी अधीनता में निर्धन किसानों का वर्ग था। इसके साथ ही विदेशी जातियों ने कुलीन शासकवर्ग का स्थान ग्रहण कर लिया। इस प्रकार स्वामी-सामन्त सम्बन्धों का विकास हुआ, लेकिन कुषाण काल में हुई आर्थिक उन्नति ने सामन्ती मनोवृत्ति पर अंकुश लगाया तथा उसका प्रभाव व्यापक नहीं हो सका। गुप्तकाल के बाद राजनीतिक उथल-पुथल के वातावरण में व्यापार-वाणिज्य का पतन हुआ। 600 से 1000 ई० के मध्य हमें व्यापारिक संघों की मुहरें प्राप्त नहीं होतीं तथा सिक्के मिश्रित धातु एवं भद्दे आकार-प्रकार के मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि इस समय वाणिज्य पर आधारित अर्थव्यवस्था का पतन हो गया था।

प्र.3. भारत में सामन्तवाद की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? संक्षेप में लिखिए।
How did feudalism originate in India? Write in brief.

उत्तर भारत में सामन्तवाद की उत्पत्ति तथा विकास के लिए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों ने महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान किया। सतत् बाह्य आक्रमणों के कारण केन्द्रीय सत्ता दुर्बल हो गई तथा चतुर्दिक अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गई। केन्द्रीय शक्ति की निर्बलता ने समाज में प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया जिन पर स्थानीय सुरक्षा का भार आ पड़ा। अव्यवस्था के काल में सामान्य लोग अपनी जान-माल की सुरक्षा के लिए उनकी ओर उन्मुख हुए। अरबों तथा तुर्कों के आक्रमण ने शक्तिशाली राजवंशों को धराशायी कर दिया। परिणामस्वरूप, उत्तर भारत में कई छोटे-छोटे राजवंशों का उदय हो गया। इससे सामन्ती प्रवृत्ति को और अधिक बढ़ावा मिला।

प्र.4. भूमिखण्ड किन्हें दिए जाते थे? भूमि खण्ड दिए जाने की प्रथा कब सर्वमान्य हुई? संक्षेप में लिखिए।
Who were given land parcels? When did the custom of giving land parcels became undisputed? Write in brief.

उत्तर हर्षवर्धन के समय एवं उसके बाद से प्रशासनिक और सैनिक अधिकारियों को उनकी सेवाओं के बदले में भूमिखण्ड दिए जाते थे। भूमिखण्ड दिए जाने की यह प्रथा सर्वमान्य हो गई। **मनुस्मृति** में राजस्व अधिकारियों को भूमिदान के रूप में वेतन देने की संस्तुति की गई है। इसके अनुसार 'दस ग्रामों का स्वामी **एक कुल**, बीस ग्रामों का स्वामी **पाँच कुल**, सौ ग्रामों का स्वामी **एक ग्राम** तथा हजार ग्रामों का स्वामी **एक नगर** को अपने निर्वाह के लिए प्राप्त करेगा। गुप्तकालीन स्मृतियों में भी इसका उल्लेख है।

गुप्त काल के लेखों से यह स्पष्ट नहीं होता कि राजकर्मचारियों को जागीरें दी जाती थीं अथवा नहीं, परन्तु हर्ष के समय से इस बात के निश्चित प्रमाण मिलते हैं कि भूमि अनुदान न केवल धार्मिक कार्यों, अपितु राज्य की सेवा के लिए भी प्रदान किए जाते थे।

चीनी मात्री ह्वेनसांग इस बात का स्पष्ट उल्लेख करता है। वह हमें बताता है कि राजस्व का चतुर्थांश बड़े-बड़े अधिकारियों के उपभोग के लिए सुरक्षित था। प्रत्येक गवर्नर, मन्त्री, मजिस्ट्रेट तथा अधिकारी को अपना व्यक्तिगत खर्च चलाने के लिए भूमि दी गई थी। हर्ष के लेखों में राज्य के बड़े-बड़े अधिकारियों के लिए सामन्त तथा महासामन्त जैसी उपाधियों का प्रयोग मिलता है।

प्र.5. गुप्तकाल में भूमि सम्बन्धी अनुदानों की स्थिति कैसी थी? संक्षेप में समझाइए।
How was the condition of land grants in Gupta Period? Explain in brief.

उत्तर गुप्तकाल में भूमि सम्बन्धी अनुदानों में वृद्धि हो गई। इस काल से दान में दी गयी भूमि में स्थित चरागाहों, निधियों, खानों, बेगार आदि राजस्व के समस्त साधनों को दानधारक को सौंप देने की प्रथा प्रारम्भ हो गई। **आर०एस० शर्मा**, जिन्होंने सामन्तवाद के उदय तथा विकास का गहन अध्ययन व विश्लेषण किया है, की मान्यता है कि भारत में सामन्तवाद का उदय राजाओं द्वारा

ब्राह्मणों और प्रशासनिक व सैनिक अधिकारियों को भूमि तथा ग्राम दान में दिए जाने के कारण हुआ। पहले ये अनुदान केवल ब्राह्मणों को ही धार्मिक कार्यों के लिए दिए जाते थे। वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय (पाँचवीं सदी) की चमक प्रशस्ति से इसकी सूचना प्राप्त होती है। प्रो० शर्मा इन्हें ही सामन्तवाद के उत्कर्ष का प्रमुख कारण निरूपित करते हैं।

प्र.6. भारत में सामन्तवादी व्यवस्था का क्या प्रभाव था? संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
What was the impact of feudalism in India? Make clear briefly.

उत्तर जब सामन्तवादी व्यवस्था अपने शिखर पर पहुँच गई, तब इसने भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। सामन्तों के प्रशासन पर बढ़ते हुए प्रभाव के कारण केन्द्रीय सत्ता अत्यन्त दुर्बल हो गई। अपनी शक्ति के लिए सम्राट पूर्णतया सामन्तों पर ही आश्रित रहने लगे। उनका अपनी प्रजा की कठिनाइयों पर बहुत कम ध्यान देते थे। वे सामन्तों के परामर्श को ही सब कुछ समझने लगे। राजपूत काल में यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि सामन्तों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण सम्राट अपने मन्त्रियों की सलाह की भी उपेक्षा कर देते थे। इस प्रकार राज्य की वास्तविक शक्ति सामन्तों के हाथों में ही केन्द्रित हो गई तथा राज्य की सुरक्षा की जिम्मेदारी उन्हीं के कन्धों पर आ गई। सामन्तों की संख्या में वृद्धि से जनसाधारण का जीवन कष्टमय हो गया, क्योंकि वे विभिन्न प्रकार से उनका शोषण करने लगे। केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता का लाभ उठाकर सामन्त सदैव स्वतन्त्र होने का अवसर ढूँढ़ा करते थे। असन्तुष्ट सामन्तों द्वारा सम्राट तथा राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र किए जाने के भी उदाहरण मिले हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामन्तवाद का क्या अर्थ है? भारत में सामन्तवाद के उद्भव एवं विकास का विस्तार से वर्णन कीजिए।
What is the meaning of feudalism? Explain in detail the emergence and development of feudalism in India.

उत्तर

भारत में सामन्तवाद का उद्भव एवं विकास
(Emergence and Development of Feudalism in India)

'सामन्त' शब्द का प्रयोग कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'स्वतन्त्र पड़ोसी' के अर्थ में किया गया है। सर्वप्रथम अश्वघोष (प्रथम शती) ने बुद्धचरित में इस शब्द का प्रयोग जागीरदार के लिए किया है। भारत में पूर्व मध्यकालीन समाज में 'सामन्तवाद' की महत्त्वपूर्ण स्थिति रही है जिसके उद्भव तथा विकास के सम्बन्ध में अनेक सामाजिक-आर्थिक इतिहासकारों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। गुप्तकाल से सामन्त शब्द का प्रयोग सामान्यत: इसी अर्थ में किया जाने लगा। सामन्तवाद के उद्भव एवं विकास को निम्न प्रकार समझ सकते हैं—

1. **सामन्तवाद को आधार प्रदान करने वाले कारक**—राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों ने भारत में सामन्तवाद के उद्भव तथा विकास के लिए व्यापक आधार प्रदान किया। बाह्य आक्रमणों के कारण केन्द्रीय सत्ता कमजोर पड़ गयी तथा चारों ओर अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गयी। केन्द्रीय शक्ति की कमजोरी ने समाज में प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया जिन पर स्थानीय सुरक्षा का भार आ पड़ा। अव्यवस्था के युग में सामान्यजन अपनी जान-माल की सुरक्षा के लिए उनकी ओर उन्मुख हुआ। इन्हीं परिस्थितियों में मध्यकालीन यूरोप में भी सामन्तवाद का अभ्युदय हुआ था। अरबों तथा तुर्कों के आक्रमण ने शक्तिशाली राजवंशों को धराशायी कर दिया। परिणामस्वरूप उत्तर भारत में कई छोटे-छोटे राजवंशों का उदय हो गया। इससे सामन्ती प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।
2. **सामन्तवाद का जन्म एवं विकासजनित अवस्थाएँ**—ऐसा माना जाता है कि सामन्तवाद का जन्म शक-कुषाण काल में हुआ। राजपूत काल तक आते-आते यह समाज में अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हो गया। शक-कुषाण काल में हमें सामन्तवाद के न केवल राजनीतिक बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक कारक भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। कुषाण सम्राटों की 'राजाधिराज' उपाधि भी सामन्तवादी व्यवस्था की सूचक थी। पश्चिमी भारत के शक शासकों में 'महाक्षत्र' और 'क्षत्रप' की उपाधियाँ प्रचलित थीं। **जैन ग्रन्थ कालकाचार्य कथानक** से ज्ञात होता है कि शक सम्राट 'षाहानुषाहि' कहे जाते थे तथा उनकी अधीनता में कई सामन्त (षाहि) होते थे। कालान्तर में गुप्त सम्राटों ने इन्हीं के अनुकरण पर 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। इस प्रकार गुप्तकाल और इसके बाद राजनीतिक क्षेत्र में सामन्तवाद पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गया।

3. **सामन्तवाद के विकास में आर्थिक कारक**—सामन्तवाद के विकास में आर्थिक कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसके सामाजिक-आर्थिक कारक शक-कुषाण युग में स्पष्ट होने लगे थे। इस समय ग्रामों में ग्राम-पतियों का एक सम्पन्न वर्ग तैयार हुआ जिसकी अधीनता में निर्धन किसानों का वर्ग था। इसके साथ ही विदेशी जातियों ने कुलीन शासकवर्ग का स्थान ले लिया। इस प्रकार स्वामी-सामन्त सम्बन्धों का विकास हुआ। अहिच्छत्र तथा कौशाम्बी जैसे नगरों की खुदाई और चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से प्रमाणित होता है कि उत्तर भारत के अनेक नगर वीरान हो चुके थे। नगरीय जीवन के ह्रास के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था मुख्यत: भूमि और कृषि पर आधारित हो गई। कृषि के प्रति समाज का दृष्टिकोण परिवर्तित होने लगा। इसकी झलक हमें तत्कालीन ग्रन्थों से मिलती है जहाँ कृषि को सभी वर्गों के सामान्य व्यवसाय के रूप में दर्शाया गया है। यह भी सत्य है कि कुषाण युग की आर्थिक प्रगति ने सामन्ती मनोवृत्ति पर अंकुश लगाया तथा उसका प्रभाव व्यापक नहीं हो सका। गुप्तकाल के बाद राजनीतिक उथल-पुथल के वातावरण में व्यापार-वाणिज्य का पतन हुआ। 600 से 1000 ई० के बीच हमें व्यापारिक संघों की मुहरें नहीं मिलती तथा सिक्के मिश्रित धातु एवं भद्दे आकार-प्रकार के मिलते हैं।
4. **प्राचीन भारतीय विजय की अवधारणा का योगदान**—प्राचीन भारतीय 'धर्मविजय' की संकल्पना ने भी सामन्तवाद के विकास में योगदान दिया। इसके अन्तर्गत विजेता सम्राट विजित राजा के राज्य को जीत लेने के बाद उस पर अपना अधिकार नहीं करता था बल्कि उसे भेंट-उपहारादि प्राप्त कर विजित राजा को अपनी अधीनता में राज्य करने का अधिकार दे देता था। विजित राजाओं को अपने सम्राट को समस्त कर देने पड़ते थे। उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता था तथा उसके प्रति निष्ठा सूचित करने के लिए समय-समय पर राजसभा में उपस्थित होना पड़ता था। समुद्रगुप्त के प्रयाग लेख में सामन्तों के इन कर्त्तव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। गुप्त सम्राटों की धर्मविजय नीति के फलस्वरूप उत्तर भारत में विभिन्न सामन्त कुलों; जैसे-मौखरि, परिव्राजक, सनकानीक, वर्मन, मैत्रक आदि का उद्भव हुआ। इन वंशों के शासक 'महाराज' की उपाधि धारण करते थे जबकि गुप्त सम्राट 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण करते थे। गुप्त साम्राज्य के पतनोपरान्त कई सामन्त वंशों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी तथा 'महाराजाधिराज' बन गए।

कालान्तर में बड़े सामन्त अपने अधीन छोटे सामन्त रखने लगे, जिससे इस प्रथा को व्यापक आधार प्राप्त हुआ। बाण के 'हर्षचरित' में उल्लेख है कि हर्ष ने अपने महासामन्तों को अपना 'करद' (कर देने वाला) बना लिया था। सम्राट अधीन राजाओं की प्रजा से कर न लेकर उन सामन्तों से ही कर लेता था।

प्र.2. राजपूतकाल में सामन्तवाद की स्थिति कैसी थी? विस्तृत व्याख्या कीजिए।
How was the condition of feudalism during Rajput Period? Give a detailed explanation.

उत्तर

राजपूतकाल में सामन्तवाद की स्थिति
(State of Feudalism during Rajput Period)

राजपूतकाल में सामन्तवाद चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था तथा इस बात को हम निम्नलिखित विवरण द्वारा समझ सकते हैं—

1. **राज्य का छोटी-छोटी जागीरों में विभाजन**—राजपूतकाल में राज्य कई छोटी-छोटी जागीरों में विभाजित हो गए थे। प्रत्येक जागीर का शासक एक सामन्त होता था। इन जागीरों का उदय, सामन्तों एवं राज्याधिकारियों को भूमि अनुदान में दिए जाने के फलस्वरूप हुआ। नवीं शताब्दी से ऐसे अनुदानों की चर्चा अनेक अभिलेखों में प्राप्त होती है। राज्य के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को उनकी सेवाओं के बदले में भूमिखण्ड दिए जाने का सिद्धान्त इस समय सर्वमान्य हो गया। **परमर्दि** के लेखों से ज्ञात होता है कि ये अनुदान सैनिक सेवा के लिए भी दिए जाते थे। परमर्दि ने अपने सेनापति अजयपाल को एक पग भूमि अनुदान में दी थी। एक अन्य लेख से ज्ञात होता है कि 1171 ई० में उसने सेनापति मदनपाल को एक सम्पूर्ण गाँव अनुदान में दिया था। इस प्रकार की भूमि सभी प्रकार के करों से मुक्त होती थी। ऐसे अनुदान सेना के उच्च अधिकारियों को भी प्रदान किए जाते थे। बुन्देलखण्ड में चन्देल राजाओं ने अपने अधिकारियों को पर्याप्त मात्रा में भूमि अनुदान में दी थी जिसका उल्लेख चन्देल लेखों में भी मिलता है।

राजपरिवार के व्यक्तियों को भी उनके निर्वाह के लिए भूमि-खण्ड दे दिए जाते थे। भूमि अनुदान में पाने वाले अधिकारियों की स्थिति आगे चलकर सामन्तों जैसी हो गई। परमार वंश के लेखों में ऐसे सरदारों और सामन्तों का उल्लेख प्राप्त होता है

जिन्हें अनुदान रूप में बड़े-बड़े भूखण्ड प्राप्त हुए थे। भोज परमार ने नासिक में यशोवर्मा नामक अपने सामन्त को 1500 गाँव अनुदान में दिए थे। वह महासामन्त था और अपने अधीन कई सामन्त रखता था। इसी प्रकार के अनुदान चाहमान, चालुक्य, गहड़वाल आदि राजवंशों ने भी प्रदान किए थे।

2. **प्रशासन पर प्रभाव**—सामन्तों का प्रशासन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव था। सामन्तों के प्रभाव के कारण शासक अपने मन्त्रियों की सलाह की भी उपेक्षा कर देते थे। मेरुतुंगकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि' से पता चलता है कि मालवा तथा गुजरात में सर्वत्र भूमिखण्ड अनुदान में दिए जाने की प्रथा प्रचलित थी। बारहवीं शताब्दी के ग्रन्थों में सामन्तों तथा राज्याधिकारियों को वेतन के रूप में भूमिखण्ड दिए जाने के सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। इसके पूर्व के साहित्य में अधिकांशत: धार्मिक कार्यों के लिए ही अनुदान स्वरूप भूमि दिए जाने का वर्णन है, किन्तु पूर्वमध्य युग में स्थिति इससे अलग है। 'मानसोल्लास, जिसकी रचना बारहवीं शताब्दी में हुई थी, में राजा को स्पष्ट परामर्श दिया गया है कि वह अपने सामन्तों, मन्त्रियों, भृत्यों, बान्धवों तथा सैनिक सहायकों आदि को भूमि अनुदान प्रदान करे।
राजपूत काल में उत्तरी भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। इस विभाजन के पीछे भूमि-अनुदानों की अधिकता ही उत्तरदायी थी। भूमि-अनुदान प्राप्त करने वाले व्यक्ति धीरे-धीरे अपना पद एवं प्रभाव बढ़ाकर सामन्त बन गए और इस प्रकार सम्राट तथा प्रजा के बीच उनका एक महत्त्वपूर्ण वर्ग खड़ा हो गया। इससे कृषकों की दशा और अधिक खराब हो गई, क्योंकि उन्हें अब सम्राट के स्थान पर सामन्त के प्रति निष्ठावान रहना पड़ता था। सामन्त कृषकों का शोषण करते थे। इस प्रकार इन अनेक कारणों से भारत में सामन्तवाद का उत्कर्ष हुआ।

3. **सामन्तों की विभिन्न श्रेणियाँ**—राजपूतकाल में सामन्तों को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया गया है। 'अपराजितपृच्छा' में ग्रामों पर अधिकार के आधार पर सामन्तों का विभिन्न श्रेणियों का उल्लेख है, जिसमें प्रमुख हैं—(i) महामण्डलेश्वर (एक लाख ग्राम), (ii) माण्डलिक (पचास हजार ग्राम), (iii) महासामन्त (बीस हजार ग्राम), (iv) सामन्त (दस हजार ग्राम), (v) लघु सामन्त (पाँच हजार ग्राम), (vi) चतुरांशका (एक हजार ग्राम)। इसके अतिरिक्त बीस, तीन, दो तथा एक ग्राम के स्वामित्व वाले सामन्तों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजपूतयुग में सामन्तवाद अपनी प्रगति के चरम पर था।

प्र.3. सामन्तवाद के विकास में शासकों द्वारा प्रदत्त भूमि तथा ग्राम अनुदानों की भूमिका से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करते हुए सामन्तवाद के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
What do you understand by the role of land given by the rulers and village grants in the development of feudalism? Also, describe the influence of feudalism.

उत्तर सामन्तवाद के विकास में प्रदत्त भूमि एवं ग्राम अनुदानों की भूमिका
(Role of Given Land and Village Grants in the Development of Feudalism)

सामन्तवाद के विकास में शासकों द्वारा प्रदान की गई भूमि और ग्राम अनुदानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इससे सामन्तवाद और अधिक पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। इस परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण विवरण निम्नलिखित प्रकार है—

1. **मौर्योत्तर काल की व्यवस्था**—मौर्योत्तर काल, विशेषरूप से गुप्तकाल से शासक ब्राह्मणों तथा अधिकारियों को भूमिदान में देता था। यह भूमि ब्राह्मणों को दान में दी जाती थी। उस भूमि को 'ब्रह्मदेय' कहते थे। महाभारत, धर्मशास्त्र तथा पुराणों में ऐसे दान की प्रशंसा की गई है तथा इसे लोक और परलोक में पुण्य प्राप्ति का साधन बताया गया है। भूमिदान सम्बन्धी सर्वप्रथम उल्लेख शक-सातवाहन लेखों से प्राप्त होता है। शक शासक **उषावदात** के लेखों में उसके द्वारा दिए गए ग्राम तथा भूमिदान की चर्चा है। सातवाहन नरेश **गौतमीपुत्र शातकर्णि** के एक लेख से ज्ञात होता है कि उसने बौद्ध भिक्षुओं को ग्राम दान में दिए थे। राज्य दान धारण करने वालों को दान में दी गई भूमि से प्राप्त आय देने के साथ-साथ उन्हें वहाँ के प्रशासन तथा न्याय का भी अधिकार दे देता था, किन्तु दूसरी शताब्दी के आने तक इस प्रकार के अनुदानों की संख्या सीमित हो गई थी एवं राज्य अब भी आय के कुछ साधनों पर अधिकार रखता था।

2. **गुप्तकाल के अनुदान**—गुप्तकाल के प्रारम्भ से ही भूमि सम्बन्धी अनुदानों में और अधिक वृद्धि हो गई। इस काल से दान में दी गई भूमि में स्थित चारागाहों, खानों, निधियों, विष्टि (बेगार) आदि राजस्व के सम्पूर्ण साधनों को दानग्राही को सौंप देने की प्रथा शुरू हो गई। वाकाटक नरेश **प्रवरसेन द्वितीय** (पाँचवीं शती) की **चमक** प्रशस्ति से इसकी सूचना प्राप्त होती है। भारत में सामन्तवाद का उद्भव राजाओं द्वारा ब्राह्मणों और प्रशासनिक तथा सैनिक अधिकारियों को भूमि तथा

ग्राम दान में दिए जाने के परिणामस्वरूप हुआ। पहले ये अनुदान केवल ब्राह्मणों को ही धार्मिक कार्यों के लिये दिए जाते थे। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि 'ब्राह्मणों' को दी गई भूमि जो मुश्किल से एक गाँव से अधिक रही होगी, राजनीतिक सामन्तवाद का स्थायी आधार नहीं हो सकती थी, विशेषकर ऐसे समय में जबकि दानग्राही धार्मिक तथा बौद्धिक प्रयोजनों से जुड़े रहे हों। कोई भूमि अनुदान ऐसा नहीं मिलता जिससे पता चले कि दान धारण करने वाला व्यक्ति सामन्त या राजा बन गया हो। ब्राह्मण भूस्वामी हो सकता था, किन्तु सामन्त नहीं। किसी भी भूमि अनुदान-पत्र—धार्मिक तथा लौकिक में सामन्ती अनुबन्ध; जैसे—सेना रखना, सम्राट के सामने उपस्थित होना (आत्म निवेदन) आदि की चर्चा नहीं मिलती है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि सामन्तवाद के विकास में धर्मेत्तर अनुदानों का ही हाथ रहा है, धार्मिक अनुदानों का नहीं।

3. **भूमिखण्ड दिए जाने की सर्वमान्य व्यवस्था**—वर्धन के समय से उसके बाद से प्रशासनिक और सैनिक अधिकारियों को उनकी सेवाओं के बदले में भूमिखण्ड दिए जाने की प्रथा सर्वमान्य हो गयी। **मनुस्मृति** में राजस्व अधिकारियों को भूमिदान के रूप में वेतन देने की बात कही गई है। गुप्तकालीन स्मृतियों में भी इसका वर्णन मिलता है। गुप्तलेखों से यह स्पष्ट नहीं होता कि राजकर्मचारियों को जागीरें दी जाती थीं या नहीं, किन्तु हर्षकाल से इस बात के प्रमुख चिह्न मिलते हैं कि भूमि अनुदान न केवल धार्मिक कार्यों बल्कि राज्य की सेवा के लिये भी दिये जाते थे। **ह्वेनसांग** के अनुसार, राजस्व का चतुर्थांश बड़े-बड़े अधिकारियों के उपभोग के लिये सुरक्षित था। प्रत्येक गवर्नर, मन्त्री, मजिस्ट्रेट तथा अधिकारी को अपना व्यक्तिगत खर्च चलाने के लिए जमीन दी गई थी। हर्ष के लेखों में राज्य के बड़े-बड़े अधिकारियों के लिए सामन्त तथा महासामन्त जैसी उपाधियों का प्रयोग मिलता है।

इस प्रकार, सामन्तवाद के विकास में शासकों द्वारा प्रदत भूमि और ग्राम अनुदानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

सामन्तवाद का प्रभाव (Influence of Feudalism)

सामन्तवाद के प्रभाव को हम निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं—

1. **सामन्तों में स्थानीयता की भावना**—सामन्तों में स्थानीयता की भावना बड़ी प्रबल होती थी। सामन्तों ने क्षेत्रों में बसे हुए व्यापारियों और व्यवसायियों को दूसरे स्थान में जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। परिणामस्वरूप व्यापार-वाणिज्य का पतन हो गया तथा सामाजिक गतिशीलता भी बाधित हो गई। अब कृषि एवं पशुपालन ही आर्थिक जीवन के आधार रह गए थे। मुद्रा के अभाव तथा माप-तौल में स्थानीय मानकों के प्रचलन से व्यापारियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई तथा उनमें से अधिकांश ने कृषि करना प्रारम्भ कर दिया।

   सामन्तों द्वारा अपने-अपने क्षेत्र के विकास को प्राथमिकता देने के कारण स्थानीय संस्कृतियाँ विकसित हुईं। शासकों के लिए राजनीतिक एकता बनाए रखना अब कठिन हो गया। विभिन्न स्थानों में अलग-अलग भाषाओं, बोलियों तथा परम्पराओं का प्रारम्भ हुआ। स्थानीयता की इस प्रवृत्ति ने देश में क्षेत्रीयतावाद को जन्म दिया। लोग अपने-अपने क्षेत्र को ही अपना देश मानने लगे।

2. **सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन पर प्रभाव**—सामन्तवादी व्यवस्था ने भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, और धार्मिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया था। सामन्तों के प्रशासन पर बढ़ते हुए प्रभाव के कारण केन्द्रीय सत्ता अत्यधिक दुर्बल हो गई। फलस्वरूप अपनी शक्ति के लिए सम्राट पूरी तरह से सामन्तों पर ही आश्रित रहने लगे। उनका अपनी प्रजा की कठिनाइयों से ध्यान हट गया तथा वे सामन्तों के परामर्श को ही सब कुछ समझने लगे। राजपूत काल में सामन्तों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण सम्राट अपने मन्त्रियों की सलाह की भी उपेक्षा कर देते थे। ऐसी स्थिति में राज्य की वास्तविक शक्ति सामन्तों के ही हाथों में चली गई तथा राज्य की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी सामन्तों के कन्धों पर आ पड़ी। सामन्तों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि के कारण आम जनता का जीवन संकटग्रस्त हो गया। क्योंकि वे विभिन्न प्रकार से जनता का शोषण करने लगे। केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता का लाभ उठाकर सामन्त सदैव के लिए स्वतन्त्र होने का अवसर ढूँढा करते थे। असन्तुष्ट सामन्तों द्वारा सम्राट तथा राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र किए जाने के भी विभिन्न उदाहरण मिलते हैं।

3. **सामन्तों का सामान्यीकरण**—'कृत्यकल्पतरू' नामक ग्रन्थ में विभिन्न वर्गों के सामन्तों का उल्लेख प्राप्त होता है। सामन्तवाद के विकास ने तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक वातावरण को प्रभावित किया। सैनिक शक्ति, समृद्धि और राजनीतिक प्रतिष्ठा के कारण विभिन्न वर्गों के लोगों ने समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया और वे क्षत्रियत्व का दावा करने लगे। राजपूतों के छत्तीस प्रमुख कुलों (जिनका उल्लेख पृथ्वीराजरासो में हुआ है) में से कई निम्न उत्पत्ति-मूल के थे। ऐसी स्थिति में प्राचीन चातुर्वर्ण व्यवस्था प्रभावित होने लगी।

   समृद्ध वैश्य भी सामन्तवाद का अनुकरण करने लगे एवं उनका भी जीवन विलासितापूर्ण और आडम्बरयुक्त हो गया। सम्भ्रान्त कुलों में श्रम को निम्न दृष्टि से देखा जाने लगा तथा लोग बहुसंख्यक सेवक, दास-दासियों को रखना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक मानने लगे। धार्मिक सम्प्रदायों ने भी धार्मिक क्षेत्र में सामन्ती विलासिता एवं वैभव के जीवन को अपनाया। मठाधीश सामन्ती उपाधियाँ धारण करने लगे तथा मन्दिरों में देवताओं की उपासना भी ठाठ-बाट के साथ सम्पन्न होने लगी। मन्दिरों तथा मठों के स्वामियों का जीवन सामन्तों के ही समान विलासितापूर्ण एवं वैभवपूर्ण हो गया।

इस प्रकार, सामन्तवाद का प्रभाव अत्यन्त व्यापक था।

प्र.4. राजपूत शासकों द्वारा राजपूतों से ली जाने वाली सेवाओं व शुल्कों का विवरण दीजिए।
Give a description of services and tributes demanded from the Rajputs by the Rajput rulers.

उत्तर

सेवाओं व शुल्कों का विवरण
(Description of Services and Tributes)

राजपूत शासकों द्वारा सामन्तों को सैनिक सहयोगी के रूप में प्रतिस्थापित करने की प्रवृत्ति के क्रम में सामन्तों पर अनेक सेवाएँ व शुल्क लागू किए गए। इस शुल्कों में सैनिक सेवा अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

सैनिक सेवा—राजपूत शासकों व सामन्तों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों की कड़ी राज्य को दी जाने वाली सैनिक सेवा कही जा सकती है। यह युद्धकाल एवं शान्तिकाल दोनों ही स्थितियों में प्रदान की जाती थी। युद्धकाल में राज्य की दल-बल सहित सैनिक सहायता करते हुए आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध करना होता था। सामान्य स्थिति या शान्तिकाल में अपनी जागीर की आय के अनुपात में राज्य के सामान्य कार्यों हेतु अपने सैनिक व सवार देने होते थे। इस प्रकार जागीरों की आमदनी के अनुपात से उनका सैनिक बल निर्धारित किया गया।

यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि सैनिक सेवा के सन्दर्भ में सभी राज्यों के नियम एक जैसे नहीं थे। बीकानेर में कोई निश्चित नियम नहीं था। राजपूत शासक समयानुसार सैनिक सेवा का निर्धारण करते थे। अलग-अलग समय में अलग-अलग व्यक्तियों को जागीर देते समय अपनी इच्छानुसार शुल्क का निर्धारण कर दिया जाता था। जोधपुर में पाँच सौ रुपए की आय पर एक पैदल सैनिक, साढ़े सात सौ रुपए की आय पर एक शुतर सवार एवं एक हजार रुपए की आय पर एक घुड़सवार से राज्य की सेवा करनी होती थी। उदयपुर राज्य में प्रत्येक सामन्त को एक हजार की आय पर दो सवार एवं चार पैदल सैनिकों से वर्ष में तीन माह राज्य को सेवा देनी होती थी। जैसलमेर में जागीरों के स्थान पर सेवा लेने का प्रावधान नहीं था, किन्तु यदि सैनिक सेवा ली जाती थी तो राज्य सैनिकों को वेतन देता था। जयपुर में एक हजार रुपए की आय पर एक सवार व एक पैदल तथा पाँच सौ रुपए की आय पर एक सवार की सैनिक सेवा राज्य को देनी होती थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि सामन्तों की आश्रित स्थिति से अत्यधिक बन्धन कर दिए गए।

राजपूत शासकों द्वारा लिए जाने वाले शुल्क (Tributes taken by Rajput Rulers)

1. **उत्तराधिकार शुल्क**—मुगल शासकों की नीतियों का सीधा प्रभाव उत्तरधिकार शुल्क के रूप में भी दिखाई देता है। सामन्त की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी का पद तभी वैध माना जाता था जबकि वह उत्तराधिकार शुल्क अदा कर दे। राजपूत राज्यों में इस उत्तराधिकार शुल्क को अलग-अलग नामों से जाना जाता था। कहीं इसे **हुक्मनामा, पेशकशी, कैदखालसा** कहा जाता था तो कहीं **तलवार बँधाई** और **नजराना** कहा जाता था। वस्तुत: यह जागीर के पट्टे का नवीनीकरण ही था। जागीरदार की मृत्यु होने की सूचना प्राप्त होते ही राज्य के दीवानी अधिकारी जागीर के मुख्य गाँव में उत्तराधिकार शुल्क की अदायगी के लिए पहुँच जाते थे। जब तक यह शुल्क जमा नहीं होता था, जागीर जब्त हो जाती थी और इसका सम्पूर्ण व्यय भार जागीरदार देता था। यह भी व्यवस्था थी कि उत्तराधिकारी शुल्क अदा न कर पाने की स्थिति में जागीर को एक वर्ष के लिए जब्ती के अन्तर्गत रखा जा सकता था, किन्तु सामन्त इसे अपमानजनक समझते थे।

जहाँ तक उत्तराधिकार की शुल्क राशि का सम्बन्ध है, वह सभी राजपूताना राज्यों में एक नहीं थी। **उदयपुर राज्य** में महाराजाओं ने अपने-अपने समय में अपने हिसाब से अपनी दरें निश्चित कीं। **जयपुर राज्य** के सामन्तों को उत्तराधिकार शुल्क नजराना के नाम से देना होता था। **बीकानेर** में जागीर की वार्षिक आय के बराबर उत्तराधिकार शुल्क लिया जाता था। जो जागीरदार **खिराज** से मुक्त थे उन्हें नजराना देना होता था। यहाँ पर यह जागीर की वार्षिक आय का एक-तिहाई था। **जोधपुर** में राजा उदयसिंह (1583-1595 ई०) ने इसे आरम्भ किया और 'पेशकशी' के नाम से वसूल किया। महाराजा सूरसिंह (1595-1619 ई०) ने पेशकशी की राशि जागीर के रेख के बराबर कर दी थी। **अजीतसिंह** ने तो इसको 'हुक्मनामा' के नाम से वसूल किया और तागीरयात नामक एक नया कर भी लगाया। महाराजा मानसिंह के समय हुक्मनामा की दर दुगुनी कर दी गई।

2. **रेख**—मुगलों की परिपाटी के अनुरूप राजपूत राजाओं ने राजस्थानी सामन्तों से 'रेख' की व्यवस्था निर्धारित की। 'रेख' का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता था। प्रथम अर्थ में तो यह राजस्थानी सामन्तों की जागीर के उपज का निर्धारण करने हेतु प्रयोग में लाया जाता था। द्वितीय अर्थ में यह वह सैनिक कर था जो कि जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ तथा राठौर राज्यों में सामन्तों से वसूला जाता था। कुल मिलाकर यह वह मापदण्ड था जिसके आधार पर सामन्तों से वसूल किये जाने वाले करों का निर्धारण होता था। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि 'रेख' के कारण ही सामन्तों व राजाओं के मध्य विवादों ने जन्म लिया था। इसका कारण यह था कि पट्ट में लिखी गई रेख की अनुमानित राशि तथा गाँव की वास्तविक आय में अन्तर आ गया था। सामन्तों को अधिकांशत: यह शिकायत रहती थी कि गाँव की वास्तविक आय रेख से कम है। दूसरी ओर राजपूत राजा यह दलील देते थे कि वास्तविक आय रेख से अधिक है। इतना ही नहीं रेख के आधार पर सैनिक बल का भी निर्धारण होने लगा था। इतना ही नहीं आगे चलकर चाकरी, छटूद, तागीरयात एवं मुसद्दी खर्च आदि की रकमें भी सामन्तों से वसूल की जाने लगीं।
3. **राजा के राज्याभिषेक पर कर**—राजा के राज्याभिषेक के समय पर भी सामन्तो को कर देना होता था। उदयपुर राज्य में बड़े सामन्त एक या दो घोड़े तथा 500 रुपए नजराने के रूप में देते थे। अन्य सामन्तों को 1,000 रुपए की रेख पर 20 रुपए की दर से नजराना अदा करना पड़ता था। जोधपुर में 1,000 रुपए की रेख पर 25 रुपए की दर निश्चित थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि नजराने की दर प्रत्येक राज्य में अलग-अलग थी।
4. **शासक या युवराज के प्रथम विवाह पर कर**—शासक या युवराज के प्रथम विवाह के अवसर पर भी नजराना देना होता था। उदयपुर में यह राज्याभिषेक की दर से वसूल होता था। जोधपुर में 1,000 की रेख पर 100 रुपए की दर से सामन्त को अदा करना होता था।
5. **न्यौता**—राजकुमारियों के विवाह पर न्यौता का रुपया सामन्तों को अदा करना होता था। जोधपुर में 1,000 की रेख पर 40 रुपए तथा उदयपुर में 1,000 की वार्षिक आय पर 150 रुपए की दर से वसूल किया जाता था। सामन्तों को इस अवसर पर घोड़े भी देने होते थे।
6. **तीर्थयात्रा कर**—राजाओं की तीर्थयात्रा पर भी सामन्तों को भेंट देनी होती थी। उदयपुर में 1,000 रुपए की वार्षिक आय पर 75 रुपए के हिसाब से यह भेंट देनी होती थी।

उपर्युक्त करों व शुल्कों के सन्दर्भ में यह भी विवेच्य है कि इन करों को न दे पाने पर राजा को यह पूर्ण अधिकार था कि वह जागीर को जब्त कर ले।

प्र.5. भूमि अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं? विस्तार से लिखिए।
What are the salient features of land economy? Write in detail.

उत्तर

भूमि अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ
(Salient Features of the Land Economy)

भूमि अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **सामन्त एवं भूमिधर वर्ग का उदय**—भारतीय इतिहास के पूर्व मध्य काल में सामन्त और भूमिधर वर्ग का उदय हुआ एवं समाज कृषि प्रधान हो गया। राजसत्ता प्रमुख रूप से भूसम्पत्ति से सम्बद्ध हो गई। फलस्वरूप भूस्वामित्व सम्बन्धी प्राचीन विचारधारा में परिवर्तन हुआ। **जैमिनि** के 'मीमांसा सूत्र' (ई०पू० 400-300) में उल्लेख है कि 'कोई राजा भी अपने राज्य की समस्त भूमि दान में नहीं दे सकता, क्योंकि भूमि सभी की है।' चौथी शताब्दी के टीकाकार **शबरस्वामी** ने भी यह

विचार व्यक्त किया कि 'भूमि पर अन्य लोगों का उतना ही अधिकार है जितना कि राजा का।' ये विचार भूमि पर संयुक्त अधिकार के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। अब एक ही भूमिखण्ड पर विभिन्न पक्षों; जैसे—राजा, सामन्त, अनुदानभोगी, जोतदार आदि के अलग-अलग अधिकार स्थापित हो गए। वैदिक काल से लेकर गुप्तकाल तक के ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भूमि पर लोगों का सामूहिक अधिकार होता था। मौर्यकाल के पहले यह धारणा प्रचलित थी कि भूमि समस्त समुदाय की सम्पत्ति है और उसे हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता। गुप्तकाल के पूर्व तक यह भी मान्यता रही कि भूमि का विभाजन नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके बाद के ग्रन्थों में भूमि के विभाजन की व्यवस्था की गई है। पूर्वमध्यकाल तक आते-आते भूमि पर सामुदायिक अधिकारों का ह्रास हो गया तथा राजकीय और व्यक्तिगत अधिकारों का विकास हुआ।

2. **भूमि पर राजकीय स्वामित्व**—उत्तरगुप्तकालीन स्मृतिकार **कात्यायन** ने भूमि पर राजकीय स्वामित्व का सिद्धान्त सबसे पहले प्रस्तुत किया। उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि 'राजा भूमि का स्वामी होने के कारण उपज के चतुर्थांश का अधिकारी है, किन्तु चूँकि मनुष्य भी उस भूमि पर रहते हैं अत: उन्हें भी उसका स्वामी कहा जा सकता है।' इस कथन से आशय राजा तथा प्रजा दोनों के समन्वित स्वामित्व से लगता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि राजा को भूमि की उपज का अंश पाने का अधिकार उसके भूस्वामित्व के कारण था, न कि प्रजा-रक्षण के कारण जैसा कि इस काल के पहले के ग्रन्थों में बताया गया है।

   बारहवीं शताब्दी के टीकाकार **भट्टस्वामी** ने यह विचार व्यक्त किया कि 'राजा भूमि तथा जल दोनों का स्वामी होता है तथा सामान्य लोग इन दो के अतिरिक्त किसी के भी स्वामी हो सकते हैं। इस काल में भूमि पर राजा के स्वामित्व का इतना अधिक विकास हुआ कि उसके आगे कृषकों का स्वामित्व महत्त्वहीन पड़ गया। इससे स्पष्ट होता है कि अब प्रजा के भूमि सम्बन्धी अधिकार बिल्कुल नहीं थे तथा राजा भूमि पर अपने सर्वोच्च अधिकार का प्रयोग कर सकता था। उसे किसी भी व्यक्ति को उसकी भूमि तथा मकान से वंचित करने तथा उसे किसी अन्य को प्रदान करने का अधिकार दे दिया गया।'

3. **दुर्बल राजाओं के शासनकाल में सामन्तों की शक्ति में वृद्धि**—दुर्बल राजाओं के समय में सामन्तों ने अपनी शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा लिया एवं भूमि के सर्वोच्च स्वामी बन गए। इस प्रकार व्यक्तिगत स्वामित्व को बढ़ावा मिला। इसी दौरान उपसामन्तीकरण की नवीन प्रथा भी प्रचलित हुई, जिसके अन्तर्गत बड़े सामन्त अपने अधीन छोटे-छोटे सामन्त रखने लगे। इसी प्रकार भूमिधर भी अपनी भूमि दूसरों को कृषि के लिए देने लगे। उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार जोतदारों को बदल सकने का भी अधिकार था। जमीन के साथ-साथ कृषकों को भी हस्तान्तरित करने की प्रथा प्रचलित हुई।

   बेगार की प्रथा का विस्तार हुआ। सामन्तों तथा भूमिधरों को भी बेगार लेने का अधिकार था और उन्होंने इसका खूब प्रयोग किया। नये-नये करों का आरोपण हुआ। इन सबके परिणामस्वरूप किसानों की दशा अत्यधिक दयनीय हो गई तथा भूमि पर से उनके अधिकार समाप्त हो गए। कुछ क्षेत्रों में किसानों की स्थिति दासों की तरह हो गई।

4. **भूमि पर सामुदायिक अधिकार**—पूर्व मध्यकाल में हमें भूमि पर सामुदायिक अधिकारों के होने के भी थोड़े बहुत प्रमाण मिलते हैं। यह गोचर भूमि के सम्बन्ध में था, किन्तु राजकीय तथा वैयक्तिक अधिकारों में उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण सामुदायिक अधिकार लगभग समाप्त हो चुके थे। अनुदानभोगी बड़ी आसानी से गोचर भूमि को आत्मसात कर सकते थे। फलस्वरूप साधारण किसानों की स्थिति शोचनीय हो गई एवं वे पूर्णतया सामन्तों और भूमिपतियों की कृपा पर निर्भर हो गए।

   राजकीय एवं वैयक्तिक अधिकारों में वृद्धि तथा सामुदायिक अधिकारों में ह्रास हुआ। पूर्वमध्यकालीन भूमि-अर्थव्यवस्था में राजकीय स्वामित्व के कारण राजा भूमि अनुदान में देते थे जबकि वैयक्तिक स्वामित्व के कारण अनुदानभोगी को अपनी जमीन बेच सकने, पट्टे पर दे सकने, बन्धक रख सकने आदि का अधिकार था। राजा तथा सामान्य व्यक्ति के भूस्वामित्व में कोई विशेष अन्तर नहीं था। वस्तुत: राजा सबसे बड़ा भूपति होता था, जिसके अधीन सामन्त, छोटे भूमिधर व कुलीन किसान आदि आते थे। एक ही भूखण्ड पर विभिन्न पक्षों के अलग-अलग अधिकार हुआ करते थे।

5. **व्यक्तिगत अधिकारों का विकास**—भूमि पर राजकीय स्वामित्व के कम होने के कारण व्यक्तिगत अधिकारों का विकास हुआ। पारिवारिक भूमि का विभाजन गुप्तकाल से प्रारम्भ हुआ। **बृहस्पति** ने गोचर भूमि तक को विभाज्य बताया है। लेखकों ने भूमि बेचे जाने की अनुमति दे दी। **मिताक्षरा** से स्पष्ट होता है कि भूस्वामी को खेती की उपेक्षा करने वाले

किसान से जमीन छीनकर दूसरे को दे देने का अधिकार था, किन्तु ये सभी नियम बड़े भूमिधरों के हित में थे, छोटे काश्तकारों को इनसे कोई लाभ नहीं था। भूमि का विभाजन समान नहीं था। बारहवीं शताब्दी के लेखक **लक्ष्मीधर** ने ग्राम-विक्रय का विधान प्रस्तुत किया। इस काल के ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि ऋण चुकाने के लिए लोग भूमि बन्धक रख सकते थे। उन्हें अपनी भूमि पट्टे पर रखने का भी अधिकार दिया गया।

बड़े-बड़े भूमिधर कुलीन शासकवर्ग की श्रेणी में आते जा रहे थे जबकि छोटे किसानों के भूमि सम्बन्धी अधिकार समाप्त होते जा रहे थे। सामन्त तथा कुलीन भूमिधर वर्ग के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण कृषकों के भूमि-विषयक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार भूमि अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं।

प्र.6. यूरोपीय सामन्तवाद व राजपूत सामन्तवाद की तुलना कीजिए।
Compare European and Rajput's feudalism.

उत्तर

यूरोपीय एवं राजपूत सामन्तवाद में अन्तर
(Difference between European and Rajput's Feudalism)

कर्नल जेम्स टाड की धारणा है कि राजस्थान की सामन्त पद्धति यूरोपीय सामन्त पद्धति के अनुरूप थी। कर्नल टाड की इस धारणा को सत्य नहीं माना जा सकता। **डॉ० गोपीनाथ शर्मा** के शब्दों में, "इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यहाँ की सामन्त पद्धति व यूरोप की सामन्त पद्धति में कई साम्यताएँ हैं, किन्तु राजस्थानी सामन्त व्यवस्था सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का कुलीय संगठनात्मक रूप थी।" संक्षेप में हम दोनों व्यवस्थाओं के मूलभूत अन्तर को निम्नवत् इंगित कर सकते हैं—

1. **उद्भव की परिस्थितियों में अन्तर**—यूरोपीय सामन्तवाद एवं राजस्थानी सामन्तवाद में प्रमुख अन्तर उद्भव की परिस्थितियों का है। यूरोप में इसके मूल में अराजकता एवं अशान्ति का वातावरण उत्तरदायी था। रोमन साम्राज्य के विघटन के कारण अराजकता एवं अशान्ति की प्रक्रिया के दौर में सरकार अपनी प्रजा के जान-माल की सुरक्षा करने में असमर्थ हो गई थी, लोगों की जान-माल की सुरक्षा हेतु एक वर्ग अस्तित्व में आया। इस वर्ग को लोगों की जान-माल की सुरक्षा का उत्तरदायित्व सौंपा गया। यही वर्ग सामन्त वर्ग कहलाया। इस प्रकार यूरोप में सामन्ती प्रथा का उद्भव बर्बरतापूर्ण वातावरण में हुआ। **कर्नल टाड** एवं **गिबन** जैसे इतिहासकारों ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है।

   इस प्रकार इस वर्ग को अधिकार भी दिए गए। शान्ति व्यवस्था बनाए रखना उसका मुख्य दायित्व था। सिक्के ढलवाना, सामन्ती कर के अतिरिक्त अन्य कोई कर न देना, कानून व्यवस्था स्थापित करना, न्याय प्रदान करना, व्यक्तिगत रूप से युद्ध में भाग ले सकना आदि सामन्तों के प्रमुख अधिकार थे। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि सामन्त व राजा के मध्य एक समझौता था। उनका व सत्ता का सम्बन्ध नौकर व स्वामी जैसा था।

   ठीक इसके विपरीत राजस्थान में सामन्त प्रथा के उद्भव के लिए ऐसी परिस्थितियाँ नहीं थीं। राजस्थान में सामन्त प्रथा का उद्भव राजा की शक्ति दुर्बलता के कारण नहीं हुआ, यहाँ तो उनका शासक से कुलीय व रक्त सम्बन्ध था। यहाँ पर यूरोप के समान उनका सम्बन्ध राजा से नौकर का न होकर भाई-बन्धु का था।
2. **भू-स्वायित्व का अन्तर**—दोनों ही स्थानों की सामन्ती प्रथा में दूसरा मौलिक अन्तर भू-स्वामित्व का था। यूरोप में राजा जमीन का सर्वेसर्वा था। वह जमीन का हस्तान्तरण कर सकता था। इसके ठीक विपरीत राजस्थान में जमीन का स्वामी किसान था। राजा या उसका सामन्त भूमि की उपज के एक भाग का हिस्सेदार होता था। सामन्त भूमि का हस्तान्तरण भी नहीं कर सकता था। वह केवल भूमि कर की वसूली के अधिकार को हस्तान्तरित कर सकते थे।
3. **न्यायिक क्षेत्र में अन्तर**—यूरोप में सामन्तों के पास न्यायिक अधिकार थे। शान्ति व्यवस्था कायम रखना उनका दायित्व था। किन्तु राजस्थान में न्याय का कार्य पंचायतें किया करती थीं। इन पंचायतों के कार्य में सामन्त हस्तक्षेप नहीं करते थे। यूरोप में तो ऐसी व्यवस्था कभी भी नहीं देखी गई।
4. **राज्य की सैनिक सहायता के स्वरूप में अन्तर**—राजस्थान में सामन्त राजा की सैनिक सहायता इसलिए करते थे, क्योंकि वे राज्य से अपना व्यक्तिगत व रक्त सम्बन्ध मानते थे। उनकी दृष्टि में राज्य कुल की सम्पत्ति होता था। किन्तु यूरोप में सामन्तों में ऐसी भावना नहीं थी। वे राजा की सहायता करते तो थे किन्तु यह उनका अनुबन्ध था।

5. **अस्तित्व में अन्तर**—राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण स्पष्ट करता है कि राजस्थान में राजा व सामन्त दोनों का अस्तित्व एक साथ बना रहा। राजा व सामन्तों की संस्थाएँ एक साथ चलती रहीं जबकि यूरोप में ऐसा नहीं देखा गया। यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों (Nation States) के उद्भव व विकास के साथ-साथ राजा की शक्ति बढ़ती गई और सामन्तों का पतन हुआ। एक समय ऐसा भी आया जबकि सामन्ती प्रथा का अन्त ही हो गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यूरोप व राजस्थान दोनों में सामन्ती प्रथा का उद्भव व विकास अलग-अलग परिस्थितियों में हुआ था। डॉ० **गोपीनाथ शर्मा** ने ठीक ही लिखा है, "राजस्थान की सामन्त प्रथा आपसी साझेदारी थी और उसका रूप एक प्रकार से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषताओं के लिए हुआ था।" इतना ही नहीं, वे लिखते हैं; पूर्व मध्यकालीन साहित्य से जो व्याख्या सामन्तों के लिए मिलती है वह टाड की सामन्त प्रथा जो यूरोप के समकक्ष बताई गई है, से मेल नहीं खाती। टाड ने जिस समय इस प्रथा को देखा था उस समय राजस्थान के सामन्त निर्बल हो चुके थे और उस समय उनकी स्थिति केवल राज्य के आश्रित के रूप में थी। अन्यथा राजस्थानी नरेश अपने सामन्तों को 'भाईजी' और 'काकाजी' आदि आदरसूचक शब्दों से सम्बोधित करते थे, जिससे राज्य में समता के पद और उत्तरदायित्व की ध्वनि स्पष्ट होती है।

प्र.7. राजस्थान में सामन्तवादी प्रथा की मूलभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
Describe the basic characteristics of feudalism in Rajasthan.

उत्तर

सामन्तवादी प्रथा की मूलभूत विशेषताएँ
(Basic Characteristics of Feudalism)

राजस्थान में सामन्त प्रथा की उत्पत्ति, उसके विकास, यूरोपीय सामन्तवादी व्यवस्था से उसके अन्तर एवं मुगलों के काल में उसके स्वरूप में होने वाले रूपान्तरण का अध्ययन करने पर राजस्थान में सामन्तवादी प्रथा की मूलभूत विशेषताओं का चिट्ठा वस्तुत: स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है। संक्षेप में इसकी मूल विशेषताओं को निम्नवत् इंगित किया जा सकता है—

1. **कुलीय सामन्त**—राजस्थान के सामन्त कुलीय थे। राजपूत शासक अपने वंश से सम्बन्धित व्यक्तियों को ही जागीर देकर सामन्त बनाते थे। सामन्तों में भी राजा के प्रति निष्ठा, त्याग एवं सेवा का भाव सदा रहता था। **टाड** के अनुसार, "राजस्थान की प्रतिष्ठित सामन्त व्यवस्था मुगलों के विभिन्न आक्रमणों के पश्चात् भी सजीव एवं शक्तिशाली बनी रही। राजपूत कुलोत्पन्न व्यक्ति ही सामन्त पद का अधिकारी था। वंश की श्रेष्ठता को विशेष महत्व दिया जाता था।" राजा को जिस प्रकार वंश का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि समझकर सम्मान दिया जाता था उसी प्रकार राजा सामन्त को भी सम्मान प्रदान करता था।
2. **राजनीतिक संगठन की आधारशिला**—राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता उसका राजनीतिक संगठन की आधारशिला होना है। केन्द्रीय शासन सैन्य सहायता के लिए सामन्तों पर निर्भर करता था। प्रान्तों में सामन्तों का प्राय: स्वतन्त्र अधिकार होता था। राजा की सैन्यशक्ति सीमित थी। इस प्रकार सामन्त प्रथा राजपूताना राज्यों के राजनीतिक संगठन का मूल आधार थी।
3. **सामन्तों के विशेषाधिकार**—राजनीतिक संगठन का मूल आधार होने के कारण सामन्तों की विशिष्ट स्थिति थी। राज्य के शीर्षस्थ पदों पर सामन्तों या सामन्तों के वंशजों को ही रखा जाता था। राजा की अनुपस्थिति में राज्य या राजधानी का उत्तरदायित्व किसी सामन्त को सौंप दिया जाता था। राजस्व वसूली की उन्हें छूट थी। बिना राजा की आज्ञा के उन पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। राजदरबार में उनकी श्रेणी, पद एवं प्रतिष्ठा के आधार पर उनके बैठने के स्थान नियत थे। **ताजमी, बांह पसाब** एवं **हाथ का कुरब** नामक विशेषाधिकार उन्हें प्राप्त थे। इतना ही नहीं उन्हें 'वतन जागीर का सम्प्रत्यय' भी प्राप्त था। इसका तात्पर्य यह था कि किसी राज्य में वहाँ के राजा के वंशज होने के कारण उन्हें जागीर प्राप्त होती थी। यह उनका अधिकार था। वे राज्य के उत्तराधिकार में विशेष भाग लेते थे।
4. **स्वामिधर्म का पालन**—सामन्तों की एक मुख्य विशेषता अपने स्वामी के प्रति भक्तिभाव भी था। वे अपने स्वामी के लिए तन-मन-धन न्यौछावर कर दिया करते थे।
5. **राजस्व का स्त्रोत**—राजस्थान की सामन्त प्रथा की विशेषता यह थी कि सामन्त वर्ग राज्य की आय का भी मूल स्त्रोत थे। वे राज्य को विभिन्न प्रकार के शुल्क दिया करते थे। इनमें सैनिक सेवा पर लगने वाला शुल्क, उत्तराधिकार शुल्क रेख,

चाकरी, छटूद, तागीरयात, मुसद्दी खर्च, राज्याभिषेक शुल्क, राजकुमारियों के ब्याह पर न्यौता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार सामन्त राज्य की आय के प्रमुख स्रोत थे।

6. **राजा की शक्ति का आधार व आपसी साझेदारी की व्यवस्था**—राजस्थान की सामन्तवादी व्यवस्था की मूल विशेषता यह भी थी कि यह राजा की शक्ति का आधार थी तथा यह आपसी साझेदारी की व्यवस्था भी थी। शासक द्वारा अपने ही वंश के व्यक्तियों को जागीर देकर सामन्त का पद दिया जाता था और सामन्त का दायित्व राज्य की आर्थिक व सैनिक सहायता करना होता था। वंश से जुड़े होने के कारण सामन्त राज्य को अपनी ही सम्पत्ति समझते थे। वार्षिक कर देकर सामन्त राज्य की सम्पत्ति में वृद्धि करते थे तथा संकट आने पर राज्य की सैनिक सहायता भी करते थे। इस प्रकार यह राजा की शक्ति का आधार व आपसी साझेदारी की व्यवस्था थी। **डॉ० गोपीनाथ शर्मा** ने ठीक ही लिखा है, "राजस्थान की सामन्त प्रथा आपसी साझेदारी थी और उसका रूप एक प्रकार से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषताओं को लिए हुए था। इस प्रथा में निजी रूप से भूमि से लाभ और राज्य की सैनिक सेवा सम्मिलित थी। सामन्त व शासक का सम्बन्ध पूर्णरूप से आश्रितों का न होकर समकक्ष आज्ञाकारी सहयोगियों का था। ये विशेषताएँ ही उसके चिर स्थायित्व का प्रमुख कारण हैं। इस प्रकार की सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था कुछ सामाजिक व आर्थिक कारणों से जुड़ी हुई थी।"
7. **राजा का नियन्त्रण**—सामन्तों को प्राप्त विशेषाधिकारों का उनके द्वारा अतिक्रमण करने पर शासक द्वारा उनकी जागीर को खालसा कर दिया जाता था। मूलतः यह सामन्त द्वारा करों की अदायगी न करने पर या विद्रोह करने पर किया जाता था। जागीर राज्य के नियन्त्रण में आ जाती थी। इस व्यवस्था से सामन्तों की विद्रोही भावनाओं पर अंकुश लगाने में पर्याप्त मदद मिली थी।
8. **कतिपय दोष**—राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था में समयान्तराल में कतिपय दोष भी आ गए थे। मुगल सत्ता के प्रभाव से कुलीय प्रतिस्पर्धा-जनित दोषों ने जन्म ले लिया था। इतना ही नहीं वे भोग-विलास, शिकार आदि में धन का अपव्यय भी करते थे। **मैके** ने तो यहाँ तक लिखा है कि, "कालान्तर में सूर्य और चन्द्र के लाल तथा अग्नि पुत्र अपनी परम्परा को भूलकर शौर्य के बजाय शराब और व्यभिचार के व्यसन सेवी बन गए। वे कर्ज में डूब गए।"

किन्तु उपरोक्त दोष होते हुए भी राजस्थान की सामन्त प्रथा की विशेषताओं को नकारा नहीं जा सकता। **डॉ० गोपीनाथ शर्मा** ने ठीक ही लिखा है, "परन्तु हम देखते हैं कि आखिर इस व्यवस्था का अपने युग में एक उपयोग था। इस व्यवस्था में स्वामिभक्त और देशभक्त सामन्त हँसते-हँसते अपने प्राण बलिदान कर देते थे। इस व्यवस्था को राजनीतिक दृष्टि से दोषपूर्ण क्यों न ठहराया जाए, परन्तु इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि एक युग में राजस्थान के भाग्यविधान के लिए उसका स्वतन्त्र उपयोग था।"

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VII

प्रथा, धार्मिक क्रियाएँ एवं हिन्दुओं की मान्यताएँ
Customs, Religious Activities and Hindu Beliefs

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ऑगबर्न तथा निमकॉफ द्वारा दी गई परिवार की परिभाषा लिखिए।
Write the definition of family given by Ogburn and Nimkoff.

उत्तर बच्चों सहित अथवा बच्चों रहित एक पति-पत्नी अथवा एक पुरूष व स्त्री के अकेले ही बच्चे सहित स्थायी साथ को परिवार कहते हैं।

प्र.2. परिवार के मुख्य कार्य लिखिए।
Write the main works of a family.

उत्तर परिवार के मुख्य कार्य हैं—पंच ऋण से मुक्ति के उपाय करना, पंच महायज्ञ काल, संस्कार करना आदि।

प्र.3. मानव जीवन का अन्तिम संस्कार कौन-सा है?
Which is the last rite of human life?

उत्तर मानव जीवन का अन्तिम संस्कार आन्तयेष्टि संस्कार है।

प्र.4. धर्म के विभिन्न रूप लिखिए।
Write the different forms of religion.

उत्तर धर्म के विभिन्न रूप—सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म और आपद् धर्म हैं।

प्र.5. मनुस्मृति में धर्म के कितने लक्षण बताए गए हैं?
How many characteristics of religion been given by Manusmriti?

उत्तर मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं।

प्र.6. पुरुषार्थ के प्रकार लिखिए।
Write the types of Purushartha.

उत्तर पुरुषार्थ के विभिन्न प्रकार हैं—धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय समाज को 'धर्म-प्राण समाज' क्यों कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
Why is Indian society called 'Dharm-Pran Samaj'? Clarify.

उत्तर भारतीय सामाजिक व्यवस्था मूलत: धर्म पर आधारित है। यहाँ धर्म के आधार पर जीवन के समस्त कार्यों की व्यवस्था करने का प्रयास किया गया है। भारतीय समाज धर्म-प्राण समाज कहा जाता है धर्म व्यक्ति, परिवार, समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित करता रहा है। इसलिए धर्म की प्रत्येक क्षेत्र में महत्ता रही है। यहाँ भौतिक सुख प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य नहीं मानकर धर्म संचय को प्रधानता दी गई है। भारतीय समाज में व्यक्ति ज्ञान, भक्ति अथवा कर्म के द्वारा परमेश्वर के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करता रहा है। वह सत्, चित् और आनन्द की प्राप्ति का प्रयास तथा जीवन के परम सत्य को जानने की कोशिश में लगा रहा है। इस प्रकार भारतीय समाज धर्म-प्राण समाज है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. प्रथाएँ समाज में एकता की स्थापना और सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि करती हैं। कैसे? संक्षेप में लिखिए।
Customs establish unity in the society and increase social security. How? Write in brief.

उत्तर प्रथाएँ समाज में एकता की स्थापना और सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि करती हैं। **बेजहाट** (Begehot) के अनुसार, "समाज के विकास के आरम्भिक काल में ही यह महसूस कर लिया गया था कि कुछ ऐसे नियम बनाए जाएँ जो सभी व्यक्तियों को एक-दूसरे के समान व्यवहार करने को प्रोत्साहन देकर उन्हें एकता के बन्धन में बाँध सकें। इन्हीं नियमों को हम प्रथाएँ कहते हैं।" इसका तात्पर्य है कि किसी समाज की प्रथाएँ अपने सभी सदस्यों के व्यवहारों में समानता तथा एकता का गुण उत्पन्न करती हैं तथा इस प्रकार समाज को संगठित बनाती हैं। समाज जितना अधिक संगठित बनता है, सामाजिक नियन्त्रण भी उतना ही अधिक प्रभावपूर्ण हो जाता है। सभी प्रथाएँ व्यक्तियों को सामाजिक तथा मानसिक सुरक्षा प्रदान करती हैं।

जब कभी भी सामाजिक परिवर्तन तेजी से होने लगता है तो समाज में व्यवहार के नये-नये ढंग को प्रोत्साहन मिलने लगता है। इनमें से बहुत-से व्यवहार सामाजिक संघर्षों तथा वैयक्तिक समस्याओं को जन्म देते हैं। प्रथाएँ ऐसे परिवर्तनों को रोककर समाज को विघटित होने से बचा लेती हैं। इसके अतिरिक्त वृद्धों, अपंगों, अनाथ बच्चों अथवा बेसहारा लोगों को भी प्रथाओं के कारण ही समाज में कुछ सुरक्षा मिल पाती है।

प्र.3. कर्म और पुनर्जन्म सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? संक्षिप्त रूप में लिखिए।
What do you understand by the concept of actions and rebirth? Write in brief.

उत्तर विद्वानों के अनुसार, कर्म और पुनर्जन्म दो पृथक् सिद्धान्त नहीं हैं। ये दोनों संयुक्त रूप से एक ही सिद्धान्त है एवं इनके मध्य कार्य-कारण सम्बन्ध पाया जाता है। जिस प्रकार एक बीज पौधे का कारण बनता है, उसी प्रकार कर्म आगामी जीवन का। मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए ही जन्म-जन्मान्तर तक विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन वैदिककाल के अन्तिम वर्षों (ईसा के 700 वर्ष पूर्व) में किया गया। ऋग्वेद में 'ऋत्' (Rita) की अवधारणा को विकसित किया गया है। यह एक ऐसी अवधारणा है जो हमारे अन्तःकरण की ईश्वरीय आवाज को व्यक्त करती है और हमें बताती है कि क्या सही है और क्या गलत है।

प्र.4. पुरुषार्थ किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
What is called Purushartha? Make clear.

उत्तर पुरुषार्थ से तात्पर्य उद्योग करने या प्रयत्न करने से है। पुरुषार्थ की धारणा में जीवन के विभिन्न कर्त्तव्यों या दायित्वों का बोध मिलता है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि 'पुरुषैरर्थ्यते पुरुषार्थः', जिसका अर्थ है अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए उद्यम करना ही पुरुषार्थ है। यहाँ अभीष्ट का अर्थ मोक्ष-प्राप्ति है। अतः मोक्ष जीवन का लक्ष्य है और इसकी प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम, पुरुषार्थ या माध्यम है। लगातार प्रयत्न करते रहना और अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते जाना ही पुरुषार्थ है। उपनिषदों, गीता तथा स्मृतियों में जीवन के चार आधारभूत कर्त्तव्यों के रूप में 'पुरुषार्थ' का उल्लेख मिलता है जिन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का नाम दिया गया है। इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करके ही व्यक्ति जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होता है।

प्र.5. वर्णों के अधिकार एवं कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the rights and duties of Varnas.

उत्तर

वर्णों के अधिकार एवं कर्त्तव्य
(Rights and Duties of Varnas)

प्राचीन भारतीय साहित्य का अनुशीलन स्पष्ट करता है कि भारतीय मनीषियों ने चारों वर्गों के अधिकार एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण कर दिया था। संक्षेप में इसका विवरण निम्नवत् है—

1. **ब्राह्मण**—यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, एवं धार्मिक अनुष्ठान व अध्यवसाय में संलग्न ब्राह्मण कहलाये, जो स्थान शरीर में मुँह का है वह समाज में ब्राह्मण का था। ब्राह्मण इस व्यवस्था में शीर्षस्थ स्थान पर था। अपने ज्ञान, त्याग व विद्वत्ता से समाज में उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ब्राह्मण के लिए चरित्रवान, सत्यवादी, दयालु, क्षमाशील, दूसरों के प्रति सहानुभूति रखना व तेजस्वी होना आवश्यक था। यदि ये गुण उसमें नहीं होते थे तो वह ब्राह्मण कहलाने योग्य नहीं था। किन्तु शनैः-शनैः ये गुण गौण हो गए और जन्मना रूप धारण कर लिया। ब्राह्मण धन-संग्रह का अधिकारी नहीं था। वर्णाश्रम धर्म पर विपत्ति आने पर वह शास्त्र भी धारण कर सकता था। मनु ने पुष्यमित्र शुंग द्वारा मौर्य सम्राट वृहद्रथ की

हत्या को उचित बतलाया है। परशुराम ने 21 बार क्षत्रियों का नाश किया था। वास्तव में ब्राह्मणों ने शासक के अनुशासक का दायित्व निर्वाह किया। इस वर्ग ने सीधे सत्ता अपने हाथ में न ली। ब्राह्मण करों से मुक्त था। उसका वध जघन्य अपराध समझा जाता था। यह भी विवेच्य है कि ब्राह्मणों को धर्म संगत होना होता था। कुल मिलाकर वे आर्य संस्कृति के वाहक थे।

2. **क्षत्रिय**—ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों का स्थान था। शरीर में जो स्थान भुजाओं का है, वही समाज में क्षत्रियों का था। क्षत्रिय का कार्य रक्षामूलक था। महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है— **राजा कौन है? वह जो प्रजा मात्र को आनन्द दे। क्षत्रिय कौन है? वह जो ब्राह्मण मात्र की क्षति अर्थात् हानि, चोट, घाव आदि से रक्षा करे।** वस्तुत: अपने शौर्य से राज्य व देश की रक्षा करना, सत्य व धर्म की सुरक्षा करना उसका परमधर्म था। उसे **त्रणहर्ता** भी कहा गया है। क्षत्रियों द्वारा अपने धर्म का पालन न करने पर उनके संरक्षक (ब्राह्मण) उन्हें यथोचित दण्ड दे सकते थे। सम्भवत: इसी व्यवस्था ने कालान्तर में ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष को जन्म दिया था। कालान्तर में क्षत्रिय ब्राह्मणों के प्रभाव से उत्तरोत्तर मुक्त होते चले गए और उन्हें 'गो विप्र रक्षण' कहा जाने लगा।
3. **वैश्य**—ब्राह्मण व क्षत्रिय के पश्चात् समाज में तृतीय स्थान वैश्य का था। जिस प्रकार शरीर में उदर भोजन को पचाकर जो रस रक्तादि बनाने में सहायक होता है, उसी प्रकार वैश्य द्वारा उत्पन्न अन्न, गोरस आदि समाज के अन्य वर्गों के लिए भी होता था। उनका प्रमुख कार्य कृषि करना, पशुपालन, धार्मिक कार्य व व्यापार आदि था। देश की आर्थिक समृद्धि के लिए उसका महत्वपूर्ण स्थान था।
4. **शूद्र**—समाज में निम्न वर्ण शूद्र का था। उसे शरीर में पैरों की संज्ञा दी गई। वह अधिकारविहीन था। अन्य सभी वर्गों की सेवा करना उसका धर्म था। उसकी अपनी कोई सम्पत्ति नहीं थी। वह सदा ही उच्च वर्गों के शोषण का शिकार रहा। उसे यज्ञ व वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था।

   प्रश्न उठता है कि आर्यों ने समाज के इस भाग को इतना हीन क्यों रखा? उसके प्रति उनका व्यवहार अन्यायपूर्ण था, फिर भी उसे अनुचित क्यों नहीं कहा गया? वास्तव में पूर्व वैदिक काल के साहित्य में तीन वर्णों का ही उल्लेख है। चतुर्थ वर्ण नि:सन्देह पराजित अनार्य जातियों से बना था। पराजितों के प्रति उनकी धारणा पराजितों के लिए ही रही। वस्तुत: दोहरी नैतिकता समाज में आदि काल से बड़ी मात्रा में प्रताड़ना व शोषण के लिए उत्तरदायी ही रही है। वस्तुत: शूद्रों के प्रति अपना औचित्य सिद्ध करने के लिए उसे तमोगुण से जोड़ा गया। अपनी बात को रखने के लिए यहाँ तक कह दिया कि ब्राह्मण भी भ्रष्ट होने पर शूद्र हो जाता है।

प्र.6. आश्रम व्यवस्था के तात्पर्य को स्पष्ट कीजिए।
Clarify the purpose of Ashram system.

उत्तर

आश्रम व्यवस्था
(Ashram System)

हिन्दू सामाजिक जीवन व संस्कृति की मूलभूत विशेषता त्याग है। हिन्दू संस्कृति इहलोक एवं परलोक दोनों की बात करती है। मोक्ष प्राप्ति ही जीवन का परम उद्देश्य कहा गया है। जीवन की गतिशीलता को नियन्त्रित कर मोक्ष तक की यात्रा के लिए ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जो कि मोक्ष प्राप्ति के लिए सरल हो। इस आवश्यकता ने आश्रम व्यवस्था को जन्म दिया।

आश्रम व्यवस्था से तात्पर्य (Meaning of Ashram System)

'आश्रम' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'श्रम' धातु से हुई है। इसका अर्थ प्रयास या परिश्रम करना है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर आश्रम का अर्थ दो रूपों में लिया है। प्रथम उस स्थान में जहाँ प्रयत्न किया जाता है और द्वितीय उद्योग की क्रिया में। **पी० एन० प्रभु** ने आश्रम व्यवस्था को जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु मनुष्य द्वारा की जाने वाली यात्रा के मध्य के विश्राम स्थल की संज्ञा दी है। वास्तव में आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति के मूल लक्ष्य मोक्ष तक जाने का एक साधन है, किन्तु भारतीय मनीषी इस बात को समझते थे कि एकदम मोक्ष तक नहीं पहुँचा जा सकता, अत: एक के बाद एक लक्ष्य को प्राप्त करना आवश्यक है। सर्वप्रथम धर्म फिर अर्थ व काम फिर मोक्ष सम्भव है। वस्तुत: आश्रम व्यवस्था भी इस पुरुषार्थ चतुष्टय को अपने में समाहित किए है। ब्रह्मचर्य आश्रम धर्म का ज्ञान कराता है। गृहस्थ में अर्थ व काम का उपयोग धर्म के अन्दर रहकर करना बतलाया है। वानप्रस्थ

आश्रम में धर्म व मोक्ष की प्रधानता रहती है। वानप्रस्थी अर्थ व काम से दूर हो उसे त्याग देता है। संन्यास आश्रम में व्यक्ति का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष हो जाता है। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था में प्रत्येक आश्रम एक सीढ़ी है। **पी० एन० प्रभु** ने ठीक ही लिखा है, "प्रत्येक आश्रम जीवन का वह पड़ाव है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अगले आश्रम के लिए तैयार करता है।"

इस प्रकार माना जा सकता है कि आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति का वह मूल तत्व है जिसका ध्येय जीवन यात्रा को विभिन्न स्तरों में विभक्त कर मानव को प्रत्येक में कुछ समय रखते हुए जीवन की वास्तविकताओं का ज्ञान कराते हुए मोक्ष की ओर ले जाना है।

प्र.7. आश्रम व्यवस्था का आरम्भ कब हुआ?
When did Ashram System begin?

उत्तर

आश्रम व्यवस्था का आरम्भ
(Beginning of the Ashram System)

यह तो निर्विवाद है कि आश्रम व्यवस्था आर्य सभ्यता की देन है। आर्यों ने भारत में प्रवेश कर अपने पाँव जमाने के पश्चात् ही आश्रम व्यवस्था को जन्म दिया होगा। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से हो जाती है कि ऋग्वेद में कहीं भी आश्रम शब्द का उल्लेख नहीं है। अत: यह माना जाना चाहिए कि आश्रम व्यवस्था उत्तर वैदिक काल में अस्तित्व में आई। आश्रम व्यवस्था के सन्दर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि **डॉ० पी० एम० मोदी, सी० वी० वैद्य** एवं **मैकडोनल** व **कीथ** ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि प्रारम्भ में केवल तीन ही आश्रम थे। वस्तुत: **छान्दोग्य उपनिषद** में भी केवल तीन आश्रमों का संकेत मिलता है। कीथ की धारणा है कि संन्यास को आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत समाहित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि आश्रम व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित है जबकि संन्यासी को समाज का सदस्य न माने जाने की परम्परा है। प्रश्न इस बात का है कि संन्यास को आश्रम व्यवस्था में अस्तित्व कब मिला? विदेशी विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह सांसारिक जीवन से पलायनवाद का विचार था जो कि आर्य व्यवस्था के प्रताड़नवादी व्यवहार से उत्पन्न हुआ था, प्रारम्भ में तो आर्य सुख व स्वर्ग के ही अभिलाषी थे, ऐसा प्रतीत होता है कि यह निवृत्तिमार्गी प्रवृत्ति का परिणाम था।

प्र.8. आश्रम व्यवस्था की उपादेयता पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the utility of Ashram System.

उत्तर

आश्रम व्यवस्था की उपादेयता
(Utility of Ashram System)

सामान्यत: यह धारणा है कि प्राचीन काल में यह व्यवस्था अत्यन्त उत्तम थी और सामान्यत: आश्रम व्यवस्था के अनुरूप ही लोग जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु मूल्यांकन की दृष्टि इसके गुण व दोषों दोनों की ओर चली जाती है। हिन्दू विचारधारा में आश्रम व्यवस्था को जीवन-विधि का एक परम तत्व स्वीकार किया गया है। वर्ण एवं आश्रम सम्बन्धी नियम सिद्धान्तत: हिन्दुओं के जीवन के एक बड़े भाग को नियन्त्रित भी करते हैं। अत: वर्णाश्रम धर्म कहने पर हिन्दू धर्म का ज्ञान भी होता है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि समाज के अधिकांश वर्ग ने कभी भी इसका पूर्ण आचरण नहीं किया। मानवीय उद्देश्यों के सापेक्ष महत्व में परिवर्तन होने से जब लौकिक, भौतिक और आर्थिक उद्देश्यों की जीवन में प्रधानता हो गई तो यह व्यवस्था लुप्त होती चली गई। इतना सब कुछ होते हुए इसके व्यावहारिक महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। वस्तुत: बाल्यावस्था में अनन्त शक्ति तो होती है, परन्तु अनुभव नहीं होता। युवावस्था में सृजन शक्ति होती है, परन्तु अल्हड़ता रहती है। प्रौढ़ावस्था में अनुभव होता है, किन्तु व्यक्ति की शक्ति का पतन आरम्भ हो जाता है और व्यक्ति अन्तर्मुखी होने लगता है। अत: जीवन को व्यवस्थित करना परम आवश्यक होता है। भारतीयों ने इस वैज्ञानिक तथ्य को समझा और आश्रम व्यवस्था द्वारा जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य आश्रम की व्यवस्था कर अनन्त शक्ति को ज्ञानार्जन में लगाते हुए गुरु के नियन्त्रण में रखा गया। युवावस्था में सृजन शक्ति को गृहस्थाश्रम में लगाया और अल्हड़ता पर अंकुश रखने के लिए अर्थ और काम के साथ धर्म को भी जोड़ दिया। प्रौढ़ावस्था में घटती शक्ति तो पुन: स्थिर करने के लिए संयमित वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था की और संचित ज्ञान व अनुभव को समाज को देने की व्यवस्था कर समाज कल्याण की व्यवस्था की और अन्तत: पूर्ण संयमित व्यक्ति को मोक्ष साधना की ओर प्रेरित करने के लिए संन्यास आश्रम की व्यवस्था की।

प्र.9. आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत चारों आश्रमों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
Give a brief description of the four ashrams under Ashram System.
***अथवा* ब्रह्मचर्य आश्रम से आप क्या समझते हैं?** **(2021)**
***Or* What do you understand by Brahmacharya Ashram?**

उत्तर चारों आश्रमों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

1. **ब्रह्मचर्य आश्रम**—ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश द्वारा उत्तरदायी जीवन का आरम्भ होता है। उपनयन संस्कार द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश होता है। उपनयन का सूक्ष्म अर्थ ही गुरु के पास ले जाने से है। उपनयन संस्कार की आयु विभिन्न वर्गों के लिए अलग-अलग निर्दिष्ट है। ब्राह्मण का उपनयन 8 से 10 वर्ष के मध्य, क्षत्रिय का 10 से 14 वर्ष के मध्य एवं वैश्य का 12 से 16 वर्ष के मध्य उपनयन संस्कार हो जाना चाहिए। शूद्रों के लिए उपनयन संस्कार की व्यवस्था नहीं थी। स्पष्ट है कि आश्रम व्यवस्था भी मूलत: तीन वर्गों के लिए रही होगी, उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरुकुल में ब्राह्मण को धर्मशास्त्र सम्बन्धी, क्षत्रिय को शस्त्र सम्बन्धी, वैश्य को व्यापार सम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी जहाँ उन्हें गुरु की आज्ञा के अधीन रहना होता था। वैदिक साहित्य का अध्ययन अपेक्षित था। गुरु व शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता था। मनु ने विद्यार्थी के लिए इस आश्रम में रहते हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात कही है। मनु ने ब्रह्मचारी का अर्थ शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से ऐसे मार्ग का अनुसरण करना बतलाया है जिससे मन, बुद्धि व शरीर स्वस्थ हो तथा आत्मा पवित्र हो। इस आश्रम में रहते हुए विद्यार्थी को भिक्षा द्वारा निर्वाह करना होता था, वह लौकिक क्रियाओं से दूर रहता था। 25 वर्ष की आयु बीत जाने पर विद्या पूर्ण कर वह घर वापस आता और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।
2. **गृहस्थ आश्रम**—स्मृतियों, महाकाव्यों एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों में गृहस्थ आश्रम की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। महाभारत के शान्तिपर्व में इसे महाश्रम कहा गया है। मनुस्मृति में इसे प्राणाधार कहा गया है, शान्तिपर्व में इसकी तुलना माता से की गई है। धर्मशास्त्रों में इस आश्रम की सीमा 50 वर्ष तक बतलाई है। **मनु** के अनुसार, ब्रह्मचर्य आश्रम की अवस्था पूर्ण कर व्यक्ति सजातीय सुकन्या से विवाह करे और यज्ञ, स्वाध्याय, धर्मचर्चा और पुत्र परम्परा द्वारा अपने कुल को बनाये रखे। सही मार्गों से अर्थ का उपार्जन करे तथा सम्पूर्ण सुखों का भोग करे। गृहस्थ आश्रम में पंच यज्ञों को करने का भी प्रावधान था। इस प्रकार सम्पूर्ण सुखों का भोग करके व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता था।
3. **वानप्रस्थ आश्रम**—गृहस्थ आश्रम में सभी सुखों का भोग कर व्यक्ति 50 वर्ष की आयु के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इस आश्रम में व्यक्ति पत्नी के साथ अथवा बिना पत्नी के प्रविष्ट हो सकता था। सपत्नीक बात इसलिए रखी गई होगी क्योंकि लम्बे समय तक गृहस्थ में रहने के कारण मोह का त्याग एकदम सम्भव नहीं हो सकता। इसमें व्यक्ति इन्द्रियजनित सुखों को दूर कर पवित्र जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करता था। **मनु** ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि "जब गृहस्थ यह देख ले कि उसके शरीर की त्वचा ढीली पड़ गई है तथा सिर के बाल सफेद हो गए हैं, उसके पुत्र की सन्तान हो गई है तब वह जंगल की ओर प्रस्थान करे।" वह अपनी क्षुधा को कन्द-मूल फल खाकर शान्त करता था तथा तपस्या करता था। वस्तुत: वानप्रस्थ आश्रम में वह ब्रह्मचर्य आश्रम में प्राप्त ज्ञान तथा गृहस्थ आश्रम में प्राप्त अनुभव का चिन्तन कर ज्ञान हेतु चिन्तन करता था और अपने पास आने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा देता था। अब वह परिवार का सदस्य न रहकर समाज का सदस्य हो जाता था। इस प्रकार, वह परमतत्व को प्राप्त करने की ओर स्वत: को अग्रसर करता था।
4. **संन्यास आश्रम**—75 वर्ष की आयु के पश्चात् व्यक्ति स्वत: को वानप्रस्थ आश्रम में पूर्ण तैयार कर संन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। वह अपने सामाजिक नाम का तक त्याग कर देता था। **मनु** ने लिखा है कि आयु के तीसरे भाग को वनों में रहकर साधना में व्यतीत कर चौथे भाग में स्थान तथा सम्बन्ध के सब प्रकार के साथ को छोड़कर परिव्राजक हो जाये। वह किसी एक स्थान पर स्थायी नहीं रहता था। इस आश्रम में व्यक्ति आत्मा व परमात्मा के गूढ़ रहस्यों के निराकरण में चिन्तनशील रहता था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय हिन्दू परिवार की प्रमुख विशेषताओं एवं कार्यों पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the main characteristics and works of Indian Hindu family.
***अथवा* संस्कार से क्या अभिप्राय है? भारतीय परिवार के सन्दर्भ में इनकी विवेचना कीजिए।**
***Or* What do you understand by Sanskara? Discuss this in the context of Indian family.**

उत्तर

भारतीय परिवार की विशेषताएँ
(Characteristics of Indian Family)

भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण स्पष्ट करता है कि भारतीय परिवार एक गतिशील संस्था है। समय के अनुरूप इसके स्वरूप में परिवर्तन भी आता रहा। इतना सब कुछ होते हुए भी भारतीय परिवार के मूलभूत ठोस आधार के कारण आज भी इसकी कतिपय सामान्य विशेषताएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। संक्षेप में भारतीय परिवार की सामान्य विशेषताएँ निम्नवत् इंगित की जा सकती हैं—

1. **संयुक्त परिवार**—भारतीय परिवार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसका संयुक्त परिवार प्रथा का होना है। संयुक्त परिवार में माता-पिता व बच्चों के अतिरिक्त तीन पीढ़ियों तक के सदस्य आते हैं। वैदिक काल से ही हमें संयुक्त परिवार प्रथा की स्थापना दृष्टिगोचर होती है।
2. **पारिवारिक सौहार्द**—भारतीय परिवार की दूसरी विशेषता पारिवारिक सौहार्द है। वैदिक साहित्य में उल्लेख मिलता है कि "माता-पिता के प्रति पुत्र, पति के प्रति पत्नी, भाई के प्रति भाई, बहिन के प्रति बहिन मधुर एवं प्रेमपूर्वक व्यवहार करें, सभी आपस में मधुर बोलें।" पारस्परिक सौहार्द का इससे बड़ा और क्या उदाहरण हो सकता है कि विवाह के पश्चात् पुत्रियों को उसके मायके वालों के द्वारा विस्मृत नहीं किया जाता और न ही पुत्र अपने परिवार से एकदम अलग हो जाता है।
3. **कर्तव्य की महत्ता**—भारतीय परिवार की सफल एवं आदर्श जीवन पद्धति में कर्तव्य की महत्ता स्पष्ट दिखाई देती है। कर्तव्य की प्रधानता के कारण ही आज भी आदर्श परिवार में परिवार के मुखिया की आज्ञा का प्रतिवाद कठिन है।
4. **नारी की महत्ता**—भारतीय परिवार में स्त्री की महत्ता को नहीं नकारा जा सकता। ऋग्वेद तो पत्नी के बिना घर की कल्पना भी नहीं करता है। भारतीय धर्मशास्त्रों में नारियों की पूजा में ही देव निवास की बात तक कही है। स्पष्ट है कि नारी को भारतीय परिवार में उच्च स्थान प्राप्त था।
5. **आतिथ्य**—भारतीय परिवार में अतिथि सत्कार को अत्यधिक महत्व दिया गया है। अतिथि को देव की संज्ञा दी गई है। अतिथि को संरक्षण देना पुण्य समझा जाता था; चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो। अतिथि सत्कार मुख्य धर्म था। मनुस्मृति में अतिथि सत्कार न करने वाले को श्वास लेते हुए भी प्राणहीन की संज्ञा दी गई है।
6. **एक विवाह की प्रधानता**—भारतीय समाज का सर्वेक्षण यद्यपि यह स्पष्ट करता है कि भारत में बहु-विवाही परिवार भी थे, किन्तु आदर्श भारतीय परिवार में एक विवाह को ही महत्व दिया गया है। भारतीय दर्शन में विवाह की व्याख्या पश्चिम से भिन्न है, यहाँ उसे यौन सम्बन्धों के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों से भी बाँधा गया है।
7. **उत्तराधिकार**—पारिवारिक सम्पत्ति परिवार के सभी सदस्यों की मानी जाती थी। **मनुस्मृति** पुत्र, स्त्री व दास की सम्पत्ति का स्वामी भी परिवार के मुखिया को ही मानती है, किन्तु स्त्री दहेज से प्राप्त अपने स्त्रीधन को अलग रख सकती थी। पिता की मृत्यु के पश्चात् ही पुत्रों में सम्पत्ति बाँटी जाती थी, किन्तु पिता के जीवित रहते हुए भी यह बँटवारा हो सकता था। ज्येष्ठ पुत्र यदि योग्य हो तो उसे सम्पत्ति का बीसवाँ भाग ज्येष्ठांश के रूप में अधिक मिलता था। **याज्ञवल्क्य स्मृति** पिता की मृत्यु के पश्चात् अविवाहित कन्या को भी समान उत्तराधिकारी मानती है अर्थात् पिता के पुत्रहीन होने पर पिता पुत्री को उत्तराधिकारिणी नियुक्त कर सकता था। कुल मिलाकर उत्तराधिकार के नियम जटिल, किन्तु सरल व प्रेम तथा सौहार्द पर आधारित थे।
8. **नियमों की प्रधानता**—भारतीय परिवार की प्रमुख विशेषता इसका शास्त्रीय नियमों से बँधा रहना भी है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त प्रत्येक हिन्दू परिवार का सदस्य संस्कार, व्रत, उपवास, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, त्योहारों के विधानों से बँधकर कार्य करता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य की एक-दूसरे के प्रति कार्य अपेक्षाओं की आधारशिलाएँ बनी हैं जिनके अनुरूप ही प्रत्येक सदस्य अपना आचरण व व्यवहार करता है।

भारतीय परिवार के प्रमुख कार्य
(Main Works of the Indian Family)

विश्व की समाज व्यवस्था का अनुशीलन स्पष्ट करता है कि भारतीय परिवार कतिपय अपने विशिष्ट कार्यों के कारण विश्व की अन्य पारिवारिक व्यवस्थाओं से कुछ अर्थों में भिन्न है। विवाह, सन्तानोत्पत्ति व सन्तान का पालन-पोषण तो प्राय: विश्व के सभी परिवारों में प्रमुख कार्य है, किन्तु पंच ऋणों से मुक्ति पाना, पंच महायज्ञ एवं संस्कारों का सम्पादन भारतीय परिवार के विशिष्ट कार्य हैं। संक्षेप में भारतीय परिवार के कतिपय विशिष्ट प्रमुख कार्यों का विवरण निम्नांकित हैं—

1. **पंच ऋण**—प्राचीन भारतीय मनीषियों की धारणा थी कि प्रत्येक व्यक्तिऋषियों, देवताओं, अतिथि व अन्य प्राणियों से समय-समय पर ज्ञान साधन व शक्ति प्राप्त कर अपने जीवन को सुखमय बनाता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण, अतिथि-ऋण एवं भूत-ऋण से उऋण होने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। इन पाँचों ऋणों से मुक्ति का एकमात्र उपाय है—पंच महायज्ञ।
2. **पंच महायज्ञ**—(i) **ब्रह्म यज्ञ**—ब्रह्म यज्ञ को ऋषि यज्ञ के नाम से भी जाना जा सकता है। इस यज्ञ से व्यक्ति ऋषियों के प्रति विद्याध्ययन कर सम्मान प्रकट करता है। इस यज्ञ के अवसर पर स्वाध्याय का नियम था।
   (ii) **देव यज्ञ**—देवताओं के प्रति अपनी आस्था व कृज्ञता प्रकट करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति को प्रात: व सन्ध्या काल में देवी-देवताओं को अग्नि में घृत की आहुतियाँ देनी होती थीं।
   (iii) **पितृ यज्ञ**—पितरों के प्रति समर्पण हेतु तर्पण व श्राद्ध का प्रावधान है।
   (iv) **भूत यज्ञ**—पशु-पक्षी व श्वान आदि को भोजन डाला जाता है तथा पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, प्रजापति व वैश्वदेव को भोजन की बलि देने का प्रावधान है।
   (v) **अतिथि यज्ञ**—स्वयं भोजन करने से पूर्व किसी अतिथि को भोजन कराने का प्रावधान है।
   भारतीय परिवार के प्रमुख कार्यों में ऋणों से उऋण होने के ये पंच यज्ञ कर्मकाण्ड को ही प्रदर्शित नहीं करते हैं, अपितु वे प्रत्येक व्यक्ति को कर्तव्य का ज्ञान कराते हैं। ब्रह्म यज्ञ व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है तो देव यज्ञ उत्तम विचारों को प्रेरणा देता है। पितृ यज्ञ माता-पिता व बड़ों की सेवा का भाव उत्पन्न करता है, भूत यज्ञ त्याग की भावना को उत्पन्न करता है। अतिथि यज्ञ मानव सेवा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रकार इन पंच यज्ञों के पीछे छिपी अन्तर्दृष्टि की महत्ता से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।
3. **संस्कार**—भारतीय सामाजिक व्यवस्था में संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान है और संस्कारों को परिवार के प्रमुख कार्यों के साथ जोड़ दिया गया है, वस्तुत: धर्म पर आधारित वे पद्धतियाँ जिनसे व्यक्ति के जीवन को परिशुद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है संस्कार कहलाती हैं। भारतीय साहित्य का अध्ययन करते समय संस्कारों के सन्दर्भ में दृष्टि गृह्यसूत्रों की ओर चली जाती है जहाँ संस्कारों का विस्तृत उल्लेख है, किन्तु गृह्यसूत्रों में संस्कारों की संख्या के विषय के पर्याप्त मतभेद हैं, गौतम धर्मसूत्र में 40, वैखानस गृह्यसूत्र में 18, पारस्कर बोधायन व वाराह गृह्यसूत्रों में 13, मनुस्मृति में 13, ऋग्वेद में 3 संस्कारों का उल्लेख मिलता है तथा ऋषि दयानन्द ने 16 संस्कार निर्धारित किए हैं। सामान्यत: 16 संस्कारों की ही महत्ता रही है, जो अग्रवत् हैं—
   (i) **गर्भाधान संस्कार**—गर्भाधान संस्कार का प्रमुख उद्देश्य उत्तम सन्तान की प्राप्ति है। गौतम एवं बोधायन ने गर्भाधान हेतु उचित काल व धार्मिक कार्यों का उल्लेख किया है। विष्णु-पुराण व मनुस्मृति में भी विशेष विधान दिए हैं किन्तु आधुनिक समाज में इससे सम्बन्धित दिए गए निर्देशों का पालन नहीं किया जाता है।
   (ii) **पुंसवन संस्कार**—पुत्र की कामना करने वाले संस्कार को पुंसवन कहा जाता है। **मनुस्मृति** के अनुसार यह गर्भधारण के चतुर्थ मास में किया जाना चाहिए। गृह्यसूत्रों में दूसरे से आठवें माह तक इसे सम्पादित करने का उल्लेख किया गया है।
   (iii) **सीमन्तोन्नयन**—गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए गर्भधारण के चतुर्थ माह में पति पत्नी के केशों को सँवारता है। मातृपूजन व नान्दी श्राद्ध का भी उल्लेख मिलता है।

(iv) **जातकर्म**—जातकर्म संस्कार सन्तान के उत्पन्न होते ही करने का विधान है। यह बच्चे के नाभिछेदन से पूर्व होता है। पिता शिशु को तीन बार सूँघकर सोने की शलाका से शहद, घी या मक्खन चटाता है। वर्तमान में यह आशीर्वाद तक ही सीमित रह गया है।

(v) **नामकरण**—मनुस्मृति के अनुसार जन्म के 10वें या 12वें दिन नामकरण संस्कार होता है और शिशु का नाम रखा जाता है।

(vi) **निष्क्रमण**—मनुस्मृति के अनुसार शिशु के जन्म के चतुर्थ मास में शिशु को घर से बाहर निकालने की क्रिया निष्क्रमण संस्कार कहलाती है। शिशु का पिता शिशु को सूर्यदर्शन कराता है।

(vii) **अन्नप्राशन**—छह माह का हो जाने पर शिशु को प्रथम बार अन्न आहार कराया जाता है। इसे ही अन्नप्राशन संस्कार कहा जाता है।

(viii) **चूड़ाकर्म**—इस संस्कार को केशोच्छेदन भी कहते हैं। सामान्यत: यह संस्कार जन्म के तृतीय वर्ष में किया जाता है।

(ix) **कर्णछेदन**—शिशु के जन्म के तीन से पाँचवें वर्ष तक शिशु के कर्ण छेद कर कर्णछेदन संस्कार कराने का प्रावधान है। सभी हिन्दू परिवारों में इसका प्रचलन नहीं है।

(x) **विद्यारम्भ या पट्टीपूजन**—शिशु के जन्म के तीसरे, पाँचवें व सातवें वर्ष में विधिवत् पट्टी-पूजन कर शिशु का हाथ पकड़कर पट्टी पर ओम लिखवाया जाता है। इसी दिन से उसे विद्यार्जन के योग्य समझा जाता है।

(xi) **उपनयन**—सोलह संस्कारों में उपनयन संस्कार का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। उपनयन संस्कार से सीधा तात्पर्य गुरु के समीप ले जाने से है। इस संस्कार के पश्चात् विद्यार्थी गुरु के समीप विद्यार्जन के लिए जाता था। शूद्र वर्ग को छोड़कर शेष तीनों वर्गों के यज्ञोपवीत का प्रावधान था। ब्राह्मण आठवें वर्ष, क्षत्रिय ग्यारहवें वर्ष, वैश्य बारहवें वर्ष यज्ञोपवीत धारण करता था। उपनयन संस्कार से बालक का दूसरा जन्म माना जाता था। वर्तमान में यज्ञोपवीत संस्कार मात्र औपचारिकता रह गई है। अधिकांशत: तो इसे विवाह से पूर्व भी करने लगे हैं।

(xii) **वेदारम्भ**—उपनयन संस्कार के पश्चात् वेदों के पठन-पाठन के लिए विद्यार्थी को वेदारम्भ संस्कार करना होता था।

(xiii) **गोदान**—सोलह वर्ष की आयु में विद्यार्थी केश कटवाकर आचार्य को गोदान करता था।

(xiv) **समावर्तन**—विद्यार्जन कर गुरु-दक्षिणा देकर विद्यार्थी स्नातक की उपाधि प्राप्त कर अपने घर लौट आता था। इस प्रकार विद्या अर्जन की समाप्ति पर गुरु से स्नातक की उपाधि प्राप्त करना समावर्तन संस्कार कहलाता था।

(xv) **विवाह**—भारतीय परिवार में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह के पश्चात् ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। मनु ने पत्नी को पुरुषार्थ का मूल बतलाया है। विवाहित पुरुष को ही धर्मशास्त्रों ने यज्ञ का अधिकार दिया है।

(xvi) **अंत्येष्टि संस्कार**—यह संस्कार व्यक्ति के बाद विधि-विधान से किया जाता है।

प्र.2. वर्ण-व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? इसकी उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

What do you understand by Varna System. Discuss the concepts related to its origin.

उत्तर

वर्ण-व्यवस्था
(Varna System)

भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता वर्ण-व्यवस्था भी है। इस व्यवस्था के विभिन्न रूप भारतीय इतिहास में देखने को मिलते हैं।

वर्ण से तात्पर्य (Meaning of Varna)

वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ' धातु से हुई है। इसका अर्थ 'वरण करने' या 'चुनने' से है। इसका प्रचलित अर्थ 'रंग' भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चारों श्रेणियों को वर्ण कहा गया है। समाज में इन चारों के कार्य तथा स्थान निश्चित करने की योजना को 'वर्ण-व्यवस्था' कहा जाता है।

वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति (Origin of Varna System)

वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह प्रश्न विद्वानों के लिए विवादास्पद है। इस सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण ही विभिन्न विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। संक्षेप में प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं—

1. **परम्परागत कल्पना**—वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में परम्परागत कल्पना का सिद्धान्त सबसे प्राचीन है। इस सिद्धान्त के अनुसार विराट पुरुष के अंगों से वर्णों की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में उल्लेख है कि विराट पुरुष के मुँह से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य एवं पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। 'महाभारत के शान्तिपर्व' में भी इसी धारणा का संकेत मिलता है—

   "मुखजा ब्राह्मणास्तात् बाहुजाः क्षत्रियाः स्मृताः।
   उरूजा धनिनो राजन् पादजाः परिचारकाः॥" —शान्तिपर्व 296/6

   वास्तव में इस धारणा के अनुसार ईश्वर विश्व का निर्माता है। कौशल्या ने राम के मुँह में तथा यशोदा ने कृष्ण के मुँह में विश्व के दर्शन किए थे। वस्तुतः अंगों से वर्णों की उत्पत्ति प्रतीकात्मक अर्थ को लिए है। ब्राह्मण की उत्पत्ति मुँह से कही गई है। मुँह का कार्य व स्थान ब्राह्मण के कार्य व स्थान के समान है। मुँह की शरीर के सन्दर्भ में और ब्राह्मण की समाज के सन्दर्भ में श्रेष्ठता है। ब्राह्मण के कार्य मुँह के सदृश अध्ययन-अध्यापन में बोलना व यजन-याजन है। क्षत्रिय की उत्पत्ति बाहु से है। क्षत्रिय का कार्य रक्षामूलक होने के कारण हाथ के सदृश है। मुँह तथा बाहु से नीचे उरू है। उरू का कार्य शरीर को सहायता देना है। ऐसे ही वैश्य का कार्य उत्पादन क्रिया कर समाज को सहायता देना है। शूद्र का स्थान पैरों के समकक्ष है। पैर ऐसे अनेक कार्य करते हैं जिसका आनन्द उसे नहीं मिलता। इसी प्रकार शूद्रों के श्रम के फल का बड़ा अंश समाज के उच्चतर वर्गों को मिलता है।

2. **रंग का सिद्धान्त**—वर्णों की उत्पत्ति का आधार रंग है। यह सिद्धान्त **भृगु के वर्ण के सिद्धान्त** पर आधारित है। इसके अनुसार ब्राह्मण का रंग श्वेत, क्षत्रिय का लोहित, वैश्य का पीत एवं शूद्र का असित होता है। रंगों के आधार पर वर्ण की उत्पत्ति का यह सिद्धान्त उचित प्रतीत नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर रंग त्वचा के रंग का नहीं अपितु सत, रज एवं तमो गुणों का प्रतीक है। आज के वैज्ञानिक युग में त्वचा के रंग के आधार पर वर्ण की उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

3. **कर्म एवं धर्म का सिद्धान्त**—वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति का आधार कर्म एवं धर्म ही है। इस बात को मानने वाले विद्वानों ने सामाजिक व्यवस्था के निर्धारण को आधार बनाया है।

   वैदिककालीन समाज की चार आवश्यकताओं ने ही वर्ण-व्यवस्था को जन्म दिया। तत्कालीन समाज की चार महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ थीं—प्रथम, पठन-पाठन व बौद्धिक व धार्मिक कार्य; द्वितीय, समाज की रक्षा व शासन व्यवस्था; तृतीय, आर्थिक कार्यों की पूर्ति एवं चतुर्थ, सेवा-सुश्रूषा। इन चारों आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज को चार वर्गों में विभक्त कर दिया गया और प्रत्येक वर्ग को अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना उसका धर्म बताया गया।

4. **गुण का सिद्धान्त**—वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति का आधार गुण को मानने वाले विद्वान महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर एवं जलदेवता के संवाद का उदाहरण देते हैं। **जलदेवता ने युधिष्ठिर से पूछा**, "ब्राह्मण कौन है? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "सत्यवादी, दानी, दयालु, क्षमाशील, चरित्रवान, दूसरों के प्रति सहानुभूति रखने वाले तपस्वी व्यक्ति को ही स्मृतियों में ब्राह्मण कहा गया है।" जलदेवता ने इस पर प्रश्न किया कि "यदि ये गुण किसी शूद्र में पाये जाएँ तो उसे किस श्रेणी में रखोगे" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "यदि ये गुण किसी शूद्र में हैं तो वह ब्राह्मण है और ब्राह्मण में नहीं हैं तो वह ब्राह्मण नहीं है।" इस प्रकार इस दृष्टि से जन्म से सभी शूद्र हैं एवं गुणों से ही उनका वर्ण निर्धारण हुआ। इस प्रकार सतोगुणी ब्राह्मण, रजोगुणी क्षत्रिय, रजोगुणी व तमोगुणी का मिश्रण वैश्य एवं तमोगुणी शूद्र कहलाया।

5. **जन्म का सिद्धान्त**—जन्म के आधार पर वर्ण की व्यवस्था का सिद्धान्त भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति का वर्ण उसके जन्म के आधार पर होता है अर्थात् उसके माता-पिता जिस वर्ण के होंगे, उसका भी वही वर्ण होगा। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होगा, यदि ऐसा न होता तो क्षत्रियोचित कार्य करने वाले द्रोणाचार्य ब्राह्मण क्यों कहलाते? अश्वत्थामा में ब्राह्मणोचित गुण न होते हुए भी वह ब्राह्मण कहलाया। युधिष्ठिर क्षत्रिय थे जबकि उनमें ब्राह्मणोचित सतोगुण था।

इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन स्पष्ट करता है कि वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के मूल में यह प्रश्न ही है कि वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म था या कर्म व गुण। प्राचीन साहित्य में जहाँ एक ओर कर्म व गुणों की प्रधानता का संकेत मिलता है, वहीं युद्ध स्थल में कृष्ण द्वारा अर्जुन से उनके स्वभावोचित क्षत्रिय व्यवहार की बात कही गई है। **डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, महात्मा गांधी, डॉ० घुरिये, के० एम० पणिक्कर, पी० एन० प्रभु** ने इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। प्राचीन साहित्य एवं उपर्युक्त विद्वानों के तर्कों की मीमांसा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष ही निकाला जा सकता है कि वर्ण-व्यवस्था के निर्धारण में कर्म व गुण की प्रधानता थी, किन्तु जन्म से प्राप्त स्वाभाविक गुणों को भी नकारा नहीं जा सकता।

प्र.3. वर्ण-व्यवस्था के प्रारम्भिक स्वरूप व विस्तार पर प्रकाश डालते हुए यह बताइए कि वर्ण और जाति में क्या मूल अन्तर है?
Throwing light on the initial form and expansion of the caste system, tell the basic difference *Varna* and *Jati*?

उत्तर

वर्ण-व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप व विस्तार
(Initial Form and Expansion of the Caste System)

वर्ण-व्यवस्था की संरचना आर्यों के भारत आगमन के पश्चात् हुई। आर्यों के भारत आगमन के समय को चार सहस्र वर्ष से भी अधिक हो गए हैं, किन्तु वर्ण-व्यवस्था अपने जीर्ण-शीर्ण रूप में अब भी है। इतनी अमिट छाप छोड़ने वाली वर्ण-व्यवस्था के पीछे उद्देश्य अत्यन्त उच्च था। समाज की आवश्यकतानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में समाज का विभाजन किया गया जिसका आधार कर्म व गुण थे। इस बात की पुष्टि ऋग्वेद के इस सूक्त से हो जाती है जिसमें एक ब्राह्मण कहता है कि मैं एक कवि हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी माता अन्न पीसने वाली है। इसी प्रकार देवापि एवं शान्तनु दो भाई थे, किन्तु कर्म के आधार पर देवापि ब्राह्मण थे और शान्तनु क्षत्रिय। यह भी उल्लेखनीय है कि वर्ण-व्यवस्था का आरम्भिक स्वरूप भी अत्यन्त लचीला था, इसकी सरलता का अनुमान इसी बात से लग जाता है कि सर्वोच्च स्थान पर प्रतिस्थापित ब्राह्मण ने निर्धनता को स्वीकार किया, राजकीय भाग को नहीं। विश्व की अन्य सभी सभ्यताओं में यह दृष्टिगोचर होता है कि सर्वोच्च स्थान प्राप्त वर्ग ने ही सर्वाधिक शासकीय भोग किया। भारतीय वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण ने त्यागवृत्ति को स्वीकार किया, शासक को पूर्ण स्वतन्त्र न छोड़े जाने की प्रवृत्ति ने इस दृष्टि को जन्म दिया था। यदि ब्राह्मण सर्वोच्च शक्ति अपने हाथ में रखते तो उन पर किसका नियन्त्रण होता? शासक वर्ग के मनमानी पर उतरने पर ब्राह्मण वर्ग ने उसे नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया। परशुराम द्वारा इक्कीस बार क्षत्रियों का दमन इसका उदाहरण है।

प्रारम्भ की सादगी शनैः-शनैः जटिल होने लगी। उत्तर वैदिक काल में ही यह पृथकता की ओर अग्रसर हो गई। प्रत्येक वर्ण के लिए निर्धारित होने वाले नियमों व उपनियमों ने ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष को जन्म दिया। महात्मा बुद्ध के जन्म से पूर्व उनके सम्बन्ध की किंवदन्तियाँ इसका प्रमाण हैं। सूत्रकाल तक आते-आते इसमें और अधिक जटिलता आ गई। सूत्रकारों ने तो इसे और अधिक संगठित व व्यवस्थित रूप देने में कोई कसर न छोड़ी। ब्राह्मण की सर्वश्रेष्ठता स्थापित हो गई। शूद्र बौद्धिक व धार्मिक कार्यों से अलग कर दिया गया। वर्ण परिवर्तन अत्यन्त कठिन हो गया। विवाह व खान-पान सम्बन्धी नियमों में कठोरता आ गई।

महाकाव्य काल में इसने जन्मना का रूप धारण कर लिया। कर्ण को क्षत्रियोचित गुण होने पर भी सूतपुत्र ही कहा गया। द्रोणाचार्य, परशुराम, अश्वत्थामा एवं कृपाचार्य क्षत्रियोचित स्वभाव व कर्म होने पर भी ब्राह्मण ही कहलाए, एकलव्य को शूद्र ही कहा गया। अब सूत्रकारों ने पारस्परिक विवाहों को अनुलोम व प्रतिलोम विवाहों के रूप में इंगित कर दिया। छठी शताब्दी ई. पू. तक तो यह इतनी जटिल हो गई कि बुद्ध व महावीर ने इसमें आई कुरीतियों का विरोध भी किया। **मनु** ने आगे चलकर विभिन्न वर्गों के लिए विस्तृत नियमों का प्रतिपादन कर दिया।

भारत में प्रविष्ट होने वाली विदेशी जातियों एवं उनसे व भारतीयों से रक्त मिश्रण के आधार पर उत्पन्न होने वाली सन्तानों को वर्णसंकर के रूप में स्वीकार किया गया। अब नए समूह व नई जातियों का अस्तित्व सामने आया। शनैः-शनैः इसमें इतनी जटिलता आ गई कि अवसान का क्रम कब आरम्भ हो गया, यह पता लगाना कठिन हो गया। व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करता रहा, किन्तु जन्म के आधार पर उसने अपने वर्ण के दावे को नहीं छोड़ा। इस प्रकार वर्ण के स्थान पर जाति ने जन्म ले लिया।

वर्ण एवं जाति में अन्तर
(Distinction between Varna and Caste)

वर्ण एवं जाति इन दो अवधारणाओं में स्पष्ट अन्तर है। यह ठीक है कि सामाजिक स्थिति में वर्ण व जाति एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, किन्तु तीन आधारों पर हम इन्हें एक-दूसरे से आसानी से पृथक् कर सकते हैं। **प्रथम**, तथ्य यह है कि वर्ण में कर्म की प्रधानता थी जिसमें कि कालान्तर में जन्म की प्रधानता भी प्रविष्ट हो गई। इसके विपरीत जाति प्रारम्भ से ही जन्म प्रधान है। **द्वितीय**, वर्ण-व्यवस्था में समाज स्पष्ट रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार रूपों में विभक्त था, जबकि जाति व्यवस्था में असंख्य उपजातियों का जन्म हो गया है। **तृतीय**, विवाह, सामाजिक मेल-मिलाप व भोजन आदि के सन्दर्भ में जितनी कठोरता जाति व्यवस्था में है उतनी वर्ण में नहीं है।

प्र.4. धर्म से आप क्या समझते हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
What do you understand by religion? Explain in detail.

उत्तर

धर्म
(Religion)

धर्म एक अत्यन्त व्यापक अवधारणा है। धर्म के अर्थ को 'रिलीजन' शब्द के अनुवाद के रूप में नहीं समझा जा सकता। धर्म उस मौलिक शक्ति के रूप में समझा जा सकता है जो भौतिक और आध्यात्मिक अवस्था का आधार रूप है और जो उस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

'रिलीजन' शब्द के अन्तर्गत अलौकिक विश्वास एवं अधिप्राकृतिक शक्तियाँ आती हैं, परन्तु हिन्दू धर्म का सम्बन्ध मुख्यत: मनुष्य के कर्त्तव्य-बोध से है। हिन्दू धर्म एक ज्ञान है जो अलग-अलग परिस्थितियों में व्यक्तियों के विभिन्न कर्त्तव्यों को स्पष्ट करता है, उन्हें कर्त्तव्य पथ पर चलते रहने की प्रेरणा प्रदान करता है। मानवोचित गुणों को उनमें विकसित करता है। **गिलिन** और **गिलिन** के अनुसार, "एक सामाजिक समूह में व्याप्त उनके संवेगात्मक विश्वासों को जो किसी अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित हैं और साथ ही ऐसे विश्वासों से सम्बन्धित प्रकट व्यवहारों, भौतिक वस्तुओं एवं प्रतीकों को धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र में सम्मिलित माना जा सकता है।" वेद, उपनिषद्, गीता, स्मृतियाँ, पुराण तथा मनुष्य का अन्त:करण हिन्दू धर्म के मूल स्रोत हैं। इन धर्म-ग्रन्थों में धर्म की विस्तृत व्याख्या की गई है—

1. **धर्म निष्काम भक्ति के रूप में—स्वामी विवेकानन्द** के अनुसार, "धर्म वह है जो मानव को इस संसार और परलोक में आनन्द की खोज के लिए प्रेरित करता है। धर्म कर्म पर प्रस्थापित है। धर्म मानव को रात-दिन इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए कार्य करवाता है।' धर्म निष्काम भक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है। गीता में निष्काम कर्म की ओर व्यक्ति को अग्रसर किया गया है, उसे सुझाया गया है कि बिना फल की कामना के अपना कर्म करना चाहिए, अपने कर्त्तव्य-पथ पर सदैव बढ़ना चाहिए। परम सत्य या ईश्वर के रूप में भी धर्म को माना गया है। धर्म का प्रयोग रीति-रिवाजों, परम्पराओं, सामाजिक नियमों और कानूनों के रूप में भी किया गया है। **डॉ० राधाकृष्णन** के अनुसार, 'जिन सिद्धान्तों का हमें अपने दैनिक जीवन में और सामाजिक सम्बन्धों में पालन करना है, वे उस वस्तु द्वारा नियत किए गए हैं, जिसे धर्म कहा जाता है। यह सत्य का जीवन में मूर्त रूप हैं और हमारी प्रकृति को नये रूप में ढालने की शक्ति है।"
2. **धर्म का प्रयोग नैतिक कर्त्तव्यों के रूप में**—धर्म को नैतिक कर्त्तव्यों के रूप में भी प्रयोग किया गया है। मनुस्मृति के अनुसार, धर्म के दस लक्षण हैं। ये लक्षण इस प्रकार हैं-**धैर्य, क्षमा, दान, अस्तेय (चोरी न करना), पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध पर नियन्त्रण।** पुण्य और नैतिक व्यवस्था के रूप में भी धर्म का प्रयोग किया गया है। व्यक्ति के पुण्य-कर्म ही मृत्यु के बाद उसका साथ देते हैं। धर्म ही व्यक्ति में अच्छे-बुरे का विवेक जाग्रत करता है, उसे बतलाता है कि अच्छे कर्मों का फल उत्तम होता है और बुरे कर्मों का फल निम्न और व्यक्ति को अपनी सभी प्रकार के कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है।
3. **धर्म व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन का आधार**—धर्म को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का भी आधार माना जाता है। जीवन का शाश्वत सत्य है, जो कुछ श्रेष्ठ है, उसकी आदर्श अभिव्यक्ति है। धर्म का तात्पर्य धारण करने से है, बनाए रखने से है और जिससे सभी बने रहें, संयमित रहें, सुव्यवस्थित रहें, वही धर्म है। हिन्दू धर्म व्यक्ति के श्रेष्ठतम विकास में

योग देता है, उसके सर्वांगीण विकास में सहायता पहुँचाता है, उसमें मानवीय गुणों को जाग्रत करता है, उसे परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति कर्त्तव्यों का बोध कराता है, उसके सफल समायोजन में योग देता है एवं धार्मिक मर्यादाओं में अर्थ का उपार्जन और काम का उपभोग करते हुए जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। हिन्दू धर्म में त्याग और भोग का आदर्श समन्वय मिलता है। हिन्दू धर्म में कर्म की भावना पर जोर दिया गया है। व्यक्ति को यहाँ सांसारिक सुखों का उपभोग और जीवन की वास्तविकताओं से परिचय प्राप्त करते हुए, अपने इहलोक और परलोक को उत्तम बनाने की ओर अग्रसर किया गया है।

इस प्रकार धर्म का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। यह मानव जीवन को उन्नत बनाता है।

प्र.5. धर्म के विभिन्न रूपों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of different forms of religion.

उत्तर

धर्म के विभिन्न रूप
(Different Forms of Religion)

हिन्दू धर्म में बताया गया है कि अलग-अलग परिस्थितियों में देश, काल और पात्र के अनुसार व्यक्तियों के कर्त्तव्य अलग-अलग होते हैं। व्यक्ति के कर्त्तव्यों की विस्तृत व्याख्या की गई है, हिन्दु धर्म में व्यक्ति व्यक्ति की रुचियों, मानसिक योग्यताओं और कार्य-क्षमताओं में भी अन्तर होता है। इस अन्तर के कारण सभी लोग धर्म के एक ही स्वरूप को अपनाकर अपने 'अभ्युदय' और 'नि:श्रेयस्' में वृद्धि नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में धर्म के अनेक रूपों का विकास हो जाता है, अलग-अलग साधन प्रणालियाँ और आचार-संहिताएँ विकसित हो जाती हैं।

हिन्दू धर्म की एक मौलिक विशेषता के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार आराधना करने, ध्यान पद्धति अपनाने, विधि-संस्कार सम्पन्न करने और स्वयं के आत्म-कल्याण की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म आज तक अपने अस्तित्व को बनाए हुए है और विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के लिए शान्ति और प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। यहाँ हमें हिन्दू धर्म के प्रमुख स्वरूप निम्नलिखित हैं—

1. **सामान्य धर्म**—मानव धर्म सामान्य धर्म ही कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वे नैतिक नियम आते हैं जिनके अनुसार आचरण करना प्रत्येक का परम कर्त्तव्य होता है। इस धर्म का लक्ष्य मानव मात्र में सद्गुणों का विकास और श्रेष्ठता को जाग्रत करना है। यह वह धर्म है जो प्रत्येक के लिए अनुसरणीय है। चाहे बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, गरीब हो या अमीर, सवर्ण हो या अवर्ण, राजा हो या प्रजा, सबके लिए सामान्य धर्म का पालन करना आवश्यक कर्त्तव्य है।
   श्रीमद्भागवत् गीता के अनुसार, सामान्य धर्म के तीस लक्षण होते हैं-**सत्य, दया, पवित्रता, तपस्या, कष्ट सहने की क्षमता, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, उचित-अनुचित का विचार, अहिंसा, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, त्याग, सन्तोष सभी के लिए समान दृष्टि, सेवा, आत्म चिन्तन, उदासीनता, मौन सभी प्राणियों में अपने आराध्य को देखना और उन्हें अन्न देना, ईश्वर-चिन्तन, ईश्वर-सेवा, महापुरुषों संग ईश्वर का गुण-गान, पूजा और यज्ञों का निर्वाह, ईश्वर-वन्दना, सखा-भाव, ईश्वर के प्रति दास्य भाव, ईश्वर को आत्म-समर्पण। धर्म के ये लक्षण सामान्यत: सभी संस्कृतियों में विद्यमान हैं। ये ऐसे लक्षण हैं जो व्यक्तित्व के चहुँमुखी** विकास में योग देते हैं, जो व्यक्ति को दायित्व निर्वाह की ओर अग्रसर करते हैं तथा आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं।
2. **विशिष्ट धर्म**—विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत वे कर्त्तव्य आते हैं जिनका समय, परिस्थिति और स्थान विशेष को ध्यान में रखते हुए पालन करना व्यक्ति के लिए आवश्यक है। ब्राह्मण और शूद्र का एक दूसरे से भिन्न धर्म है, अलग-अलग कर्त्तव्य हैं, ब्रह्मचारी और गृहस्थ के धर्म में भिन्नता पाई जाती है, और पुरुषों का धर्म पिता और पुत्र का धर्म गुरु और शिष्य का धर्म एक-दूसरे से भिन्न है. दोनों के भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य निर्धारित हैं।
   विशिष्ट धर्म को 'स्वधर्म' कहते हैं, क्योंकि यह व्यक्ति विशेष का अपना धर्म होता है। जहाँ कहीं सामान्य धर्म और विशिष्ट धर्म पालन में व्यक्ति से विरोधी अपेक्षाएँ की जाएँ, एक-दूसरे के विपरीत निर्देश पाए जाएँ, वहाँ शास्त्रों में स्वधर्म पालन को अधिक महत्ता दी गई है। स्वधर्म के निर्धारण का आधार यद्यपि शास्त्रों को ही माना गया है तथापि विवेक को काम में लेना भी आवश्यक है। समाज के अन्य सदस्यों के सन्दर्भ में व्यक्ति अपनी प्रस्थिति और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिन कर्तव्यों का निर्वहन करता है, वह विशिष्ट धर्म कहलाता है। अपने विशिष्ट धर्म का पालन करने पर एक ही

व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी बनता है, हिन्दू समाज में ऐसी मान्यता पाई जाती है। विशिष्ट धर्म के पालन से समूची सामाजिक व्यवस्था के बने रहने में सहायता मिलती है।

विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत **वर्ण-धर्म, राज-धर्म, युग-धर्म, मित्र-धर्म, आश्रम-धर्म, कुल-धर्म, गुरु-धर्म** आदि समाहित हैं। हिन्दू समाज में मानव-जीवन के चार मौलिक लक्ष्य-**धर्म, अर्थ, काम** और **मोक्ष** माने गए हैं, जिन्हें पुरुषार्थ कहा जाता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रथम तीन पुरुषार्थों की प्राप्ति भी हिन्दू शास्त्रकारों ने आवश्यक मानी है। **वात्स्यायन** ने अपने कामसूत्र में धर्म को अर्थ और काम से ऊँचा माना है और अर्थ और काम में से अर्थ को प्रधानता दी है।

3. **आपद् धर्म**—आपद् धर्म से तात्पर्य यह है कि आपत्तिकाल में या संकट के समय व्यक्ति को अपने सामान्य और विशिष्ट धर्म में कुछ परिवर्तन कर लेना चाहिए। 'कल्याण' के हिन्दू संस्कृति विशेषांक में उदाहरण के रूप में एक ऋषि का वर्णन मिलता है जो अकाल के कारण भूख से पीड़ित और मरणासन्न स्थिति में थे। इस स्थिति में अपने वर्ण-धर्म के पालन की बजाय अपने प्राणों की रक्षा करना उनके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था। अत: उन्होंने एक शूद्र से जूठे उड़द लेकर खा लिए परन्तु उसके यहाँ पानी नहीं पीया, क्योंकि वह उन्हें अन्यत्र कहीं से भी मिल सकता था। आपत्ति काल में धर्म-रक्षण के लिए झूठ बोलने की अनुमति भी है, संकट की स्थिति में कर्मगत नियमों में अपनी बुद्धि के अनुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर लेने की अनुमति दी गई है। केवल असामान्य परिस्थितियों में ही आपद् धर्म का सहारा लेने की स्वीकृति प्रदान की गई है। रोग, शक्ति, विपत्ति और धर्म संकट की स्थिति में व्यक्ति को कर्त्तव्य-नियमों में कुछ छूट दी गई है। यह परिस्थिति विशेष से सम्बन्धित अस्थायी धर्म है। जब व्यक्ति के कर्त्तव्यों की दृष्टि से दो धर्मों के बीच टकराव की स्थिति पैदा हो जाए तो अधिक महत्त्वपूर्ण धर्म का दायित्व के निर्वाह के लिए दूसरे धर्म के नियमों को कुछ समय के लिए छोड़ देना आपद् धर्म है। आपद् धर्म के नियमों के अन्तर्गत व्यक्ति को अपने प्राणों की रक्षा के लिए किसी भी प्रकार का आचरण करने की स्वीकृति दी गई है।

इस प्रकार, धर्म के विभिन्न रूप हैं, जो धार्मिक जीवन को परिपूर्ण बनाते हैं।

प्र.6. प्रथा से आप क्या समझते हैं? सामाजिक नियन्त्रण में प्रथाओं के कार्य या महत्त्व की भूमिका का वर्णन कीजिए।
What do you understand by custom? Explain the role of functions or importance of customs in social control.

उत्तर

प्रथा
(Custom)

समाज में प्रत्येक व्यक्ति प्रथा को सामाजिक कानून से कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझता। अनुभव बतलाता है कि अधिकांश कानूनों का निर्माण समाज की प्रथाओं के द्वारा ही होता है। ऐसे कानूनों को भी 'प्रथागत कानून' (Customary Laws) ही कहा जाता है। सामान्य रूप से **प्रथा** और **जनरीति** का समान अर्थों में प्रयोग कर लिया जाता है। वास्तव में, जनरीति का तात्पर्य किसी भी ऐसे व्यवहार से होता है जो एक समूह के बहुत-से सदस्यों की आदत बन चुकी होती है, यद्यपि उसके पालन के लिए किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जाता। जब किसी जनरीति को पूरे समूह के कल्याण के लिए आवश्यक समझ लिया जाता है तथा वह बहुत लम्बे समय तक समूह के जीवन को प्रभावित करती रहती है तब वही जनरीति एक प्रथा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अपने इसी रूप में प्रथाओं का सामाजिक नियन्त्रण में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मैकाइवर (MacIver) के अनुसार, "सामाजिक रूप से मान्यताप्राप्त कार्य करने की विधियाँ ही प्रथाएँ हैं।" उदाहरणार्थ—अपनी ही जाति में विवाह करना, संस्कारों को पूरा करना, पुत्री का उच्च कुल में विवाह करना, खान-पान के जातिगत निषेधों का पालन करना आदि हमारे समाज की प्रमुख प्रथाएँ हैं। इनका पालन न करने पर राज्य का कानून हमें दण्ड नहीं देता, लेकिन फिर भी हम इनका पालन इसलिए करते हैं, क्योंकि ऐसा न करने पर सामाजिक रूप से हमारा तिरस्कार अथवा अवहेलना हो सकती है।

बोगार्डस (Bogardus) की दृष्टि में, "प्रथाएँ समूह के द्वारा स्वीकृत नियन्त्रण की ऐसी विधियाँ हैं जो इतनी शक्तिशाली हो जाती हैं कि उन्हें सम्पूर्ण समाज द्वारा मान्यता प्रदान कर दी जाती हैं और इसी रूप में वे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है।"

सापिर (Sapir) के अनुसार, "प्रथा शब्द का उपयोग व्यवहार के उन तरीकों के लिए किया जाता है जो परम्पराओं द्वारा उत्पन्न होते हैं और समूह में स्थायी रूप ग्रहण कर लेते हैं।"

सामाजिक नियन्त्रण में प्रथाओं के कार्य अथवा महत्त्व

प्रथाएँ हमारे सभी व्यवहारों के साथ इस प्रकार घुली-मिली होती हैं कि हम गम्भीरतापूर्वक विचार किए बिना उनका पालन करते रहते हैं। सामान्य रूप से हममें से प्रत्येक व्यक्ति यह विश्वास करता है कि प्रत्येक प्रथा का आरम्भ हमारे किसी-न-किसी पूर्वज द्वारा ही हुआ होगा। इस प्रकार पूर्वजों के अपमान का भय हमें प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता रहता है। साधारण व्यक्ति प्रथाओं की अवहेलना करना एक धर्म-विरोधी कार्य समझता है। प्रथाओं के इन नियन्त्रण सम्बन्धी कार्यों को निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं—

1. **समाज में एकता की स्थापना**—समाज जितना अधिक संगठित बनता है, सामाजिक नियन्त्रण भी उसी अनुपात में प्रभावपूर्ण हो जाता है। **बेजहाट** (Begehot) के शब्दों में, "समाज के विकास को आरम्भिक समय में ही यह महसूस कर लिया गया था कि कुछ ऐसे नियम बनाए जाएँ जो सभी व्यक्तियों को एक-दूसरे के समान व्यवहार करने का प्रोत्साहन देकर उन्हें एकता के बन्धन में बाँध सकें। इन्हीं नियमों को हम प्रथाएँ कहते हैं।" इसका तात्पर्य है कि किसी समाज की प्रथाएँ अपने सभी सदस्यों के व्यवहारों में समानता तथा एकता का गुण उत्पन्न करती हैं तथा इस प्रकार समाज को संगठित बनाती हैं।
2. **सामाजिक सीख में सहायता**—प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करके व्यक्ति अपनी सामाजिक परिस्थितियों से सरलतापूर्वक अनुकूलन कर लेता है। **जिन्सबर्ग** (Ginsberg) का कथन है कि "प्रथाओं की सहायता से व्यक्ति प्रयत्न और भूल की महँगी विधि से बच जाता है।" प्रथाओं की उपयोगिता एक लम्बे समय से प्रमाणित हो चुकी होती है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को नये-नये व्यवहारों की उपयोगिता का परीक्षण करना नहीं पड़ता। इस प्रकार प्रथाएँ सामाजिक सीख को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करके व्यक्ति का समाजीकरण करती हैं। इसमें व्यक्ति और समाज के जीवन में संगठन का अस्तित्व बना रहता है।
3. **सामाजिक अनुकूलन में सहायक**—इसका तात्पर्य है कि प्रथाएँ व्यक्ति की सामाजिक स्थिति (Social Status) को भी निर्धारित करती हैं। इसी के परिणामस्वरूप सामाजिक नियन्त्रण अधिक दृढ़ बन जाता है। व्यक्ति और समाज के जीवन में नियन्त्रण की स्थापना केवल तभी हो सकती है, जब व्यक्ति अपनी सामाजिक दशाओं से अनुकूलन कर सकें। प्रथाएँ व्यक्ति को बतलाती हैं कि कौन-से व्यवहार करने चाहिए और कौन-से नहीं। प्रथाओं में एक समूह के सभी सदस्यों का विश्वास होता है। इस प्रकार जो लोग प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करते हैं, उन्हें समूह में अधिक आदर और सम्मान प्राप्त होता है।
4. **व्यक्तित्व का विकास**—साधारणतया व्यक्तित्व के विकास के लिए जिन सामाजिक और मानवीय गुणों की आवश्यकता होती है, वे किसी-न-किसी प्रथा द्वारा अवश्य ही विकसित किए जाते हैं। वास्तव में, प्रथाओं का सम्बन्ध व्यक्ति को अपने सांस्कृतिक, प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण से अनुकूलन करने की क्षमता प्रदान करना होता है। व्यक्ति को प्रथाओं के पालन द्वारा जब यह क्षमता प्राप्त हो जाती है तो वह सरलता से अपने व्यक्तित्व को संगठित कर लेता है। व्यक्तित्व का यही संगठन सामाजिक नियन्त्रण का प्रमुख आधार है।
5. **सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि**—जब कभी भी सामाजिक परिवर्तन तेजी से होने लगता है तो समाज में व्यवहार के नये-नये ढंगों को प्रोत्साहन प्राप्त होने लगता है। इनमें से बहुत-से व्यवहार सामाजिक संघर्षों तथा वैयक्तिक समस्याओं को जन्म देते हैं। प्रथाएँ ऐसे परिवर्तनों को रोककर समाज को विघटित होने से बचा लेती हैं। इसके अतिरिक्त, वृद्धों, अपंगों, अनाथ बच्चों अथवा बेसहारा लोगों को भी प्रथाओं के कारण ही समाज में सुरक्षा प्राप्त होती है। इस प्रकार, सभी प्रथाएँ व्यक्ति को सामाजिक और मानसिक सुरक्षा प्रदान करती हैं।
6. **समूह-कल्याण में वृद्धि**—प्रथाओं के ये सभी कार्य सामाजिक नियन्त्रण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथाएँ अनेक प्रकार से समूह-कल्याण में वृद्धि करके समाज में नियन्त्रण की स्थापना करती हैं। ये एक समूह के सदस्यों को मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करती हैं, अनावश्यक परिवर्तनों को रोकती हैं, पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों का बोध कराती हैं, संघर्ष पर अनौपचारिक रूप से नियन्त्रण रखती हैं, तथा व्यक्ति को सहयोग के द्वारा अपने उद्देश्यों को पूरा करने पर बल देती हैं।
7. **व्यवहारों में समानता**—यदि प्रथाएँ हमारे व्यवहारों का मार्ग-दर्शन न करें, तब प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में संघर्षों की मात्रा में वृद्धि होगी, व्यक्तिवादिता बढ़ेगी और समाज का विघटन प्रारम्भ हो जाएगा। सामाजिक संगठन को बनाए रखने के लिए यह सबसे अधिक आवश्यक है कि समाज में अधिकतर

व्यक्तियों के व्यवहारों में समानता हो और उनके दृष्टिकोण भी एक-दूसरे के लगभग समान हों। प्रथाएँ इस स्थिति में समाज की रक्षा करती हैं। इस प्रकार सामाजिक नियन्त्रण की स्थापना में प्रथाओं का महत्त्व भी धर्म और कानून से कम नहीं है।

प्र.7. पुरुषार्थ से आपका क्या अभिप्राय है? पुरुषार्थ के विभिन्न प्रकारों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
What do you understand by Purushartha? Explain in detail the different types of Purushartha.

उत्तर

पुरुषार्थ
(Purushartha)

पुरुषार्थ से तात्पर्य उद्योग करने या प्रयत्न करने से है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि '**पुरुषैरर्थ्यते पुरुषार्थः**', अर्थात् अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए उद्यम करना ही पुरुषार्थ है। यहाँ अभीष्ट का अर्थ मोक्ष-प्राप्ति है। अत: मोक्ष जीवन का लक्ष्य है और इसकी प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ या माध्यम हैं। लगातार प्रयत्न करते रहना और अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते जाना ही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ की धारणा में जीवन के विभिन्न कर्त्तव्यों या दायित्वों का बोध मिलता है। उपनिषदों, गीता तथा स्मृतियों में जीवन के चार आधारभूत कर्त्तव्यों के रूप में 'पुरुषार्थ' का उल्लेख है जिन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का नाम दिया गया है। इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करके ही व्यक्ति जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होता है।

डॉ० कपाड़िया के शब्दों में, 'मोक्ष' जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। इससे तात्पर्य है कि मानव की वास्तविक प्रकृति आध्यात्मिक है और जीवन का उद्देश्य इसको अभिव्यक्त करना और इसके द्वारा ज्ञान और आनन्द प्राप्त करना है। 'अर्थ' मानव में प्राप्त करने की सहज प्रवृत्ति को बताता है, धन अर्जित और संगृहीत करने तथा उसके उपयोग की प्रवृत्ति को व्यक्त करता है। हिन्दू विचारकों ने धन को भी जीवन में एक पुरुषार्थ के रूप में स्थान देकर इसे उचित मानवीय आकांक्षा माना है। '**काम**' **मानव के भावुक जीवन और उसके सहज स्वभाव से सम्बन्धित है।** काम का अर्थ व्यक्ति के केवल-प्रवृत्ति सम्बन्धी जीवन से नहीं है, इसका अर्थ उद्वेगपूर्ण और सौन्दर्यात्मक जीवन से भी है। मानव की सौन्दर्यात्मक भावना की अभिव्यक्ति सुन्दर एवं उत्कृष्ट वस्तु के निर्माण और उसकी प्रशंसा द्वारा होती है। जीवन का सर्वोपरि आनन्द सृजनात्मक प्रवृत्तियों में ही है।

अर्थ और काम को व्यक्ति के लिए वांछनीय या अभीष्ट मानकर, हिन्दू विचारकों ने उल्लेख किया है कि मानव की आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति केवल तभी होती है जब उसका जीवन आर्थिक दरिद्रता या उद्वेगात्मक अतृप्ति से ग्रसित न हो। 'धर्म' यह जानता है कि काम और अर्थ साधन हैं, न कि साध्य। वह जीवन जो इनकी अनियन्त्रित सन्तुष्टि में अपने-आपको लगा देता है, अवांछनीय तथा घातक है। अत: यह आवश्यक है कि जीवन का निर्देशन आध्यात्मिक अनुभूति के आदर्श से होना चाहिए और धर्म को यही करने की आवश्यकता है। पुरुषार्थ का सिद्धान्त भौतिक इच्छाओं और आध्यात्मिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करना है। पुरुषार्थ का सिद्धान्त बताता है कि व्यक्ति को जीवन में क्या प्राप्त करना है, इसके लक्ष्य क्या हैं, उसे किन मूलभूत दायित्वों को निभाना है पुरुषार्थ व्यक्ति को उसके चार मौलिक कर्त्तव्यों का बोध कराते हैं। **डॉ० राधाकमल मुकर्जी** के अनुसार, वर्णों और आश्रमों के धर्मों और उत्तरदायित्वों की पूर्ति मनुष्य द्वारा चार पुरुषार्थों के आकलन पर निर्भर करती है। भारतीय दृष्टि से जीवन के मूल्यों को चार पुरुषार्थों में बाँट दिया है। गृहस्थ जीवन के उद्देश्य—अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष के अधीन रखा गया है। इसमें मोक्ष ही अन्तिम ध्येय है, उसी में जीवन के सर्वोच्च और शाश्वत आदर्श की प्राप्ति होती है। इस प्रकार जीवन के सभी मूल्यों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय होता है। स्पष्ट है कि पुरुषार्थ का तात्पर्य जीवन के चार प्रमुख लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उद्यम या प्रयत्न करने से है।

पुरुषार्थ के विभिन्न प्रकार (Various Types of Purushartha)

पुरुषार्थ के विभिन्न प्रकारों का वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **धर्म**—धर्म पुरुषार्थ का एक प्रमुख एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। धर्म का तात्पर्य भाग्य, अन्ध-विश्वास या रूढ़िवादिता से नहीं है। धर्म वही है जिसे धारण किया जा सके, जिसे जीवन में उतारा जा सके या जिसके अनुरूप आचरण किया जा सके। धर्म व्यक्ति को कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ने और अपने दायित्वों को निभाने की प्रेरणा प्रदान करता है। यहाँ पुरुषार्थ के रूप में धर्म के सामाजिक पक्ष पर जोर दिया गया है। प्रत्येक आश्रम में व्यक्ति को धर्म के अनुरूप आचरण करने का निर्देश दिया गया है। धर्म आचरण संहिता के रूप में व्यक्ति को सही मार्ग पर ले जाता है। धर्म का तात्पर्य उन सभी कर्तव्यों के पालन से है, जो व्यक्ति के साथ-साथ समाज की प्रगति में भी योग देते हैं। धर्म अनेक गुण; जैसे—आत्म-संयम, सन्तोष, दया, सहानुभूति, उदारता, क्षमा, अहिंसा, अक्रोध तथा कर्त्तव्य पालन आदि को ग्रहण करने की प्रेरणा देता है।

श्रीकृष्ण ने बताया है कि धर्म वह है जो सभी प्राणियों की रक्षा करता है और उन सभी को धारण करता है। धर्म का तात्पर्य सामान्य धर्म एवं स्वधर्म दोनों के पालन से है। व्यक्ति को अपने वर्ण-धर्म के पालन का आदेश दिया गया है। वह पंच महायज्ञों के द्वारा पाँच प्रकार के ऋणों से 'उऋण' होता है, माता-पिता, देवी-देवता, ऋषि-मुनियों, अतिथियों तथा प्राणी-मात्र के प्रति अपने दायित्व को निभाता है, त्यागमय भोग की ओर अग्रसर होता है। श्री कृष्ण ने गीता में इस पुरुषार्थ के सम्बन्ध में कहा है कि जो व्यक्ति प्रत्येक कार्य का फल चाहते हैं तथा जिनका यह विचार है कि स्वर्ग से बढ़कर अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं है, वे अविवेकी होने के साथ भी भोग और ऐश्वर्य में ही आसक्ति रखते हैं, उनके अन्त:करण में कोई निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती। इस पुरुषार्थ की प्राप्ति वह कर पाता है जो कर्म करने में विश्वास करता है, उससे प्राप्त होने वाले फल में नहीं।

2. **अर्थ—डॉ० प्रभु** के अनुसार, "अर्थ का तात्पर्य उन सभी साधनों से है जो सांसारिक समृद्धि जैसे धन या शक्ति प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं।" 'अर्थ' से तात्पर्य केवल धन अथवा सम्पत्ति से नहीं है बल्कि उन साधनों से है जिनकी सहायता से हम अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखते हैं। यहाँ अर्थ को साध्य नहीं मानकर एक साधन मात्र माना गया है। अर्थ का शाब्दिक अर्थ है-वस्तु, चीज, पदार्थ। इस अवधारणा के अन्तर्गत वे समस्त स्पर्शीय या भौतिक वस्तुएँ आ जाती हैं, जिन्हें हम अपने अधिकार में रख सकते हैं, जिनसे सुख प्राप्त कर सकते हैं तथा जो हम खो भी सकते हैं और जो परिवार के भरण-पोषण, समृद्धि तथा धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करने के लिए अर्थात् जीवन के दायित्वों को उचित तरीके से निभाने के लिए आवश्यक हैं।

   अर्थ के महत्त्व के सम्बन्ध में महाभारत में वर्णित है कि धर्म का पालन पूर्णत: अर्थ पर आधारित है तथा जिसके पास अर्थ नहीं है, वह अपने दायित्वों को ठीक से नहीं निभा सकता। **पंचतन्त्र** के अनुसार, दरिद्रता एक अभिशाप है जो मृत्यु से भी बढ़कर है। धन के अभाव को प्रत्येक बुराई की जड़ माना गया है। **कौटिल्य** के अनुसार सभी प्रकार के दान एवं इच्छा-पूर्ति अर्थ पर आश्रित है। निर्धनता को एक पापपूर्ण स्थिति माना गया है। धन के अभाव में मनुष्य धार्मिक कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकता, पंच महायज्ञों को सम्पन्न कर पाँच प्रकार के ऋणों से मुक्त नहीं हो सकता। अत: जीवन में 'अर्थ' का बहुत महत्त्व है। इसके बिना व्यक्ति न तो भली-भाँति अपने बालकों का भरण-पोषण कर सकता है और न ही पूरी तरह परिवार के लिए सुख-सुविधाएँ जुटा सकता है, न यज्ञ, दान-दक्षिणा एवं अतिथियों का सत्कार कर सकता है। यही कारण है कि उद्यम द्वारा गृहस्थ आश्रम में अर्थ को अर्जित करने पर जोर दिया जाता है।

3. **काम—कर्वे** के अनुसार सीमित अर्थ में काम का तात्पर्य यौन सम्बन्धी इच्छा से है जबकि व्यापक रूप में इसका तात्पर्य व्यक्ति की इच्छा तथा आकांक्षा से है। इस दृष्टि से व्यक्ति जो कुछ भी चाहता है या चाहने की जो कुछ अभिलाषा उसके भीतर है, वही काम है। काम के अन्तर्गत एक प्राणिशास्त्रीय और सांस्कृतिक प्राणी के रूप में व्यक्ति की सभी इच्छाएँ, कामनाएँ तथा प्रवृत्तियाँ समाहित हैं। हिन्दू विचारकों ने 'काम' को भी जीवन का एक लक्ष्य माना है। काम का तात्पर्य केवल भोग वासना से नहीं बल्कि सभी प्रकार की इच्छाओं या कामनाओं से है। 'काम' का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है, एक संकुचित अर्थ में और दूसरा व्यापक अर्थ में। संकुचित अर्थ में काम का तात्पर्य यौनिक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि या यौन इच्छाओं की पूर्ति से है। व्यापक अर्थ में काम के अन्तर्गत मानव की सभी प्रवृत्तियाँ, इच्छाएँ तथा कामनाएँ आ जाती हैं।

4. **मोक्ष**—जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष को माना गया है। बौद्ध साहित्य में इसे 'निर्वाण' और जैन साहित्य में 'कैवल्य' कहा गया है। **डॉ० कपाडिया** के अनुसार इसका (मोक्ष का) अर्थ यह है कि मानव की शाश्वत प्रकृति आध्यात्मिक है और जीवन का लक्ष्य इसे प्रकट करना और इसके ज्ञान और आनन्द को प्राप्त करना है। हिन्दू विचारक इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि जीवन में अर्थ और काम का महत्त्व है, परन्तु साथ ही वे यह भी जानते थे कि इन्हीं में अपने-आपको जकड़े रखना भी उचित नहीं है। अत: सांसारिक सुख-प्राप्ति के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य आत्म-ज्ञान प्राप्त कर ले, ईश्वर-चिन्तन में अपने को पूर्ण रूप से लगा दे और अन्त में जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर ले।

   मोक्ष से आशय है—हृदय की अज्ञानता का नाश। **मीमांसा** में स्वर्ग-प्राप्ति को ही मोक्ष माना गया है। 'बौद्ध दर्शन' में मोक्ष को जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति के रूप में व्यक्त किया गया है। जीवन-मुक्ति का तात्पर्य है-संसार में रहते हुए संसार के कष्टों से छुटकारा तथा तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति। विदेह-मुक्ति का अर्थ है-जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होना अर्थात् मरने के पश्चात् पुन: संसार में लौटकर नहीं आना।

❑

UNIT-VIII

इस्लाम का आगमन
Arrival of Islam

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुहम्मद बिन कासिम ने भारत पर आक्रमण कब किया?
When did Muhammad Bin Qasim attack India?
उत्तर सन् 711-712 ई० में मुहम्मद बिन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया।

प्र.2. मुहम्मद गोरी ने पंजाब की राजधानी लाहौर पर कब अधिकार किया?
When did Muhammad Ghori capture Lahore?
उत्तर मुहम्मद गोरी ने पंजाब की राजधानी लाहौर पर सन् 1186 ई० में आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया था।

प्र.3. महमूद गजनवी ने भारत पर कुल कितने आक्रमण किए?
How many times did Mahmud Ghaznavi attack India?
उत्तर महमूद गजनवी ने भारत पर कुल सत्रह आक्रमण किए।

प्र.4. महमूद गजनवी ने चौथा आक्रमण कब व किस पर किया?
When and on whom did Mahmud Ghaznavi launch his fourth attack on?
उत्तर महमूद गजनवी ने चौथा आक्रमण सन् 1006 में मुल्तान के शासक अब्दुल फतह दाऊद के राज्य पर किया।

प्र.5. महमूद गजनवी ने दसवाँ आक्रमण कब और किस पर किया।
When and on whom did Mahmud Ghaznavi launch his tenth attack?
उत्तर महमूद गजनवी ने दसवाँ आक्रमण 1014 ई० में थानेश्वर पर किया।

प्र.6. ग्यारहवीं शताब्दी में दिल्ली पर किस वंश का शासन था?
Which dynasty ruled Delhi in the eleventh century?
उत्तर ग्यारहवीं शताब्दी में दिल्ली पर तोमर वंश का शासन था।

प्र.7. महमूद गजनवी का सातवाँ आक्रमण कब और किस प्रदेश पर हुआ?
When and which state faced the seventh attack of Mahmud Ghaznavi?
उत्तर महमूद गजनवी का सातवाँ आक्रमण 1009 ई० में काँगड़ा के पहाड़ी प्रदेश नगरकोट पर हुआ।

प्र.8. भारत में मुसलमानों के साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कौन था?
Who was the actual founder of the Muslim empire in India?
उत्तर भारत में मुसलमानों के साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी था।

प्र.9. महमूद गजनवी ने सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण कब किया था?
When did Mahmud Ghaznavi attack Somnath temple?
उत्तर महमूद गजनवी का सत्रहवाँ आक्रमण सबसे प्रसिद्ध था। यह 1025 ई० में सोमनाथ मन्दिर पर किया गया।

प्र.10. तराइन का पहला युद्ध कब और किसके मध्य हुआ?
When and between whom was the first battle of Tarain fought?
उत्तर तराइन का पहला युद्ध 1191 ई० में मुहम्मद गोरी तथा पृथ्वीराज तृतीय के मध्य हुआ।

प्र.11. तुर्कों के आक्रमण के समय उत्तर भारत की स्थिति कैसी थी?
How was the condition of north India at the time of the Turks' attack?
उत्तर तुर्कों के आक्रमण के समय उत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था।

TOPPER PASS

प्र.12. पृथ्वीराज चौहान की पराजय कब हुई?
When was Prithviraj Chauhan defeated?

उत्तर पृथ्वीराज चौहान की पराजय तराइन के द्वितीय युद्ध (1192 ई०) में हुई।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत पर प्रथम तुर्क आक्रमण को संक्षेप में समझाइए।
Explain the first Turk attack on India in brief.

उत्तर

प्रथम तुर्क आक्रमण
(First Truk Attack)

932 ई० में अलप्तगीन नामक एक तुर्क नेता ने गजनी में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। अलप्तगीन की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक गजनी में पिरीतिगीन ने शासन किया। इसी के शासनकाल (972-977 ई०) में सर्वप्रथम भारत पर आक्रमण किया गया। प्रथम तुर्क आक्रमण के समय पंजाब में शाही वंश का शासक जयपाल शासन कर रहा था। तुर्कों के बढ़ते हुए प्रभाव व शक्ति को रोकने के उद्देश्य से जयपाल तुर्कों पर आक्रमण करना चाहता था कि उसी समय पिरीतिगीन के विरोधियों ने उससे सहायता माँगी। इसे उचित अवसर मानकर जयपाल ने अपने पुत्र के नेतृत्व में एक सेना भेजी। इसी मध्य अलप्तगीन के दामाद सुबुक्तगीन ने हिन्दू राजाओं की शक्ति पर अंकुश लगाने व पिरीतिगीन को अपदस्थ करने के उद्देश्य से सेना तैयार करके जयपाल की सेना का सामना किया तथा उसे परास्त कर दिया। तत्पश्चात्, वह गजनी के सिंहासन पर 977 ई० में आसीन होने में भी सफल हो गया।

सुबुक्तगीन से संघर्ष—सुबुक्तगीन के 977 ई० में गजनी के शासक बनने के पश्चात् उसके द्वारा एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना के प्रयत्न होते देख, पंजाब के शाही शासक जयपाल ने पहले ही इस विकसित होती हुई शक्ति को कुचलने का प्रयत्न किया। जयपाल ने 986-987 ई० में विशाल सेना के साथ गजनी पर आक्रमण किया, किन्तु दुर्भाग्यवश भीषण झंझावात के कारण जयपाल की सेना की अत्यधिक क्षति हुई और उसे सन्धि करने पर विवश होना पड़ा। जयपाल ने अपने राज्य वापस लौट जाने के पश्चात् सन्धि की शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया। अत: सुबुक्तगीन ने जयपाल पर आक्रमण कर लमगान पर अधिकार कर लिया और उसे लूटा। जयपाल की सहायतार्थ दिल्ली, अजमेर, कालंजर आदि के राजाओं ने सेना भेजी और तब जयपाल ने एक विशाल सेना के साथ पुन: गजनी पर आक्रमण किया, किन्तु इस बार भी विजयश्री सुबुक्तगीन को प्राप्त हुई। इस प्रकार तुर्कों ने लमगान व पेशावर के बीच के समस्त भू-भाग पर अधिकार कर लिया।

प्र.2. भारत पर वैदेशिक आक्रमण को समझाइए।
Explain foreign attacks on India.

उत्तर

भारत पर वैदेशिक आक्रमण
(Foreign Attacks on India)

राजपूत काल में भारत पर अनेक बार विदेशियों ने आक्रमण किये। प्रारम्भ में अरबों ने आक्रमण किये, किन्तु वे विशेष सफलता प्राप्त न कर सके। अरबों के आक्रमण सातवीं तथा आठवीं शताब्दियों में हुए थे। तत्पश्चात् दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक तुर्कों ने समय-समय पर भारत पर आक्रमण किये। तुर्कों के प्रारम्भिक आक्रमणों का उद्देश्य तो मात्र धन-सम्पत्ति को लूटना था, किन्तु बाद में उनका उद्देश्य साम्राज्यवादिता में बदल गया। तुर्कों के आक्रमणों से भारत को अत्यधिक हानि हुई क्योंकि उन्होंने न केवल यहाँ की धन-सम्पत्ति पर अधिकार किया वरन् हिन्दू राज्य के स्थान पर तुर्क-शासन की स्थापना की। इस प्रकार हिन्दू-राज्य का स्वतन्त्र अस्तित्व ही समाप्तप्राय हो गया।

प्र.3. क्या महमूद एक लुटेरा था? संक्षेप में समझाइए।
Was Mahmud a plunderer? Explain in brief.

उत्तर अधिकांश इतिहासकारों ने महमूद गजनवी को एक लुटेरा माना है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महमूद एक धन-लोलुप व्यक्ति था तथा यही इसके चरित्र की सबसे बड़ी कमजोरी थी। धन के लिए वह कुछ भी कर सकता था, किन्तु उसे केवल एक लुटेरा मानना महमूद के साथ अन्याय करना होगा। महमूद एक लालची व्यक्ति होने के साथ ही अत्यन्त योग्य शासक भी था। अत: उसका सही मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके व्यक्तित्व व कार्यों को अलग-अलग दृष्टियों से देखा जाए। ऐसा करने पर यह स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि महमूद एक योग्य तथा मुसलमानों की उन्नति के लिए प्रयत्नशील शासक था, किन्तु उसके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू उसकी धन-लोलुपता एवं धर्मान्धता को प्रमाणित करता है।

प्र.4. महमूद गजनवी का आनन्दपाल तथा त्रिलोचनपाल पर आक्रमण का वर्णन कीजिए।
Describe Mahmud Ghaznavi's attacks on Anandpala and Trilochanpala.

उत्तर आनन्दपाल पर महमूद का आक्रमण (1005 ई०)—पंजाब के शाही शासक जयपाल द्वारा अग्नि में जलकर मर जाने के पश्चात् उसका पुत्र आनन्दपाल शासक बना। महमूद ने आनन्दपाल पर भी आक्रमण करने का निश्चय किया तथा भातियाह के किले पर आक्रमण कर दिया तथा विजयराज को परास्त किया। तत्पश्चात् महमूद ने आनन्दपाल पर आक्रमण किया व उसके राज्य को लूटा।

1008 ई० में महमूद ने पुन: आनन्दपाल पर आक्रमण किया। महमूद का सामना करने के लिए इस बार अनेक भारतीय राजाओं ने आनन्दपाल के साथ एक संघ बनाया। इन राजाओं में उज्जैन, ग्वालियर, कलिंग, कन्नौज, दिल्ली तथा अजमेर के राजाओं के नाम प्रमुख हैं। मुल्तान के शासक दाऊद व खोखर ने भी आनन्दपाल का साथ दिया। दुर्भाग्य से घमासान युद्ध के पश्चात् इस बार भी भारतीयों की पराजय हुई।

त्रिलोचनपाल पर आक्रमण (1012 ई०)—आनन्दपाल की मृत्यु 1012 ई० में हुई। उसके पश्चात् शाही वंश में त्रिलोचनपाल शासक बना। त्रिलोचनपाल पर महमूद ने अनेक आक्रमण किये। 1013-1014 ई० में महमूद ने नन्दन का दुर्ग जीतकर त्रिलोचनपाल को काश्मीर भागने पर विवश किया। काश्मीर के राजा संग्रामसिंह की सहायता से त्रिलोचनपाल ने पुन: महमूद का सामना किया, किन्तु वह परास्त हो गया। 1018-19 ई० में त्रिलोचनपाल ने चन्देलों की सहायता से महमूद का सामना किया, किन्तु उसे सफलता प्राप्त न हो सकी।

त्रिलोचनपाल का उत्तराधिकारी भीम था जो 1021 ई० में शासक बना था। उसने भी निरन्तर महमूद का विरोध किया, किन्तु 1026 ई० में उसकी मृत्यु हो जाने से शाही वंश समाप्त हो गया।

प्र.5. जयचन्द की चन्दावर के युद्ध में पराजय को संक्षेप में बताइए।
Explain the defeat of Jaichand at the battle of Chandawar in brief.

उत्तर जयचन्द की चन्दावर के युद्ध में पराजय (1194 ई०)—पृथ्वीराज को परास्त करने के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने कन्नौज पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। कन्नौज में उस समय गहड़वाल वंश का अत्यन्त शक्तिशाली शासक जयचन्द शासन कर रहा था। सन् 1194 ई. में मुहम्मद गोरी ने जयचन्द पर आक्रमण किया तथा दोनों पक्षों के मध्य चन्दावर (आधुनिक फिरोजाबाद के समीप) के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। गोरी की पराजय होने वाली थी कि जयचन्द के अचानक कुतुबुद्दीन का एक तीर लगा, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। जयचन्द के मरते ही हिन्दूसेना युद्धक्षेत्र से भाग खड़ी हुई। मुहम्मद गोरी ने मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया व अपार धन-सम्पत्ति लूटी।

प्र.6. महमूद गजनवी के मथुरा एवं कन्नौज पर आक्रमण को संक्षेप में समझाइए।
Explain Mahmud Ghaznavi attacks on Mathura and Kannauj.

उत्तर महमूद का मथुरा पर आक्रमण—सन् 1018 ई० में महमूद ने बुलंदशहर पर अधिकार किया तथा फिर मथुरा पर आक्रमण किया। महमूद मथुरा के मन्दिरों की भव्यता को देखकर चकित हो गया। मथुरा पर अधिकार करने के पश्चात् महमूद ने मन्दिरों को तुड़वाया और लूट के रूप में अपार सम्पत्ति पर अधिकार किया।

कन्नौज पर महमूद का आक्रमण—मथुरा पर आक्रमण करने के उपरान्त महमूद ने कन्नौज पर सन् 1019 ई० में आक्रमण किया, किन्तु वहाँ का प्रतिहारवंशीय शासक राज्यपाल भयभीत होकर बिना युद्ध लड़े भाग गया। महमूद ने कन्नौज को लूटा एवं कन्नौज के निवासियों को मौत के घाट उतारा।

प्र.7. महमूद गजनवी कौन था? संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
Who was Mahmud Ghaznavi? Explain in brief.

उत्तर महमूद गजनी के शासक सुबुक्तगीन का पुत्र था। उसका जन्म सन् 971 ई० में हुआ। उसकी माता गजनी के पास जाबुलिस्तान के एक धनवान परिवार की कन्या थी। इसीलिए महमूद को जाबुल का महमूद भी कहा जाता है। महमूद के प्रारम्भिक जीवन के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है, किन्तु समकालीन लेखकों से पता चलता है कि सुबुक्तगीन ने महमूद को प्रत्येक विद्या में शिक्षा देने में रुचि ली। महमूद को केवल युद्ध कला और युद्ध प्रशासन में ही शिक्षा नहीं दी गई अपितु राजनीति में भी प्रवीण बनाया गया। लमगान के युद्ध में उसे जिम्मेदारी का पद सौंपा गया। समस्त खुरासान उसके नियन्त्रण में रखा गया। इस प्रकार वह अपने पिता का योग्य उत्तराधिकारी बन सका।

सुबुक्तगीन की मृत्यु के समय उसके सम्बन्ध महमूद के साथ अच्छे नहीं थे। इसीलिए उसने अपने छोटे बेटे इस्माईल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। परिणामस्वरूप अमीरों ने इस्माईल को सिंहासन पर बिठाया। महमूद यह सहन नहीं कर सका। उसने अपने भाई इस्माईल को गजनी देकर और बलख अपने पास रखकर राज्य का विभाजन करने के लिए कहा। इस्माईल ने यह सुझाव अस्वीकार कर दिया। इससे नाराज होकर महमूद ने उसके विरुद्ध प्रस्थान कर दिया और उसे पराजित करके बन्दी बना लिया।

प्र.8. महमूद गजनवी का मूल्यांकन अपने शब्दों में कीजिए।
Evaluate Mahmud Ghaznavi in your own words.

उत्तर महमूद गजनवी तत्कालीन मुसलमानों की दृष्टि में इस्लाम का प्रमुख प्रचारक गाजी था। उसने विधर्मियों के देश में अधर्म के विनाश का सतत् प्रयत्न किया। हिन्दुओं के लिए वह उनके अति पवित्र स्थानों का विध्वसंक तथा उनकी धार्मिक भावनाओं पर घोर आघात करने वाला बर्बर हूणों जैसा अमानुषिक अत्याचारी था। महमूद विजय किए गए प्रदेशों का प्रबन्ध किए बिना ही दूसरे देशों की विजय के लिए चल पड़ता था। महमूद द्वारा स्थापित किया गया साम्राज्य इसीलिए उसकी मृत्यु के कुछ वर्ष पश्चात् ही लुप्त हो गया। देश में कानून के प्रबन्ध की कमी थी। जातियों के सरदारों ने अपनी इच्छा के अनुसार कार्य किए। पुलिस का प्रबन्ध भी अच्छा नहीं था। महमूद के अधिकारी उचित शासन प्रणाली के स्थान पर साम्राज्य के विस्तार के लिए अधिक चिन्तित थे। कोई आश्चर्य नहीं कि वह ढाँचा गिर गया। वस्तुत: महमूद अति लोलुप आक्रमणकारी था। वह भारत में न तो धर्म-प्रचारक बन सका और न साम्राज्य का निर्माता ही बन सका। उसके पूर्वी आक्रमणों का उद्देश्य भारत की धन सम्पत्ति को लूटना और इस सम्पत्ति के स्वामियों की शक्ति का अन्त करना प्रतीत होता है।

प्र.9. भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कौन था? संक्षेप में समझाइए।
Who was the actual founder of Muslim empire in India? Explain in brief.

उत्तर भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक **मुइजुद्दीन मुहम्मद-बिन-साम** को माना जाता था। इसे शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी अथवा गुर वंश का मुहम्मद कहा जाता है। यह सत्य है कि मुहम्मद बिन-कासिम पहला आक्रमणकारी था, किन्तु शीघ्र मृत्यु हो जाने के कारण वह भारत में साम्राज्य स्थापित करने में असफल रहा। उसके आक्रमण का एकमात्र स्थायी प्रभाव पंजाब की विजय थी। इसीलिए मुसलमानों के साम्राज्य की दृढ़ नींव रखने का श्रेय मुहम्मद गोरी को दिया जाता है।
राजनीतिक एकता का अभाव था और कोई ऐसा शक्तिशाली राज्य नहीं था जो उत्तर सीमा की रक्षा कर सकता। तुर्कों के आक्रमण के समय उत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। महमूद गजनवी के आक्रमणों के बाद भी राजनीतिक विखण्डन की स्थिति बनी हुई थी। पंजाब को महमूद ने जीत लिया था। उसे राजपूतों ने पुन: प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया। इसी को आधार बनाकर तुर्कों ने भारत के आन्तरिक प्रदेशों पर आक्रमण कर दिया। एक सार्वभौम सत्ता के अभाव में आक्रमणकारियों का कार्य सरल हो गया।

प्र.10. मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय उत्तर भारत की सामाजिक व आर्थिक दशा कैसी थी? संक्षेप में प्रकाश डालिए।
How was the social and economic condition of north India at the time of Muhammad Ghori's attacks? Throw light in brief.

उत्तर भारत में वर्ण व्यवस्था अपने चरम पर थी। इसी की जटिलता के कारण हिन्दू समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित हो गया था। राज्य और युद्ध का उत्तरदायित्व केवल क्षत्रियों का समझा जाता था और सामान्य जनता को युद्धों या राज्य में कोई रुचि नहीं थी। बाहरी जगत से सम्पर्क टूट चुका था। तुर्कों की विजय या राजपूतों की पराजय को उदासीनता से देखा जाता था। सामाजिक गतिशीलता नष्ट हो चुकी थी और सैनिक ज्ञान या विदेशों की राजनीति को जानने की जिज्ञासा नहीं थी।
आर्थिक जीवन में भी जड़ता थी। राजनीतिक विखण्डन का आर्थिक समृद्धि पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा था। आन्तरिक व्यापार छोटे राज्यों तथा युद्ध की निरन्तरता से प्राय: समाप्त हो गए थे। राजपूत राज्यों में आर्थिक विकास या नीति पर ध्यान नहीं दिया जाता था। सारी सम्पत्ति मन्दिरों में मृत पूँजी के रूप में एकत्रित हो रही थी, फिर भी प्रकृति की उदारता से देश समृद्धि से पूर्ण था और तुर्कों के आक्रमण का कारण भारत की समृद्धि भी थी।

प्र.11. महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमणों के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए। *(2021)*
Explain the aims of Mahmud Ghaznavi's attacks on India.

उत्तर महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

1. **इस्लाम धर्म का प्रचार**—कुछ विद्वानों के अनुसार, महमूद सैनिक बल पर भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार करना चाहता था। उसने प्रतिवर्ष भारत पर आक्रमण करने की शपथ ली थी।

2. **सम्पत्ति प्राप्त करना**—अनेक विद्वानों का मत है कि महमूद गजनवी ने इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए नहीं, वरन मन्दिरों में एकत्रित अपार सम्पदा को लूटने के उद्देश्य से भारत पर आक्रमण किए।
3. **साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिए**—महमूद को मध्य एशिया में अपने साम्राज्य को दृढ़ रखने के लिए धन की आवश्यकता थी, इसलिए भी उसने भारत पर आक्रमण किए। उल्लेखनीय है कि धन-सम्पदा प्राप्ति के उद्देश्य से ही उसने भारत के समृद्धशाली नगरों और धन-धान्य से पूर्ण मन्दिरों को ही अपना निशाना बनाया। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भारत धन-धान्य से परिपूर्ण था। व्यापार भी उन्नति पर था। भारत 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। दूसरी ओर अराजकता व अव्यवस्था फैली थी। ऊँच-नीच के भेदभाव के कारण समाज में एकता नहीं थी। भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। भारतीय शासकों में संगठित होकर शत्रु का सामना करने की क्षमता नहीं थी। फिर भी यह निश्चित है कि महमूद गजनवी भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं चाहता था। यदि उसका ऐसा इरादा होता तो वह भारतीय राजपूत राजाओं को हराकर उनके राज्यों को अपने राज्य में सम्मिलित कर लेता।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Give a detailed description of Mahmud Ghaznavi's invasion of India.

उत्तर

महमूद गजनवी का भारत पर आक्रमण
(Mahmood Ghaznavi's Invasion of India)

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण का वर्णन निम्नलिखित है—

1. **महमूद का पहला आक्रमण**—1,000 ई० में सीमावर्ती नगरों पर हुआ। बहुत से प्रदेशों और किलों पर उसने अधिकार कर लिया। इसके बाद महमूद गजनी लौट गया। समकालीन लेखकों ने इस आक्रमण का उल्लेख नहीं किया है।
2. **महमूद का दूसरा आक्रमण**—उसी वर्ष 10,000 घुड़सवारों के साथ भारत पर हुआ। उसका उद्देश्य धर्म की ध्वजा को उन्नत करना, अपने साम्राज्य का विस्तार करना, सत्यता को ज्वलन्त करना और न्याय की शक्ति को सुदृढ़ करना था। जयपाल ने भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेना को संगठित किया। पेशावर के भयंकर युद्ध में हिन्दुओं की पराजय हुई। 15 सहस्र हिन्दू युद्ध में काम आए। उनके शवों से पृथ्वी को गलीचों की भाँति ढककर हिंसक पशुओं और पक्षियों का भोजन बनाया गया। जयपाल अपने पुत्रों, पौत्रों, सम्बन्धियों और कर्मचारियों सहित बन्दी बनाया गया। जयपाल ने एक सन्धि द्वारा 27 लाख दीनार मुक्ति धन देना स्वीकार किया। उसने 50 हाथी देने का भी वचन दिया। उसके पुत्रों और पौत्रों को सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिए बन्धक के रूप में रखा गया। अपनी विजय को पूर्ण करने के लिए महमूद ने जयपाल की राजधानी वैहन्द (Waihand) पर आक्रमण किया। वह लूट का अपार धन और युद्ध में सफलता प्राप्त कर वापस लौटा। जयपाल अपने अपमान को सहन नहीं कर सका और चिता बनवाकर अग्नि में जल गया। 1002 ई० में उसका बेटा आनन्दपाल उसका उत्तराधिकारी बना।
3. **महमूद का तीसरा आक्रमण**—भेरा के राजा के विरुद्ध था, क्योंकि उसने अपने वचन के अनुसार महमूद की सहायता नहीं की थी। राजा ने डटकर महमूद का सामना किया, किन्तु अन्त में उसे युद्ध से भागना पड़ा। महमूद की सेना द्वारा उसका पीछा किया जाने पर उसने आत्महत्या कर ली। असंख्य हिंदुओं की हत्या की गई। केवल उन्हें ही मुक्त किया गया, जिन्होंने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया।
4. **महमूद का चौथा आक्रमण**—1006 ई० में मुल्तान के शासक अब्दुल फतह दाऊद के राज्य पर हुआ। दाऊद कट्टर इस्लाम धर्म को नहीं मानता था। इस सम्प्रदाय ने 930 ई० में मक्का पर आक्रमण करके काला प्रस्तरखण्ड तथा अन्य धार्मिक चिह्न उठा लिए थे। ये निषिद्ध मांस खाने को बुरा नहीं मानते थे। महमूद के लिए दाऊद को राजपूतों के समान काफिर समझना स्वाभाविक था। महमूद ने 1006 ई० में गजनी से मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। चूँकि इसका मार्ग पंजाब से होकर जाता था, इसलिए आनन्दपाल ने उसका विरोध किया, किन्तु वह पराजित हुआ। महमूद ने उसका कश्मीर तक पीछा करके उसे भगा दिया। सात दिन तक निरन्तर युद्ध के पश्चात् महमूद ने मुल्तान पर आक्रमण किया। महमूद ने प्रजा पर उसके पापों को क्षमा करने के लिए 20,000 दरहम अदा करने का दण्ड दिया। महमूद ने जयपाल के पौत्र सुखपाल उपनाम नवासाशाह (जयपाल के पौत्र) को पंजाब और मुल्तान का स्वामी बना दिया और गजनी लौट गया।

5. **महमूद का पाँचवाँ आक्रमण**—कुछ समय बाद महमूद को सूचना मिली कि सुखपाल ने उसकी अधीनता और इस्लाम धर्म दोनों का त्याग कर दिया है। अत: सुखपाल को दण्ड देने के लिए महमूद ने एक बार पुन: आक्रमण किया। सुखपाल (नवासाशाह) को पराजित करके उसने शासन-प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया और सुखपाल को बन्दीगृह में डाल दिया गया।
6. **महमूद का छठा आक्रमण**—1008 ई० में आनन्दपाल के विरुद्ध हुआ। आनन्दपाल ने अजमेर, दिल्ली, उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर और कन्नौज के राजाओं का संघ बनाया। इस कथन की सत्यता पर सन्देह किया जाता है, किन्तु यह निश्चित है कि आनन्दपाल ने अपने साथी राजाओं को महमूद के विरुद्ध युद्ध लड़ने के लिए संघ बनाने का निमन्त्रण दिया था। तुर्कों का विरोध करने के लिए आनन्दपाल ने विशाल सेना एकत्रित की। ऐसा कहा जाता है कि हिन्दू स्त्रियों ने अपने आभूषण बेचकर तथा सोने को ढलवाकर अपने पतियों की सहायता की। निर्धन लोगों ने मजदूरी से संचित किए हुए धन से सहायता की। मुल्तान के खोखरों ने महमूद के विरुद्ध सहयोग दिया। इस युद्ध मे हार और जीत का निर्णय कठिन था। 30,000 खोखरों ने नंगे पाँव और नंगे सिर हाथों में भाले लेकर घमासान युद्ध में प्रवेश करके 3 या 4 सहस्र मुसलमानों का वध कर दिया। महमूद ने भयभीत होकर सन्धि की प्रार्थना करने का विचार किया। दुर्भाग्य से आनन्दपाल का हाथी भयभीत होकर युद्ध से भाग निकला। इस प्रकार पासा पलट गया। अस्त-व्यस्त वातावरण में हिन्दू युद्ध से भागने लगे। मुसलमानों ने उन्हें पकड़कर उनका वध किया। मुसलमानों के हाथों में लूट में अमूल्य सम्पत्ति आई।
7. **महमूद का सातवाँ आक्रमण**—1009 ई० में काँगड़ा के पहाड़ी प्रदेश नगरकोट पर हुआ। हिन्दुओं ने नगरकोट के किले में बहुत-सा धन एकत्रित कर रखा था। मुसलमानों ने इस किले को घेर लिया। हिन्दुओं ने मुसलमानों की सेना के दल को आते देखकर भय से किले के द्वार खोल दिए और उनके सामने आत्मसमर्पण कर दिया। **फरिश्ता के** अनुसार, "महमूद 7,00,000 स्वर्ण दीनार, 700 मन चाँदी के पात्र, 200 मन शुद्ध स्वर्ण मुद्राएँ और 2,000 मन अपरिष्कृत रजत और 20 मन पन्ने, हीरे, रत्न, मोती आदि बहुमूल्य मणियाँ अपने साथ लेकर लौटा।" ऐसा कहा जाता है कि महमूद ने गजनी लौटकर अग्नि की भाँति चमकने वाले रत्नों, पन्ने, मोतियों और हीरों तथा हिमखण्डों में जमाई गई मदिरा जैसी आभा वाले लालों, मरकत मणियों और भार व आकार में अनार की भाँति रत्न की सार्वजनिक प्रदर्शनी की।
8. **महमूद का आठवाँ आक्रमण**—1010 ई० में मुल्तान पर हुआ। उसने विद्रोही शासक दाऊद को पराजित करके उसको दण्डित किया।
9. **महमूद का नवाँ आक्रमण**—आनन्दपाल पर हुआ, क्योंकि पराजित होने के बाद आनन्दपाल ने साहस नहीं छोड़ा था। उसने शत्रु का अन्त तक विरोध करने का प्रण किया। उसने नन्दनाह को अपनी राजधानी बनाया व एक लघु सेना एकत्रित करके साल्ट रेंज (Salt Range) के प्रदेश में अपनी शक्ति को दृढ़ किया। त्रिलोचनपाल अपने पिता आनन्दपाल का उत्तराधिकारी बना। 1014 ई० में महमूद ने थोड़े-से समय के घेरे के बाद नन्दनाह पर अधिकार कर लिया। त्रिलोचनपाल ने भागकर कश्मीर में शरण ली। महमूद ने वहाँ भी उसका पीछा किया और त्रिलोचनपाल और कश्मीर के शासक के सेनापति की सेनाओं को पराजित किया।

   महमूद ने कश्मीर में प्रवेश करना सुरक्षित नहीं समझा। त्रिलोचनपाल ने भी पंजाब में ही लौटकर शिवालिक की पहाड़ियों में अपनी शक्ति स्थापित की। बुन्देलखण्ड का शासक विद्याधर उस समय उत्तर भारत में बहुत शक्तिशाली था। त्रिलोचनपाल ने उसके साथ मित्रता स्थापित की। इस संगठन को तोड़ने के उद्देश्य से महमूद भारत में आया और उसने रामगंगा के निकट युद्ध में त्रिलोचनपाल को पुन: पराजित किया। 1021-22 ई० में त्रिलोचनपाल का वध कर दिया गया और उसका बेटा भीमपाल उसका उत्तराधिकारी बना। उसकी भी 1026 ई० में मृत्यु हो गई। इस प्रकार उस हिन्दू शाही वंश का अन्त हो गया, जिसने मुसलमानों के भारत में प्रसार को रोकने के लिए अथक प्रयत्न किया।
10. **महमूद का दसवाँ आक्रमण**—1014 ई० में थानेश्वर पर हुआ। हिन्दुओं ने उसका डटकर सामना किया, किन्तु फिर भी उनकी हार हुई। थानेश्वर का किला अतुल लूट की सामग्री सहित महमूद के हाथ लगा। उसने शहर को लूटा। चक्र स्वामी मन्दिर की मूर्ति गजनी ले जाकर सार्वजनिक स्थान पर फेंक दी गई।
11. **महमूद का ग्यारहवाँ आक्रमण**—1015 और 1021 ई० के मध्य में हुआ। इन आक्रमणों में उसने कश्मीर की विजय के लिए दो प्रयास किए, किन्तु दोनों अवसरों पर उसे असफलता ही प्राप्त हुई। अन्त में, उसने कश्मीर विजय करने का विचार छोड़ दिया।
12. **महमूद का बारहवाँ आक्रमण**—कन्नौज पर हुआ। कन्नौज हिन्दुस्तान के साम्राज्य की प्रसिद्ध राजधानी थी। महमूद ने सन् 1018 ई० में गजनी से प्रस्थान किया। मार्ग में उसने सभी किलों पर अधिकार कर लिया। महमूद बरन (वर्तमान बुलन्दशहर) पहुँचा। वहाँ के शासक हरदत्त ने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली और दस-सहस्र साथियों सहित इस्लाम स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् महमूद ने यमुना के तट पर महावन प्रदेश के अधिपति कुलचन्द पर आक्रमण किया

(महावन वर्तमान काल में मथुरा जिले की एक तहसील का प्रमुख स्थान है)। हिन्दुओं ने वीरतापूर्वक महमूद का सामना किया, किन्तु वे पराजित हो गए। 50 सहस्र हिन्दुओं को मारकर नदी में बहा दिया गया। कुलचन्द ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपनी दोनों पत्नियों को काट दिया और स्वयं आत्महत्या कर ली। इस आक्रमण में महमूद को 185 हाथी मिले और विशाल सम्पत्ति हाथ लगी।

13. **महमूद का तेरहवाँ आक्रमण**—हिन्दुओं के पवित्र स्थान मथुरा पर हुआ। मथुरा को सुदृढ़ तथा सभी रूपों में सुन्दर मन्दिरों का नगर कहा जाता है। **उत्बी** के वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि "इन मन्दिरों में शुद्ध सोने की मूर्तियाँ थीं। 6 में से 5 मूर्तियाँ 5 क्यूबिक ऊँची थीं। उनमें से एक पर इतनी बहुमूल्य मणियाँ जड़ी हुई थीं कि यदि सुल्तान उसको बाजार में बिकता हुआ देखता तो 50 सहस्र दीनारें भी इसके वास्तविक मूल्य से बहुत कम समझता और बड़ी खुशी से इसे मोल ले लेता।" दूसरी मूर्ति पर समुद्री आभा की भाँति नीलम का एक ही इतना बड़ा ठोस टुकड़ा लगा हुआ था जिसका मूल्य मिश्काल के 400 भारों जितना था। एक अन्य मूर्ति के दोनों चरणों से उनको 4,00,000 मिश्काल तोले का सोना मिला। 'चाँदी की मूर्तियाँ' तो इनसे सौगुणी अधिक थीं जिनको तोलने के लिए नियुक्त लोगों को बहुत समय लगाना पड़ा। महमूद ने सारे नगर को विध्वंस कर दिया और एक कोने से दूसरे कोने तक लूटा।
14. **महमूद का चौदहवाँ आक्रमण**—वृन्दावन शहर पर हुआ। यह शहर चारों ओर किलों से सुरक्षित था, उसकी भी यही दशा हुई। नगर का राजा शत्रु के आक्रमण की सूचना पाकर भाग खड़ा हुआ। लूटमार से महमूद को अपना धन प्राप्त हुआ। 1019 ई० के जनवरी मास में महमूद कन्नौज के द्वार पर जा पहुँचा। इस नगर में 7 दुर्ग और 10 सहस्र मन्दिर थे। कन्नौज के प्रतिहार वंशीय राजा ने बिना विरोध के महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। एक ही दिन में 7 दुर्गों पर महमूद ने अपना अधिकार जमा लिया और सम्पूर्ण दस हजार मन्दिरों को नष्ट कर दिया। नगरवासियों का वध करके उनकी सम्पत्ति लूट ली गई।

    लौटते समय मार्ग में पड़ने वाले मुंज, असनी और शरवा (Sharwa) के दुर्गों के रक्षकों को परास्त कर उसने वहाँ अपना अधिकार जमा लिया। इन सब आक्रमणों में महमूद को 3,00,000 दरहम मूल्य की सम्पत्ति, 55,000 दास और 350 हाथी लूट में मिले।
15. **महमूद का पन्द्रहवाँ आक्रमण**—राज्यपाल द्वारा बिना विरोध के आत्मसमर्पण कर देने को अन्य राजपूतों ने कलंक समझकर उसका विरोध किया। कालिंजर के चन्देल वंशीय राजा गोण्ड ने सबसे पहले अपना क्रोध दिखाया। गोण्ड ने ग्वालियर के शासक के सहयोग से राज्यपाल को परास्त कर उसका वध कर डाला। यह सूचना मिलते ही महमूद ने चन्देल राजा को दण्ड देने का निश्चय किया। 1019 ई० की हेमन्त ऋतु में उसने गजनी से प्रस्थान किया। प्रबल विरोध का सामना करते हुए उसने चन्देल राज्य में प्रवेश किया। इस युद्ध में महमूद को आशा के विपरीत सफलता मिली और लूट की बहुत-सी सामग्री भी प्राप्त हुई।
16. **महमूद का सोलहवाँ आक्रमण**—1021-22 ई० में महमूद को घेरकर उसके शासक को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् वह चन्देल राजा गोण्ड के प्रसिद्ध दुर्ग कालिंजर की ओर बढ़ा। महमूद की शक्ति का अनुभव करके गोण्ड ने सन्धि करना उचित समझा। वहाँ से बहुमूल्य लूट की सामग्री प्राप्त करके महमूद गजनी लौट गया।
17. **महमूद का सत्रहवाँ आक्रमण**—महमूद का सबसे प्रसिद्ध आक्रमण 1024 ई० में सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ। 1024 ई० के अक्टूबर मास में वह गजनी से रवाना हुआ। उसने राजपूताना के रेगिस्तान को पार करने के लिए अच्छी तरह तैयारियाँ की थीं। प्रत्येक सैनिक अपने साथ एक सप्ताह के लिए खाना, पानी और अपने घोड़े की खुराक लेकर चला था। युद्ध सामग्री का लिए 30,000 ऊँट प्रयोग में लाए गए थे। 1025 ई० में जनवरी मास में जब महमूद अन्हिलवाड़ा में पहुँचा तो वहाँ का शासक राजा भीमराव अपने साथियों सहित अपनी राजधानी छोड़कर भाग गया। शहर में जो लोग शेष रह गए, उन्हें परास्त करके लूट लिया गया। इसके थोड़े दिन बाद ही महमूद सोमनाथ के द्वार पर पहुँचा।

ऐसा कहा जाता है कि सोमनाथ के पतन के बाद महमूद ने मूर्ति को खण्डित करना चाहा। ब्राह्मणों ने किसी भी मूल्य पर उसे इस इच्छा को त्यागने की प्रार्थना की। महमूद ने उत्तर दिया कि वह 'मूर्ति विक्रेता' के स्थान पर 'मूर्तिभंजक' कहलवाना अधिक उचित समझता है। महमूद ने मूर्ति को खण्डित किया और उसके टुकड़े गजनी भेज दिए। मन्दिर का कोष लूटने से भारी संख्या में हीरे, मोती और रत्न उसे प्राप्त हुए।

प्र.2. मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय भारत के प्रमुख राज्यों की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
Describe the political condition of main Indian states at the time of Muhammad Ghori's invasion.

उत्तर

राजनीतिक स्थिति
(Political Condition)

बारहवीं शताब्दी में मुहम्मद गोरी के भारतीय अभियान के समय सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था जिनमें से तीन राज्यों (सिन्ध, मुल्तान, पंजाब) पर तब तक मुसलमानों का अधिकार हो चुका था तथा शेष भारत पर हिन्दू शासक राज्य कर रहे थे। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत में निम्नलिखित राज्य थे—

1. **सिन्ध**—सिन्ध प्रदेश पर महमूद गजनवी ने अपना आधिपत्य स्थापित किया था। महमूद गजनवी की मृत्यु के उपरान्त शिया सम्प्रदाय के सुम्र-वंशीय मुसलमानों ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया था।
2. **मुल्तान**—सिन्ध के उत्तर में पश्चिमी पंजाब में स्थित मुल्तान में बारहवीं शताब्दी में करमार्थियन सम्प्रदाय के मुसलमान शासन करते थे। करमार्थियन सम्प्रदाय के मुसलमान भी शिया थे।
3. **पंजाब**—पंजाब पर महमूद गजनवी ने अधिकार किया था तथा 1186 ई० तक पंजाब निरन्तर गजनवी वंश के साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहा। पंजाब राज्य की सीमाएँ उत्तर-पूरब में जम्मू तक, दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम में उसकी सीमाएं घटती-बढ़ती रहती थीं, उत्तर में पेशावर व सियालकोट तक विस्तृत थीं। 1186 ई० में मुहम्मद गोरी ने पंजाब की राजधानी लाहौर पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। पंजाब के तत्कालीन शासक मलिक खुसरव को उसकी मृत्यु के समय (1192 ई०) तक कैद करके रखा गया।
4. **कश्मीर**—1003 ई० में रानी दिद्दा की मृत्यु के बाद कश्मीर में लोहर वंश की स्थापना हुई। इस वंश का संस्थापक संग्रामराज था। लोहर वंश के शासनकाल में हर्ष नामक एक शासक हुआ जिसने अपनी निर्दयता एवं विलासिता के कारण जनता को अपने विरुद्ध कर लिया। प्रजा ने शीघ्र ही हर्ष के विरुद्ध विद्रोह कर दिया एवं उसके पुत्र की हत्या कर दी। लोहर वंश में हर्ष के पश्चात् उच्छल, रद्ध, सुस्सल, भिक्षाचार, जयसिंह आदि शासक बने। जयसिंह ने 27 वर्ष तक शासन किया। जयसिंह के पश्चात् उसके पुत्र परमानुक एवं वन्तिदेव ने 1172 ई० तक राज्य किया। वन्तिदेव लोहर वंश का अन्तिम शासक था। लोहर वंश के पतन के पश्चात् कश्मीर में अनेक अयोग्य शासक हुए। अन्त में, शाहमीर नामक एक मुसलमान ने, 1339 ई० में अन्तिम हिन्दू शासिका रानी कोटा को हटाकर, कश्मीर पर अधिकार कर लिया तथा स्वयं 'शमशुद्दीन' के नाम से राजगद्दी पर बैठा। इस प्रकार कश्मीर में मुसलमान शासकों का आधिपत्य स्थापित हो गया।
5. **कामरूप (आसाम)**—1000 ई० तक प्रालम्भ के वंशज शासन करते थे। कामरूप की राजधानी ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर हारूपेश्वर नामक नगर था। प्रालम्भ वंश के अन्तिम शासक त्यागसिंह की मृत्यु के उपरान्त ब्रह्मपाल नामक व्यक्ति को जनता ने शासक चुना। ब्रह्मपाल के पुत्र रत्नपाल ने सम्भवत: 1068 ई० में चालुक्य शासक विक्रमादित्य को परास्त किया था। बंगाल के पाल-वंशीय शासक रामपाल द्वारा ब्रह्मपाल के वंश का अन्त हुआ तथा उसने तिंग्यदेव को अपने अधीन कामरूप का शासक बनाया। कुमारपाल के शासनकाल में तिंग्यदेव द्वारा विद्रोह किया गया जिसे दबाने के लिए कुमारपाल ने अपने मन्त्री वैद्यदेव को कामरूप भेजा किन्तु वैद्यदेव कुछ समय पश्चात् स्वयं ही कामरूप का शासक बन बैठा।
6. **नेपाल**—नेपाल में ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक सामन्त अत्यन्त शक्तिशाली हो चुके थे। नेपाल में दो-तीन शक्तिशाली सामन्त पाटन, भटगांव तथा काठमाण्डू को राजधानी बनाकर राज्य करते थे। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में तिरहुत के शासक नान्यदेव ने सम्पूर्ण नेपाल पर अधिकार कर लिया। नान्यदेव की मृत्यु के उपरान्त नेपाल पर नेपाल के पुराने राजवंश के शासकों ने तिरहुत के राजाओं की अधीनता में राज्य किया। तत्पश्चात् नेपाल में मल्लवंशीय शासकों द्वारा राज्य किया गया। मल्लवंश का संस्थापक अरिमल्लदेव था।
7. **कन्नौज**—कन्नौज में राजपूतों की शाखा गहड़वालों का शासन था। प्रारम्भ में गहड़वालों का राज्य बनारस, अवध, इलाहाबाद व दिल्ली तक विस्तृत था। गहड़वाल वंश के शक्तिशाली राजाओं की विजयों के परिणामस्वरूप गहड़वाल साम्राज्य की सीमाएँ दूर-दूर तक विस्तृत हो गईं व उसकी गणना उत्तर भारत के शक्तिशाली राज्यों में होने लगी। गहड़वाल वंश का सर्वाधिक प्रतापी शासक गोविन्दचन्द्र हुआ जिसने तुर्क आक्रमणकारियों को भी परास्त करने का गौरव प्राप्त किया था। गोविन्दचन्द्र का पौत्र जयचन्द्र था। जयचन्द्र को समकालीन मुसलमान लेखकों ने भारत का सबसे बड़ा सम्राट बताया है। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय जयचन्द्र ही कन्नौज का शासक था।
8. **चेदि**—चेदि साम्राज्य में कलचुरि शासन कर रहे थे। कलचुरियों की राजधानी **त्रिपुरी** थी जो आधुनिक जबलपुर के निकट थी। इस वंश का संस्थापक वामराजदेव था। इस वंश के प्रतापी शासकों में गांगेयदेव एवं लक्ष्मीकर्ण के नाम उल्लेखनीय हैं। गांगेयदेव ने अपने साम्राज्य को न केवल शक्तिशाली बनाया वरन् उसका विस्तार भी किया। गांगेयदेव ने प्रयाग तथा बनारस पर अधिकार किया तथा उड़ीसा पर भी विजय प्राप्त की। **रंवा** अभिलेख के अनुसार, "उसके सैनिकों द्वारा मारे गए हाथियों के रुधिर से समुद्री किनारों का समस्त क्षेत्र कीचड़मय हो गया।" 1041 ई० में गांगेयदेव की मृत्यु के पश्चात्

लक्ष्मीकर्ण शासक बना जिसने 1072 ई० तक शासन किया। लक्ष्मीकर्ण अपने पिता से भी अधिक पराक्रमी शासक प्रमाणित हुआ तथा विभिन्न विजयों को प्राप्त करके तत्कालीन उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक बन गया। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय कलचुरि वंश का शासक विजयसिंह था।

9. **जैजाकभुक्ति**—जैजाकभुक्ति साम्राज्य में चन्देल-वंशीय शासक शासन कर रहे थे। चन्देल साम्राज्य में बुन्देलखण्ड, कालिंजर, झांसी आदि सम्मिलित थे। इस वंश के प्रमुख शासकों में यशोवर्मा (930-950 ई०), धंग (950-1002 ई०), विद्याधर (1018-1029 ई०), एवं मदनवर्मा (1129-1163 ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं।
यशोवर्मा ने कलचुरियों से युद्ध लड़ा तथा कालिंजर उनसे छीन लिया। यशोवर्मा के पश्चात् धंग ने पंजाब के राजा जयपाल को सुबुक्तगीन के विरुद्ध सहायता दी थी। धंग के पुत्र गंड ने पंजाब के राजा आनन्दपाल को महमूद गजनवी के आक्रमणों के विरुद्ध सहायता दी थी। गंड के पश्चात् विद्याधर चन्देल साम्राज्य का शासक बना। विद्याधर अत्यन्त शक्तिशाली शासक था तथा उसका साम्राज्य चम्बल से नर्मदा तक विस्तृत था। विद्याधर के शासनकाल में महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। **डॉ० मजूमदार** के अनुसार, विद्याधर ही एकमात्र ऐसा शासक था जिसके विरुद्ध महमूद को सफलता प्राप्त नहीं हुई थी और उसने विवश होकर विद्याधर से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया। विद्याधर के पश्चात् विजयपाल, कीर्तिवर्मा, मदन वर्मा आदि राजाओं ने शासन किया। मदनवर्मा के पश्चात् परमर्दिदेव (1165-1202 ई०) शासक बना। परमर्दिदेव के शासनकाल में ही मुहम्मद गोरी का आक्रमण भारत पर हुआ था।

10. **मालवा**—प्रतिहारों के पतन के पश्चात् मालवा पर परमार-वंशीय शासकों ने अधिकार कर लिया। इस वंश के प्रमुख शासक वाक्पति द्वितीय एवं भोजराज थे। वाक्पति द्वितीय (973-996 ई०) के शासनकाल में मालवा की सैनिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अपार उन्नति हुई। उसने अपने साम्राज्य की सीमाएँ दूर-दूर तक विस्तृत कर दी थीं। वाक्पति द्वितीय के पश्चात् कुछ समय तक सिन्धुराज ने शासन किया। तत्पश्चात् परमार वंश का सबसे प्रतापी शासक भोज परमार साम्राज्य की राजगद्दी पर आसीन हुआ। भोज ने 1010 ई० से 1055 ई० तक शासन किया तथा चेदि, कर्णाट, लाट, तुरुष्क आदि प्रदेशों पर विजय प्राप्त की। भोज ने अपने जीवन के अन्तिम समय तक युद्धों में भाग लिया तथा महमूद के विरुद्ध भी सम्भवत: उसने युद्ध लड़ा। भोज के पश्चात् यद्यपि मालवा में अनेक परमार शासकों ने राज्य किया किन्तु वे निर्बल प्रमाणित हुए। 1135 ई० में मालवा पर चालुक्य शासक जयसिंह सिद्धराज ने अधिकार कर लिया। लगभग 20 वर्ष तक मालवा पर चालुक्यों का ही अधिकार रहा किन्तु परमार शासक विन्ध्यवर्मन ने चालुक्य नरेश मूलराज द्वितीय को परास्त कर पुन: मालवा पर परमारों का आधिपत्य स्थापित किया। विन्ध्यवर्मन की मृत्यु 1193 ई० में हुई।

11. **अन्हिलवाड़**—पश्चिम भारत के शक्तिशाली राज्यों में अन्हिलवाड़ के चालुक्यों का साम्राज्य प्रमुख था। चालुक्यों के राज्य के उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों, जिन पर विदेशियों का राज्य था, से मिले होने के कारण इस राज्य का विशेष महत्व था। इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी शासक जयसिंह सिद्धराज था। जयसिंह सिद्धराज ने अपने शासनकाल (1094-1142 ई०) में अपने साम्राज्य का विस्तार किया। 1143 ई० में कुमारपाल शासक बना, उसने कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन को परास्त किया। इसके अतिरिक्त, उसने अजमेर के शासक अर्णोराज व सौराष्ट्र के शासक पर विजय प्राप्त की। कुमारपाल ने 1172 ई० तक शासन किया। कुमारपाल के पश्चात् अजयपाल ने 1173 ई० से 1176 ई० तक शासन किया। अजयपाल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मूलराज द्वितीय शासक बना। मूलराज के शासनकाल की प्रमुख घटना मुहम्मद गोरी का आक्रमण है। इस युद्ध में मूलराज की सेना ने मुहम्मद गोरी को परास्त किया। 1178 ई० में मूलराज की मृत्यु के पश्चात् भीम द्वितीय (1178-1241 ई०) शासक बना। भीम ने कुतुबुद्दीन के आक्रमण का वीरता से सामना करके उसे परास्त किया।

12. **बंगाल**—गुप्त-काल में बंगाल मगध-साम्राज्य का ही एक अंग था, किन्तु गुप्त वंश के पतन के पश्चात् बंगाल छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। हर्ष का समकालीन बंगाल का शासक शशांक था। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बंगाल में व्याप्त अराजकता को समाप्त करने के उद्देश्य से जनता ने गोपाल नामक व्यक्ति को बंगाल का शासक बनाया। इस प्रकार बंगाल में पाल वंश की स्थापना हुई।
पाल वंश के प्रमुख शासक धर्मपाल, देवपाल व महीपाल थे। इन शासकों के शासनकाल में पाल साम्राज्य उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया था तथा सम्पूर्ण बंगाल व बिहार पाल साम्राज्य के अन्तर्गत था। किन्तु बारहवीं शताब्दी में पाल साम्राज्य का तीव्रता से पतन हुआ। रामपाल की मृत्यु के पश्चात् पाल शासक आमोद-प्रमोद में लग्न रहे। शीघ्र ही ब्रह्मपुत्र की घाटी स्वतन्त्र हो गई तथा दक्षिण बंगाल भी पालों के हाथों से निकल गया। अनेक छोटे-छोटे सामन्त स्वतन्त्र शासक बन गए। पाल साम्राज्य मात्र उत्तरी बंगाल तक ही सीमित रह गया। अन्त में सेन शासकों ने पाल साम्राज्य का अन्त कर दिया।

13. **मेवाड़**—मेवाड़ में गुहिल वंश राज्य कर रहा था। गुहिल वंश की ग्यारहवीं शताब्दी में हुई कोई उल्लेखनीय घटना ज्ञात नहीं है। चालुक्य शासक कुमारपाल ने 1151 ई० में गुहिलों पर आक्रमण करके चित्तौड़ के किले पर अधिकार कर लिया। नड्डुल के चाहमान शासक कीर्तिपाल ने 1179 ई० में महारावल सामन्तसिंह को परास्त किया तथा मेवाड़ पर अधिकार कर लिया। सामन्तसिंह के अनुज कुमारसिंह ने 1182 ई० में पुन: मेवाड़ पर अधिकार किया।
14. **दिल्ली**—दिल्ली में ग्यारहवीं शताब्दी में तोमर वंश शासन कर रहा था। 1043 ई० में महीपाल तोमर ने नगरकोट, थानेश्वर एवं हाँसी पर अधिकार कर लिया। महीपाल ने गजनी के शासकों के अधीन लाहौर पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन करना चाहा किन्तु वह उसमें सफल न हो सका। शीघ्र ही चाहमान शासक विग्रहराज चतुर्थ ने तोमर राज्य पर आक्रमण किया तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार तोमर वंश का मुहम्मद गोरी के आक्रमण से पूर्व ही अन्त हो गया।
15. **शाकम्भरी**—राजपूतों का एक प्रमुख राज्य शाकम्भरी के चाहमानों का था। इस वंश ने तुर्क आक्रमणकारियों का अत्यन्त वीरता से सामना किया एवं भारतीय संस्कृति व सभ्यता को सुरक्षित रखने का अथक प्रयास किया। इस वंश के शासक विग्रहराज प्रथम ने नवीं शताब्दी में सिन्ध के सुल्तान को पराजित किया था। चाहमान वंश की चालुक्य वंश से निरन्तर प्रतिस्पर्धा चलती रही। चालुक्य राजा मूलराज प्रथम ने चाहमान शासक विग्रहराज द्वितीय को पराजित किया। तदुपरान्त चालुक्य जयसिंह सिद्धराज ने अपनी पुत्री का विवाह चाहमान शासक अर्णोराज से करके इस संघर्ष को समाप्त किया, किन्तु कुमारपाल चालुक्य ने पुन: इस संघर्ष को प्रारम्भ किया व अर्णोराज को पराजित किया। अर्णोराज के उत्तराधिकारी विग्रहराज चतुर्थ (1150-1164 ई०) ने चाहमान साम्राज्य को सुदृढ़ बनाया व दिल्ली तथा हांसी पर अधिकार करके अपने साम्राज्य का विस्तार किया। विग्रहराज चतुर्थ ने तुर्कों को जयपुर के पास पराजित किया तथा भटिण्डा के समीपवर्ती प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार विग्रहराज चतुर्थ ने आर्यावर्त को विदेशियों से मुक्त किया। 1178 ई० में चाहमान वंश का शासक पृथ्वीराज तृतीय बना। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय दिल्ली व अजमेर का शासक पृथ्वीराज तृतीय ही था। पृथ्वीराज एक कुशल सेनापति एवं योद्धा था। उसने 1191 ई० में तराइन के प्रथम युद्ध में मुहम्मद गोरी को पराजित किया। 1192 ई० में गोरी ने पुन: आक्रमण किया। तराइन के द्वितीय युद्ध में भी पृथ्वीराज ने अत्यन्त वीरता से तुर्क आक्रान्ताओं का सामना किया किन्तु मुहम्मद गोरी इस युद्ध में विजय प्राप्त करने में सफल हो गया। पृथ्वीराज को बन्दी बनाया गया तथा बाद में उसकी हत्या कर दी गई।

इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था तथा भारत में राजनीतिक एकता (Political Integration) का सर्वथा अभाव था। भारत की सुरक्षा के लिए कोई एक रक्षा व्यवस्था न थी। इन राज्यों में भी मधुर सम्बन्ध न थे वरन् पारस्परिक वैमनस्य के कारण सदैव एक-दूसरे पर आक्रमण करते रहते थे। यही कारण था कि जब मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया तो राजपूत शासक शक्तिशाली, वीर एवं पराक्रमी होने के पश्चात् भी भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा न कर सके। अत: स्पष्ट है कि तुर्क आक्रान्ताओं की विजय में तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का भी महत्वपूर्ण योगदान था।

प्र.3. मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण कब किया? वर्णन कीजिए।
When did Muhammad Ghori attack India? Describe.

***अथवा* चौहान पृथ्वीराज-III और मुहम्मद गौरी के मध्य हुए युद्धों का विवरण दीजिए।** **(2021)**

***Or* Describe the battles fought between Prithviraj Chauhan-III and Muhammad Ghori.**

उत्तर

मुहम्मद गोरी का भारत पर आक्रमण
(Muhammad Ghori's Invasion of India)

मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण का वर्णन निम्न प्रकार हैं—

1. **मुल्तान व सिन्ध पर आक्रमण**—1175 ई० में मुहम्मद गोरी ने प्रथम आक्रमण मुल्तान पर किया। उसने विधर्मियों को सुगमता से परास्त किया तथा मुल्तान पर अपना अधिकार जमा लिया। मुल्तान की देखभाल के लिए उसने एक धर्मपरायण राज्यपाल की नियुक्ति की। मुल्तान पर अधिकार जमाने के उपरान्त मुहम्मद गोरी सिन्ध के ऊपरी भाग उच्च की ओर बढ़ा। भट्टी के शासक तथा उसकी पत्नी के मध्य में अमैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। मुहम्मद ने इन खराब सम्बन्धों का लाभ उठाया और उस महिला की कन्या से विवाह करने का वचन इस शर्त पर दिया कि वह अपने पति का अन्त कर दे। उस रानी ने अपने पति को विष दे दिया, किन्तु उसकी पुत्री को मुहम्मद गोरी ने पटरानी पद से वंचित रखा। विद्वान् इस कहानी की मौलिकता पर संशय करते हैं और इस ओर संकेत करते हैं कि भट्टी राजपूतों का सिन्ध के किसी भी भाग पर अधिकार नहीं था। उसका शासक उस समय सम्भवत: मुसलमान था। सन् 1182 ई० में मुहम्मद गोरी ने सिन्ध के निचले भाग पर आक्रमण किया और सुमेरा वंश के शासक को अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया।

2. **अन्हिलवाड़ा पर आक्रमण**—मुहम्मद गोरी ने अन्हिलवाड़ा अथवा पट्टन पर भी आक्रमण किया। यह गुजरात के बघेला वंश के शासक भीम द्वितीय की राजधानी थी। यहाँ पर भी मुहम्मद गोरी को गुजरात के शासक ने परास्त किया।
3. **पंजाब पर आक्रमण**—मुहम्मद गोरी यह बात अच्छी तरह समझ गया कि भारत पर विजय सिन्ध तथा मुल्तान से होनी असम्भव है और भारत पर विजय प्राप्त करने के लिए पंजाब ही उचित मार्ग है। सन् 1179 ई० में उसने पेशावर पर आक्रमण किया तथा उस पर अपना अधिकार जमा लिया। उस समय पेशावर पंजाब के शासक के अधीन था। सन् 1181 ई० में मुहम्मद गोरी खुसरो मलिक को पराजित करने के लिए आगे बढ़ा। खुसरों मलिक ने युद्ध के स्थान पर उसे अमूल्य भेंट दी और अपने बेटे को बन्धक के रूप में भेंट किया। उसने सन् 1185 ई० में पंजाब पर पुन: आक्रमण किया तथा पंजाब के देहातों को लूटा। उसने स्यालकोट के किले पर अधिकार कर लिया तथा उसने अपने सैनिकों से किलाबन्दी करवाई। जब खुसरों मलिक ने देखा कि मुहम्मद गोरी उसे पंजाब से बाहर निकालने पर तुला हुआ है, तो उसने खोखरों के साथ सन्धि कर ली। उनकी सहायता से खुसरों मलिक ने स्यालकोट का घेरा डाला, परन्तु उस पर अधिकार करने में वह सफल नहीं हो सका। सन् 1186 ई० में मुहम्मद गोरी ने पंजाब पर पुन: आक्रमण किया और लाहौर को घेर लिया। जम्मू के शासक राजा चन्द्रदेव ने मुहम्मद गोरी को निमन्त्रण भेजा था, क्योंकि खुसरों मलिक से उसकी शत्रुता थी। जब मुहम्मद गोरी आमने-सामने युद्ध में खुसरों मलिक को हराने में सफल नहीं हुआ, तब उसने युद्ध के दाँव-पेचों की शरण ली। उसने खुसरों मलिक को अपने पास आने के लिए मना लिया और उसकी रक्षा का विश्वास दिलाया। मुहम्मद गोरी ने खुसरों मलिक के बेटे को मुक्त कर दिया और जब खुसरों मलिक उसका स्वागत करने के लिए बाहर आया तो उसे बन्दी बना लिया और अन्त में सन् 1192 ई० में उसका वध कर दिया।
4. **तराइन का पहला युद्ध (1191 ई०)**–मुहम्मद गोरी ने पंजाब, मुल्तान और सिन्ध को जीत लिया था, परन्तु वह इन सबको जीतने के बाद भी हिन्दुस्तान का स्वामी नहीं कहला सकता था। भारतवर्ष में सम्पन्न तथा सशक्त राजपूतों के राज्य थे जोकि मुहम्मद गोरी के आगे बढ़ने तथा उनके प्रदेशों पर आक्रमण करने से रोकने को तैयार थे। उन्हें अपने वंशचरित पर अभिमान था तथा वे अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए प्राण भी दे देते थे। युद्ध लड़ना उनकी प्रिय रुचि थी और उन्होंने कभी युद्ध में पराजय और आत्मसमर्पण के विषय में विचार भी नहीं किया था। पृथ्वीराज चौहान अथवा राय पिथौरा ने जो दिल्ली तथा अजमेर का शासक था, मुहम्मद गोरी के आक्रमण को रोका। उसने 2 लाख अश्वारोही तथा 3,000 हाथियों सहित अपनी विशाल सेना का नेतृत्व करते हुए मुहम्मद गोरी के विरुद्ध चढ़ाई कर दी। उसके सहयोगी राजपूत राजकुमारों ने उसे सहायता प्रदान की। जयचन्द कन्नौज के राठौर वंश का राजा था। वह इस युद्ध से अलग रहा, क्योंकि पृथ्वीराज चौहान ने उसकी पुत्री का अपहरण करके उसका अपमान किया था।

   सन् 1191 ई० में थानेश्वर से 14 मील दूरी पर स्थित युद्ध क्षेत्र में दोनों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। मुहम्मद गोरी ने दाएँ, बाएँ तथा मध्य की चालों की सहायता ली और स्वयं मध्य की सेना का नेतृत्व किया। राजपूतों ने मुसलमानों की सेना के दोनों अंगों पर आक्रमण किया जो सभी दिशाओं में बिखरी हुई थीं। पृथ्वीराज के भाई गोविन्द राय ने मुहम्मद गोरी की भुजा में गहरा घाव कर दिया। इससे घबराकर मुहम्मद गोरी को पीछे हटना पड़ा, क्योंकि उसके घाव से रक्त बहने लगा था। उसकी शक्ति क्षीन हो गई थी और वह घोड़े से गिरने ही वाला था कि एक सैनिक ने उसकी सहायता की और उसे उठाकर युद्धक्षेत्र से बाहर ले गया। मुसलमानों की सेना तितर-बितर हो गई। राजपूतों ने चालीस मील तक उनका पीछा किया। मुहम्मद गोरी गजनी लौट गया। राजपूतों ने सरहिन्द पर घेरा डाला, परन्तु सरहिन्द विजय करने में सफल नहीं हो सके।
5. **तराइन का दूसरा युद्ध (1192 ई०)**—गजनी पहुँचकर मुहम्मद गोरी ने उन सभी अधिकारियों और सैनिकों को, जोकि युद्धक्षेत्र से भागे थे, दण्डित किया। प्रजा के सामने उनको अपमानित करके शहर में घुमाया गया। सन् 1192 ई० में मुहम्मद गोरी 1,20,000 सैनिकों की विशाल सेना सहित गजनी से चल पड़ा। एक बार उसने फिर तराइन के निकट अपना शिविर डाला। दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ। 150 राजपूत राजाओं ने पृथ्वीराज की ओर से युद्ध में भाग लिया। आरम्भ में मुसलमानों के आक्रमण का सामना करने में हिन्दू अश्वारोही सेना को सफलता मिली। प्रात: से सायंकाल तक युद्ध होता रहा। सायंकाल से थोड़े पहले ही 12,000 घुड़सवारों सहित मुहम्मद गोरी ने इतना भीषण आक्रमण किया कि "हिन्दुओं के शिविरों में हाहाकार मच गया।" राजपूत इस आक्रमण को सह नहीं सके और पराजित हो गए।

   तराइन का दूसरा युद्ध भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस युद्ध ने मुहम्मद गोरी की भारतीय रियासतों के प्रति आधारभूत सफलता को निश्चित कर दिया।
6. **कन्नौज का युद्ध**—1192 ई० में जब पृथ्वीराज की पराजय हुई तो कन्नौज का राजा जयचन्द बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु वह नहीं जानता था कि उसके भाग्य में भी ऐसा ही अन्त लिखा है। मुहम्मद गोरी ने भारत में कन्नौज के महत्त्व का अनुभव

किया। इसका शासक भारत का महान् सम्राट माना जाता था, जिसके पास विशाल प्रदेश था। ऐसे शासक को स्वतन्त्र रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। इसमें सन्देह नहीं कि मुहम्मद गोरी ने सन् 1194 ई० में कन्नौज पर चढ़ाई की और राठौर शासक का चौहान शासक की भाँति पतन हुआ।

जयचन्द के उत्तराधिकारी उसके राज्य के उस भाग पर शासन करते रहे जिसे मुहम्मद गोरी अपने अधीन नहीं कर सका था। कन्नौज को भी गहड़वाल वंश ने कुछ वर्षों के बाद पुन: प्राप्त कर लिया। सन् 1195-96 ई० में मुहम्मद गोरी ने भारत पर पुन: आक्रमण किया और चुनार के पास उसने जाटों और राजपूतों को पराजित किया। वह बिहार की ओर भी बढ़ा और उसके कुछ भाग पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद कुछ वर्षों के लिए मुहम्मद गोरी मध्य एशिया में तुर्कों के साथ युद्ध करने में व्यस्त रहा। उसकी अनुपस्थिति में कुतुबुद्दीन ऐबक ने उसके कार्यों का प्रबन्ध किया।

प्र.4. राजपूतों के पतन के लिए आप किन कारणों को उत्तरदायी मानते हैं? वर्णन कीजिए।

Whom do you believe responsible for the downfall of the Rajputs? Mention.

***अथवा* तुर्कों की राजपूतों पर विजय के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।**

***Or* Mention the causes of the victory of Turks over Rajputs.**

उत्तर

राजपूतों के पतन के कारण/तुर्कों की सफलता के कारण
(Causes of the Downfall of the Rajputas)

यद्यपि भारत पर प्राचीन समय से ही वैदेशिक आक्रमण होते रहे थे, किन्तु भारत के शक्तिशाली राजाओं की शक्ति के सम्मुख आक्रमणकारी अपनी अभिलाषाओं को पूर्ण करने में सफल न हो सके। दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में, भारत की विपुल धन-सम्पत्ति, इस्लाम का प्रचार एवं साम्राज्य-विस्तार की भावनाओं से प्रेरित होकर, तुर्कों ने भारत पर आक्रमण किये। प्रारम्भ में तो तुर्क आक्रान्ता अपने उद्देश्यों में सफल न हो सके, किन्तु 1192 ई० में मुहम्मद गोरी की तराइन के मैदान में विजय तथा 1194 ई० में चन्दावर में जयचन्द की पराजय का भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्व है, क्योंकि इन घटनाओं के पश्चात् ही तुर्क अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो सके थे।

यह अत्यन्त विस्मय की बात है कि राजपूतों के अत्यन्त पराक्रमी एवं शक्तिशाली होते हुए भी उन्हें पराजय का मुख देखना पड़ा। **स्मिथ, लेनपूल, एलफिन्सटन** आदि अनेक इतिहासकारों का मत है कि राजपूतों की पराजय का कारण यह है कि उनकी तुलना में तुर्क अधिक योग्य एवं कुशल सैनिक थे क्योंकि वे ठण्डे प्रदेशों के निवासी थे, मांसाहारी थे तथा युद्धप्रिय थे। इस मत का समर्थन **डॉ० बी० के० मजूमदार** ने भी किया है, किन्तु इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि पंजाब व काबुल की भी लगभग वैसी ही जलवायु थी जैसी कि गजनी की थी। इसके अतिरिक्त राजपूतों की युद्ध-क्षमता एवं पराक्रम पर तो किसी भी प्रकार का सन्देह किया ही नहीं जा सकता। **कर्नल टॉड** ने भी राजपूतों के पराक्रम के विषय में लिखा है, **"राजस्थान में ऐसा कोई छोटा राज्य नहीं है जिसमें थर्मोपली जैसी रणभूमि न हो, तथा शायद ही कोई ऐसा नगर मिले जहाँ लियोनिडास के समान मातृभूमि पर बलिदान होने वाला वीर पुरुष न उत्पन्न हुआ हो।"** **डॉ० कानूनगो** के अनुसार राजपूत रणक्षेत्र में वीरगति प्राप्त करना अपना सौभाग्य समझते थे। राजपूतों में युद्ध करते हुए मर जाना अपने जन्म-ऋण को चुकाना माना जाता था। अत: यह कोई अनहोनी बात न थी कि राजपूत शत्रु से मुख मोड़ने में भारी कलंक व अपमान समझते थे।

अत: उपर्युक्त मत को उचित नहीं माना जा सकता। राजपूतों के पतन का कोई एक विशिष्ट कारण नहीं था, वरन् विभिन्न कारणों ने सम्मिलित रूप से राजपूतों के पतन में सहयोग दिया। इस प्रकार उन विभिन्न कारणों, जिनसे शक्तिशाली राजपूतों की पराजय अथवा पतन हुआ, को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

I. सैन्य कारण (Military Reasons)

किसी भी युद्ध में विजय और पराजय प्रधानतया सैन्य कारणों पर ही निर्भर करती है। यद्यपि राजपूतों के शौर्य और पराक्रम में सन्देह नहीं है, किन्तु फिर भी अनेक सैनिक दुर्बलताओं के कारण उन्हें परास्त होना पड़ा। राजपूतों की पराजय के लिए निम्नलिखित सैनिक कारण उत्तरदायी थे—

1. **राजपूत राजाओं के पास स्थायी सेना का अभाव**—राजपूत शासकों ने सैन्य-संगठन को कुशल तथा सुदृढ़ बनाने की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। उनके पास नियमित सेना का अभाव था। राजपूत राजा मुख्यतया सामन्तों की सेना पर ही निर्भर रहते थे। सामन्तों की सेना में उचित सैन्य-शिक्षा व अनुभव का अभाव था। इस प्रकार सैनिकों में अनुशासन एवं सैन्य-शिक्षा के अभाव के कारण वे सुनियोजित योजना के अनुसार नहीं लड़ पाते थे। अपनी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखने

के कारण सामन्त सम्पूर्ण शक्ति एवं निष्ठा के साथ युद्ध नहीं करते थे। विभिन्न सामन्तों की सम्मिलित सेना के सैनिकों में स्वामिभक्ति विभाजित होने के कारण वे एक सेनापति के नेतृत्व में लड़ना अपने मान के विरुद्ध समझते थे। युद्धकाल में भर्ती किये जाने वाले सैनिक प्रशिक्षित भी नहीं होते थे। राजपूत सैनिकों के पेशेवर सैनिक होने के कारण उनके हृदय में किसी राज्य अथवा राजा के प्रति स्वामिभक्ति की भावना नहीं थी। इसके अतिरिक्त सैनिकों के पीछे दूसरी रक्षा पंक्ति कार्य करने को तत्पर होती तो सम्भवत: राजपूत शासन-वर्ग एक ही युद्ध में सर्वस्व दाँव पर न लगाकर बार-बार शत्रु का प्रतिरोध करते। इस विषय में **सी० वी० वैद्य** का भी विचार है कि एक स्थायी सेना के अभाव के कारण ही राजपूतों की पराजय हुई थी। तुर्क आक्रान्ताओं के पास एक अनुभवी, युद्ध-विद्या में निपुण, संगठित एवं स्थायी सेना थी जो अपने सुल्तान के प्रति निष्ठावान थी।

2. **तुर्कों की शक्तिशाली अश्व सेना**—तुर्कों की अश्व सेना राजपूतों की अश्व सेना तथा हाथियों की सेना से श्रेष्ठ थी। तुर्कों की अश्व सेना में अत्यन्त उच्च कोटि के घोड़े थे, जबकि राजपूतों के पास अच्छी नस्ल के घोड़ों का अभाव था। राजपूत-सेना में पैदल सैनिकों की संख्या अधिक थी जो गतिशीलता व पैंतरेबाजी में तुर्कों के अश्वारोहियों का सामना नहीं कर सकते थे।
3. **राजपूतों की दोषपूर्ण युद्ध-प्रणाली**—राजपूतों की युद्ध-प्रणाली में समय के साथ परिवर्तन नहीं किये गए थे। वे अपनी परम्परागत शैली से ही युद्ध करते थे। तुर्क सैनिक उस क्षेत्र से आते थे जहाँ अनेक देशों और जातियों के कुशल सेनानायक नवीन रण-पद्धतियों का सृजन करते थे। अत: उनकी युद्ध-कला का ढंग उत्कृष्ट कोटि का व आधुनिकतम होता था। राजपूत सेना में हाथियों का काफी महत्व था, जिन्हें वे शत्रु की अग्रिम सैन्य-पंक्तियों को ध्वस्त करने के लिए आगे रखते थे, किन्तु बहुधा ऐसा होता था कि बिगड़ जाने पर हाथी अपनी ही सेना को रौंदने लगते थे। तुर्क, हाथियों का प्रयोग शत्रुओं के द्वारा दुर्गों के तोड़ने अथवा शत्रुओं के हाथियों को रोकने के लिए करते थे। राजपूत सेनापति हाथी पर बैठकर युद्ध करना गौरव समझते थे, जबकि यह उनकी भारी भूल थी, क्योंकि शत्रु सुगमता से सेनापति का पता लगाकर उसे घायल कर देते थे, जिससे सेना में भगदड़ मच जाती थी।
4. **तुर्क एवं राजपूत सैनिकों के दृष्टिकोण में भिन्नता**—तुर्क एवं राजपूत सैनिकों के दृष्टिकोणों में बहुत अन्तर था। राजपूतों की सेना, सामन्तों की सेना पर निर्भर थी जिनके सैनिकों में स्वामिभक्ति का अभाव था। ऐसी सेना कार्यकुशल अथवा विश्वसनीय नहीं थी। इसके विपरीत तुर्कों की सेना अपने सुल्तान के प्रति पूर्णरूपेण श्रद्धा रखने वाली थी। तुर्कों की सेना में अधिकांश सैनिक तुर्क एवं अन्य विदेशी थे जो अपने नेता की विजय से लाभान्वित होने की आशा से प्रेरित होकर लड़ते थे। तुर्कों की सेना में किन्हीं कारणोंवश स्वदेश से घृणा करने वाले हिन्दू भी मिल गये थे जो निश्चित समय पर राजपूतों को धोखा दे देते थे। तुर्कों की सेना धनलोलुपता, लौकिक-सुख तथा पारलौकिक सद्गति की व्यक्तिगत भावनाओं से प्रेरित होकर युद्ध करती थी, किन्तु राजपूत किसी व्यक्ति विशेष का नाम सार्थक करने के लिए लड़ते थे। राजपूतों की सेना में जातिगत भेदभाव एवं अहंकार के कारण सामूहिक एकरूपता नहीं आने पाती थी।
5. **राजपूतों द्वारा धर्म-युद्ध करना**—राजपूत धर्म-युद्ध के द्वारा ही विजय प्राप्त करना चाहते थे। राजपूत शत्रु को यथासम्भव क्षति न पहुँचाकर केवल रणक्षेत्र से उसे भगा देने में ही अपना कार्य पूर्ण हुआ समझ लेते थे, जबकि उन्हें शत्रु का पीछा करके उसे नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए था। **डॉ० विश्वेश्वर स्वरूप भार्गव** ने राजपूतों के विषय में लिखा है, "राजपूत राजाओं का युद्ध सम्बन्धी दृष्टिकोण भी उनकी पराजय का कारण बना। वे युद्ध को रण-कौशल और वीरता का एक 'टूर्नामेण्ट' समझते थे। शत्रु पर छल-कपट या अनैतिक ढंग से विजय को वे प्राय: हेय समझते थे। यही कारण था कि दाँव-पेच खेलने में वे माहिर नहीं थे। इसके विपरीत मुस्लिम आक्रमणकारी हर प्रकार के उचित-अनुचित साधन अपनाते थे। साधनों की पवित्रता में उनका कोई विश्वास नहीं था।" तुर्क सैनिक तो उन तालाबों व नदियों तक को दूषित कर देते थे जिनसे भारतीय सैनिकों को पानी मिलता था। यही नहीं, भारतीयों के रसद मार्ग को काटकर उन्हें भूखों मारने के उद्देश्य से निकटवर्ती प्रदेश को तहस-नहस कर देते थे। इस प्रकार तुर्क सैनिक युद्ध-क्षेत्र में राजपूतों के समान नैतिक मूल्यों पर बल नहीं देते थे। इसके अतिरिक्त तुर्क सेना के लड़ने की पद्धति 'गुरिल्ला-युद्ध' के समान थी। वे प्रारम्भ में शत्रु पर तीखा आक्रमण करते थे तथा थोड़ी देर बाद ही भागने लगते थे और फिर लौटकर तेजी से आक्रमण करते थे। इस प्रकार की युद्ध-नीति से राजपूत परिचित न थे तथा वे धोखा खा जाते थे।
6. **राजपूतों की रक्षात्मक नीति**—राजपूत शासक प्रमुखतया रक्षात्मक नीति का पालन करते थे, जबकि तुर्क आक्रामक नीति का परिचय देते थे। **डॉ० मजूमदार** ने लिखा है, "भारतीय शासक मुसलमान आक्रमणकारियों का सामना करते समय सदैव रक्षात्मक नीति का ही प्रयोग करते थे, जबकि मुसलमानों का सिद्धान्त आक्रमण नीति का था। मुसलमानों की पद्धति

तथा साधन समय के अनुकूल थे।'' इस प्रकार यदि तुर्क पराजित भी हो जाते थे तो उन्हें विशेष हानि नहीं होती थी क्योंकि राजपूत उनका पीछा नहीं करते थे।

7. **गुप्तचर व्यवस्था की कमी**—राजपूतों की सेना की पराजय का एक प्रमुख कारण गुप्तचर व्यवस्था की कमी था। तुर्क आक्रान्ताओं का गुप्तचर विभाग अत्यन्त सक्रिय एवं कुशल था। तुर्क आक्रमणकारी शत्रु की शक्ति का पूरा पता लगा लेते थे तथा उसकी दुर्बलता का भरपूर लाभ उठाते थे, परन्तु राजपूतों ने शत्रु के सैनिक संगठन की कमजोरियों को जानने का कभी प्रयास न किया। तुर्क आक्रान्ता सम्भाव्य देशद्रोहियों का पता लगाकर उन्हें अपनी ओर मिलाने का भी प्रयत्न करते थे, जिसके इतिहास में अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

II. राजनीतिक कारण (Political Reasons)

राजपूतों की पराजय के लिए निम्नलिखित राजनीतिक कारण उत्तरदायी थे—

1. **राष्ट्रीयता की भावना का अभाव**—बारहवीं शताब्दी के आगमन तक भारत में राष्ट्रीयता की भावना निर्बल हो चुकी थी। उस समय भारत को राजनीतिक विशृँखलन जर्जर बना रहा था तथा जनसाधारण में राष्ट्रीयता की भावना का भी लोप होता जा रहा था। निजी स्वार्थ और पारस्परिक झगड़ों के सामने देश-हित की जनता व शासकों को परवाह न थी। संगठन के अभाव में राजपूत तुर्कों के विरुद्ध अपने पराक्रम को प्रदर्शित न कर सके।
2. **दोषपूर्ण उत्तराधिकार का नियम**—राजपूत काल में दोषपूर्ण उत्तराधिकार का नियम था। उसमें वंश-परम्परागत राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली प्रचलित थी। राजपूत राजकीय सेवाओं में प्राय: क्षत्रियों एवं ब्राह्मणों को ही नियुक्त करते थे। सेनापति अथवा सैनिक की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र ही उसके स्थान पर नियुक्त किया जाता था। राज्य में जनसाधारण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। जनसाधारण एवं राजा के मध्य पारस्परिक सम्पर्क एवं सहयोग न होने के कारण राज्य को सम्पूर्ण जनता का सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता था। इसके विपरीत तुर्कों में अयोग्य व्यक्ति के लिए मात्र वंश-परम्परा के आधार पर शासक बनना अथवा उच्च पद को प्राप्त करना कठिन था। अत: वहाँ योग्य व्यक्ति ही उच्च पदों पर आसीन होते थे।
3. **'कोऊ नृप होय हमें का हानि' की भावना**—अपने साम्राज्य का अधिक-से-अधिक विस्तार करने के लिए प्रत्येक शासक तत्पर रहता था। अत: प्रत्येक शासक अपने निकटवर्ती राज्यों पर आक्रमण कर उसे पराजित करने की चेष्टा करता रहता था। राजपूत शासक पारस्परिक संघर्षों में सदैव इतने व्यस्त रहे कि उन्होंने जनहित के कार्यों एवं वैदेशिक नीति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार साधारण जनता को शासन में भाग लेने से भी वंचित रखा जाता था, अत: साधारण जनता में राजनीतिक उदासीनता उत्पन्न हो गयी थी और इसमें 'कोऊ नृप होय हमें का हानि' की भावना उत्पन्न हो गयी थी। साधारण जनता को इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं थी कि उनका शासक कौन है।
4. **सीमान्त प्रदेशों के प्रति उदासीनता**—राजपूतकालीन शासकों ने भारत के सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया। यदि भारतीय शासक सीमान्त प्रदेशों की सहायता करते तो विदेशी आक्रमणकारियों को भारत में प्रवेश करने से ही रोका जा सकता था, किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा न हुआ तथा विदेशी आक्रान्ता उत्तर-पश्चिम से आते रहे और राजपूत शासकों में व्याप्त पारस्परिक फूट का लाभ उठाते हुए विजय प्राप्त करते रहे। भारतीय राजाओं ने पंजाब तक तुर्क आक्रान्ताओं को रोकने का कोई प्रयास न किया, अत: पंजाब तक के प्रदेश उनके लिए आधार स्थल बन गये।

III. सांस्कृतिक कारण (Cultural Reasons)

राजपूतों की पराजय के लिए निम्नलिखित सांस्कृतिक कारण उत्तरदायी थे—

1. **धार्मिक कारण**—राजपूतकाल में अनेक सम्प्रदाय विद्यमान थे, जिनका पारस्परिक वैमनस्य शास्त्रीय मतभेद तक सीमित न रहकर राजनीतिक षड्यन्त्रों तक भी पहुँच जाता था। उस समय भाग्य में अटूट विश्वास रखने वाले हिन्दू अकर्मण्य हो गये थे। राजपूत शासक ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों में विश्वास रखते थे। इख्तारुद्दीन की विजय एवं लक्ष्मणसेन की पराजय इसका स्पष्ट प्रमाण है।
   (i) **धार्मिक अन्ध-विश्वास**—राजपूतयुगीन समाज में अन्ध-विश्वास एवं पाखण्ड का जोर था। अधिकांश जनता अपने शासकों के समान भाग्यवादी हो गयी थी। **अल्बरूनी** के अनुसार भारतीय विदेशियों को अपवित्र मानते थे, यदि उनसे खुरासान तथा फारस के किसी विज्ञान की बात की जाये तो वे उसे तथ्यहीन मानते थे। इससे भारतीय मध्य एशिया में हो रहे नवीनतम आविष्कारों के विषय में ज्ञान प्राप्त न कर सके। इसके अतिरिक्त राजपूतयुगीन जनता के जनजीवन पर तान्त्रिक एवं घोरपंथियों का व्यापक प्रभाव था। जनता तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने आदि पर बहुत विश्वास करती थी। राजनीतिक विषयों में जनता को रुचि न रही। बौद्ध एवं जैन धर्म के द्वारा अहिंसा के प्रचार ने भी जनता की भावनाओं को प्रभावित किया।

(ii) **तुर्कों का धार्मिक उत्साह**—तुर्कों में अन्ध-विश्वास नहीं था। वे जीवन के सुख के लिए स्वयं के प्रयत्नों में विश्वास करते थे। तुर्कों ने भारत के विरुद्ध युद्धों में जिहाद का नारा लगाकर और शारीरिक कष्टों की उपेक्षा करके पराक्रम का प्रदर्शन किया। उन्होंने अपना यह उद्देश्य बना लिया था कि यदि युद्ध में विजयी होंगे, तो भारत की प्रचुर सम्पत्ति और विस्तृत उर्वरा भूमि का लाभ उठायेंगे और यदि मर गये तो शहीदों की गिनती में आयेंगे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों में हिन्दुओं की अपेक्षा धार्मिक उत्साह कहीं अधिक था। वे अपने धर्म को विश्वव्यापी बनाना चाहते थे। इस प्रकार राजपूतों एवं तुर्कों के धार्मिक दृष्टिकोणों में भारी अन्तर था। राजपूतों के धार्मिक अन्ध-विश्वास ने उनकी पराजय में सहयोग दिया जबकि तुर्कों की धार्मिक भावना ने उनके लिए विजय का मार्ग प्रशस्त किया।

2. **सामाजिक कारण**—राजपूतों के पतन के लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था भी उत्तरदायी थी।

(i) **वर्ण-व्यवस्था**—राजपूतकालीन समाज चार वर्गों में विभाजित था तथा जन्म के आधार पर ही वर्ण का निर्धारण होता था। वर्णों के व्यवसाय भी निर्धारित थे, जिसका सर्वाधिक गम्भीर प्रभाव देश की सुरक्षा पर पड़ा। **जब विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किये तो भारत की सुरक्षा का दायित्व सिर्फ क्षत्रियों को ही सौंपा गया।** शेष भारतीय समाज ने, यह मानकर कि वर्ण-व्यवस्था के अनुसार देश की रक्षा करना क्षत्रियों का कर्त्तव्य है, अपने को राजनीति से पृथक् रखा। इस प्रकार देश की सुरक्षा का प्रयत्न भारत की जनसंख्या के एक-चतुर्थ भाग को ही करना पड़ा, जिसके निर्बल पड़ते ही भारत परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ गया।

(ii) **जातियों का बाहुल्य**—राजपूतकालीन समाज में हिन्दू अनेक छोटी-छोटी उप-जातियों में विभाजित हो गये थे। प्रत्येक जाति स्वयं को एक पूर्ण समाज समझती थी तथा अन्य जातियों के साथ आचार-व्यवहार, विवाह व खान-पान जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रखती थी। जाति-प्रथा की जटिलता के कारण तत्कालीन समाज में ऊँच-नीच व छुआ-छूत की भावनाएँ उत्पन्न हुईं, जो क्रमशः दृढ़ होती चली गयीं। अतः समाज में पारस्परिक प्रेम एवं स्नेह का स्थान घृणा एवं बैर ने ले लिया। इसके विपरीत मुसलमानों में ऐसी भावनाएँ जागृत नहीं हुई थीं तथा अपने धर्म के प्रचार एवं प्रसिद्धि के लिए, वे एक साथ मिलकर अपना सब कुछ न्यौछावर करने को उद्यत रहते थे।

IV. व्यक्तिगत कारण (Personal Reasons)

प्रत्येक युद्ध में विजय अथवा पराजय बहुत कुछ सेना के नेतृत्व अथवा सेनापति की योग्यता पर निर्भर करती है। महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी और कुतुबुद्दीन ऐबक उच्च कोटि के सेनानायक थे। उन्हें अनेक युद्धों का अनुभव भी प्राप्त था। **यद्यपि राजपूत राजाओं में जयपाल, भोज परमार, पृथ्वीराज चौहान आदि कुशल सेनानायक थे, तथापि वे तुर्क विजेताओं के समान दूरदर्शी न थे।** इसके अतिरिक्त राजपूत राजाओं ने अनेक मूर्खतापूर्ण गलतियाँ कीं। सिन्ध का राजा दाहिर, पंजाब का शासक जयपाल आदि के द्वारा की गयी गलतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। जयपाल ने अपनी पराजय से हुए अपमान के कारण आत्मदाह तो कर लिया किन्तु उससे यह न हो सका कि शत्रु से लड़ने के लिए पुनः और अधिक तैयारी करता और सफलता प्राप्त करता।

V. आकस्मिक एवं अन्य कारण (Accidental and Other Reasons)

राजपूतों के पतन में कुछ आकस्मिक उत्पन्न हुए कारणों ने भी सहयोग दिया। 986 ई० में जब गजनी के सुबुक्तगीन तथा जयपाल के मध्य युद्ध चल रहा था, तो एकाएक हुई भीषण वर्षा से जयपाल को बहुत क्षति पहुँची। परिणामस्वरूप, जयपाल को अपमानजनक सन्धि करने के लिए विवश होना पड़ा। इसी प्रकार महमूद गजनवी के विरुद्ध युद्ध में आनन्दपाल की सेना के हाथी बिगड़ जाने के कारण आनन्दपाल परास्त हुआ। चन्दावर के युद्ध में जयचन्द की आँख में तीर लगना भी एक ऐसी ही घटना थी।

डॉ० ईश्वरीप्रसाद का विचार है कि मुसलमान आक्रान्ताओं को मध्य एशिया के प्रदेशों से युद्ध में रुचि रखने वाले लोगों को अपनी सेना में भर्ती करने की सुविधा मिलने के कारण भी उन्हें राजपूतों के विरुद्ध सैनिक अभियानों में सफलता मिली। **उस समय भारत अपनी सम्पन्नता के लिए विश्वविख्यात था, अतः धन-दौलत के लोभ में अनेक मुसलमान योद्धा स्वयं ही आक्रान्ताओं की सेना में भर्ती हो जाते थे।** इसके अतिरिक्त तुर्क आक्रान्ता लूटपाट, हत्या आदि से जनसाधारण को इतना आतंकित कर देते थे कि भयान्वित भारतीय जनता में उनका प्रतिरोध करने का साहस नहीं रह पाता था।

उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप, अत्यन्त वीर एवं पराक्रमी होते हुए भी राजपूत शासक अपनी व अपनी मातृभूमि की सुरक्षा न कर सके तथा शीघ्र ही भारत परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ गया।

❑

मॉडल पेपर

प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत (1206 ई० तक)

B.A.-I (SEM-I) [पूर्णांक : 75

नोट—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—सभी पाँच प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।* **[3 × 5 = 15]**

1. पूर्व पाषाणकाल के मानव के दो प्रमुख व्यवसाय क्या थे?
2. त्रिपिटकों के बारे में लिखिए।
3. 'प्रयोग प्रशस्ति' किस सम्राट से सम्बन्धित है?
4. नालंदा विश्वविद्यालय।
5. ब्रह्मचर्य आश्रम।

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **2 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित हैं।* **[7.5 × 2 = 15]**

6. प्राचीन भारत में स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों की व्याख्या कीजिए।
7. राजपूतों की विदेश उत्पत्ति के सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।
8. महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमणों के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **3 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।* **[15 × 3 = 45]**

9. भारत में ताम्रपाषाण संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
10. 'अशोक के धम्म' से आप क्या समझते हैं? अशोक ने धम्म के प्रचार-प्रसार के लिए क्या उपाय किए?
11. कुमारगुप्त-I की उपलब्धियों का विश्लेषण कीजिए।
12. प्रतिहार नरेश वत्सराज के राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।
13. चाहमान पृथ्वीराज-III और मोहम्मद गौरी के मध्य हुए युद्धों का विवरण दीजिए।

❑

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।